॥ श्री ॥

महाकवि-श्रीमदम्बिकादत्त-व्यास-विरचित

शि राज ि जयः

(ऐतिहासिक उपन्यास)

•

द्वितीयो विरामः

(आपञ्चमाद् अष्टमनिश्वासात्मक)

•

व्याकरण-साहित्य-मीमांसाद्याचार्येण

(स्व०) पं० श्रीरामजीपाण्डेयशास्त्रिणा

विरचितया वैजयन्त्या

शकहिन्दूविश्वविद्यालय–स्थित-कलासङ्कायस्य दर्शन-विभागे प्राध्यापकेन

श्रीकेदारनाथमिश्रेण

प्रणीतेन राष्ट्रभाषानुवादेन च विभूषित

•

प्रकाशक —
प्रणेतृ-पौत्रः स्वर्गीय-श्रीराधाकुमार-व्यास-तनयः
श्रीकृष्णकुमारव्यासः

प्राप्तिस्थानम्—
ट पुस्तकालय,
डी १६।१४ सोमेश्वर गली,
मानमन्दिरम्, काशी।

© सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकेन स्वायत्तीकृताः
अस्य खण्डस्य चतुर्थं सस्करणम्
१९८१

मुद्रक
स्काई लार्क प्रिंटर्स
11355, ईद-गाह रोड,
नई दिल्ली-110055

॥ श्री ॥

निर्माणहेतु

"गद्य कवीना निकष वदन्ति"

श्लोक एकस्याऽप्यशस्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि श्लोक प्रशस्यते, न च पद्ये तथा सुलभ सौष्ठवम्, गद्ये तु सर्वाङ्गीण–सौन्दर्य-मुपलभ्येत चेत्, तदैव तत् प्रशसा-भाजन भवेद् भव्यानाम्। पद्ये छन्द पारवश्यात् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भवतीत्यनिच्छताऽपि कविता-प्रसङ्ग-प्राप्त स्वाभाविक स्वल्पमपि वचनीय क्वचिद् विस्तार्यते, क्वचिद् बह्वपि नियताक्षरै सक्षिप्य क्षोदिष्ठ विधीयते, क्वचिच्च ह्वित्र-स्वाभाविक–पद–प्रयोग–समापनीयान्यपि पारस्परिकालाप-ससक्त-प्राप्त-वाक्यानि जटिलीक्रियन्ते। गद्ये तु यदि किमपि तादृश-मस्वाभाविक स्यात्, तत् कवेरेव निर्बलित महदवद्यम्, इत्यादि-कारणै पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्य भवति, भवति च दुष्करमपि गद्यकाव्यमेव। अत एव शुद्ध-पद्यात्मकेषु बहुषु महाकाव्येष्वपि खण्ड-काव्येष्वपि च प्राप्येष्वपि गद्यपद्यात्मकेषु चम्पू-नाटकादिषु चाऽनेके-षूपलभ्यमानेष्वपि, शुद्ध-गद्य-काव्यानि तथा नाऽऽसाद्यन्ते। अस्माक महामान्या धन्या सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयो ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारतवर्ष सबहु-प्रमोद-वर्ष व्यधिषत, येषा चोक्ति-पर्य्यालोचन-प्राप्त-पर्याप्त-व्युत्पत्तयोऽसङ्ख्याऽऽख्यात्रा अद्याऽपि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च चिराय। पूर्वैर्भट्टार-हरिचन्द्र-प्रभृतिभिरेतै-

ह्रकविभिश्च प्रचारितोऽपि महाकाव्य-सचारो न चिराय स्थिति-
कलयत् । भारताभिजन-भाषाकविभिरपि च प्राय पद्य-प्रकृतिकैरेव
मभावि, इति जगत्प्रसिद्धं सूरदास-प्रभृतिभिरपि पद्यान्येव निब-
ानि । साम्प्रत तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषासु बहुधा
द्यकाव्यानि विरच्यन्ते । वङ्ग-गुर्जरादि-भाषासूपन्यासैरेव व्याप्ता
ापणय । हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपाने-
ेव पदाधाने । पर न केवल प्राकृतिक-गिरा गुरवो गीर्वाणगिरि
ुत्पत्तिगरीयास उपलभ्यन्ते, न वा काश्चिद् धन्य-धन्यान् विहाय
स्कृत-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽवलोक्यन्ते । अत एव
ारताभिजन-भाषा-कवय प्राय स्वभ्रमान् साक्षात् सस्कृतसाहाय्येन
धयितु न पारयन्ति, न वा भाषाकविसमादृतान् नवान् नवान्
नोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुं सस्कृत-साहित्य-वैभ-
ु च निधीन् वर्द्धयितु सस्कृतज्ञा एव प्रायश पारयन्ति । कदाचित्
दारक-वृन्द-वाण्या गद्यकाव्य-प्रचार-दौर्बल्यस्येदमेव प्रधान कारण
ात् । महदिदमुपहासास्पद विडम्बन यत् मण्डूक इव महापारा-
रपारमासादयितु यतमानस्तादृश कवि-कौशल-निकषायित गद्य-
व्य मादृक्ष क्षोदीयान् जनो रिरचयिषु सवृत्त इति । काव्यमिद
स्म भूत् तादृगभाव-विघट्टकम्, मा स्म वा पुषत् कस्यापि मोद-
शेषम्, पर मया तु सनातनधर्म धूर्वह-शिवराज-वर्णनेन रसना पावि-
,, प्रसङ्गत सदुपदेश-निर्देशै स्व-ब्राह्मण्य सफलितमेव, ऐतिहासिक-
व्यरुचीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्येव, चिरमस्मत्पूर्वजै पराशर-
राशरादिभिरुपासिता सस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य
वेशेष साक्षात्कृता पीयूष-पूर-पूर्णैरिव दृक्पातैरुज्जीवयन्ती पारिजात-

कुसुम-वर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव सद्य परनिर्वृतिश्च समासादितैव। भवभूतिजगन्नाथादीना राज मान्याना कवि-मण्डल-चक्रवर्तिना तु द्वेषविशेषैर्वा स्वग्रन्थमार्मिक जनालाभेन वा कारणान्तर-कलापैर्वा महानेव शोक-सङ्घात आसीत् "कोऽस्मद्ग्रन्थानवलोकयिष्यति ? को वाऽस्माक गूढतात्प भोत्स्यति ?" इति चिन्ता-सन्तान-वितान-झञ्झावातोद्धूतसशयघन घनाडम्बर एव तथा समरौत्सीद् हृदयाकाशम्, यथा ध्रुव सद्य परनि र्वृतिरूप-चन्द्रिका-प्रसारेणाऽपि न रञ्जितमेव तदन्त करणकुमुद-वनम्

तथा च तैरेवोक्तम्—

"ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञा
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्न ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥"

"विद्वासो वसुधातले परवच श्लाघासु वाचयमा
भूपाला कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिता ।
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधर-माधुरी विधुरयन् वाचा विलासो मम ॥"

अह तु तादृक्षाणा महाकवीना चरण-रजो-विमर्श-भाजनमपि तदपेक्षयाऽधिक भाग्यवत्तरोऽस्मीति निश्चिनोमि, यतो मद्ग्रन्थ-मार्मिकस्तु मिथिला-मही-महेन्द्र, भारत-साम्राज्य-व्यवस्थापक-समाज-सजीवन, महामात्य, वदान्य, धन्य-धन्य, विविध-विरुदावली-विराजमान, राजमानोन्नत, नतोन्नतिदायक, महाराजश्री-

रमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति। माद्यन्ति च परश्शता वाराणस्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासितान्त करणा विबुधजना ।

सोऽय स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितु लिखित लेखप्रकाण्डो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डाना कर्ण-कण्डू खण्डयेत्, तत् कृतकृत्य सवर्त्तेय। ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धममु तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनै, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चाऽस्मानास्माकाश्च हास-यिष्यन्ति, तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवाऽस्माकम् । ये तु जोष जोषमालोक्याऽपि काव्यानि, समासाद्याऽपि च तोषम्, सरोषमुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव त जारयन्ति, जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्या ?

अम्बिकादत्तव्यास

रमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति। माद्यन्ति च परश्शता वाराणस्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासितान्त करणा विबुधजना ।

सोऽय स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितु लिखित लेखप्रकाण्डो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डाना कर्ण-कण्डू खण्डयेत्, तत् कृतकृत्य सवर्त्तेय। ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धममु तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनै, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चाऽस्मानास्माकाश्च हास-यिष्यन्ति, तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवाऽस्माकम्। ये तु जोष जोषमालोक्याऽपि काव्यानि, समासाद्याऽपि च तोषम्, सरोषमुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव त जारयन्ति, जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्या ?

अम्बिकादत्तव्यास

रमेश्वरसिंहश्रीरवर एवास्ति। माद्यन्ति च परश्शता वाराणस्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासितान्त करणा विबुधजना ।

सोऽय म्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितु लिखित लेखप्रकाण्डो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डाना कर्ण-कण्ड् खण्डयेत्, तत् कृतकृत्य सवर्त्तेय। ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धमम् तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनै, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चाऽस्मानास्माकाश्च हास-यष्यन्ति, तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवाऽस्माकम् । ये तु जोष जोषमालोक्याऽपि काव्यानि, समासाद्याऽपि च तोषम्, सरोषमुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव त जारयन्ति, जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्या ?

अम्बिकादत्तव्यास

पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य

"अपने विषय का भला-बुरा लेख कदाचित् इतिहास विद्या की किसी अंग में सहायता करे यह समझ नागरीप्रचारिणी के सभ्यगण के प्रोत्साहन से प्रोत्साहित हो ग्रन्थकारों का स्ववृत्त न लिखना विद्वज्जन मात्र की दृष्टि मे ऊनता है, इस भाव से भावित हो*' श्री अम्बिकादत्त व्यास ने संक्षिप्त निज वृत्तान्त शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी थी जो उनके 'विहारी विहार' ग्रंथ मे परिशिष्ट के रूप मे छपी थी। उसी आत्मकथा को उपजीव्य बनाकर हम यहाँ उनका एक संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर रहे है।

राजस्थान के 'रावतजी की धूला' नामक ग्राम से सकुटुम्ब आकर काशी मे बस गये आदि गौड, पराशरगोत्रीय त्रिप्रवर यजुर्वेदाध्यायी भीडावंशावतंस पण्डित राजाराम शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गादत्तजी अपने समय के कवि-मण्डल मे दत्तकवि के नाम से सुप्रसिद्ध थे। उनकी ससुराल जयपुर मे सिलावटों के मुहल्ले मे थी। वहीं चैत्रशुक्ल अष्टमी वि० सं० १९१५ को उनके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम अम्बिकादत्त रखा गया। बालक अम्बिकादत्त मे कविता करने की प्रतिभा जन्मजात थी और शिक्षित भाई बहिनों का अनुकूल वातावरण पाकर वह विकसित होने लगी। फलतः दस वर्ष के अल्प वय मे ही उन्होने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, समस्यापूर्ति और 'सरस्वतीयन्त्र' काव्य का अच्छा अभ्यास कर लिया। वे स्वयं लिखते है

"१० वर्ष के वय मे मैं हिन्दी भाषा मे कुछ कुछ कविता करने लग गया था, परन्तु मेरी कविता को जो सुनता था वह कहता था कि इनकी बनाई कविता नही है, पिताजी से बनवाई है। जब कुछ लोग मेरी अवहेलना करते थे और मैं उदास होता था, तब मेरे पिताजी यह श्लोक कहते थे

* संक्षिप्त निजवृत्तान्त—पृष्ठ १।

"कमलिनि मलिनीकरोषि चेत
किमिति बकैरवहेलितानभिज्ञैं ।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दा ॥"*

'प्रस्तार दीपक' और 'शिवविवाह' नामक हिन्दी ग्रथो की रचना उन्होने क्रमश दस और बारह वर्ष के वय मे आरम्भ की थी, किन्तु वे इन्हे पूरा नही कर सके।

वि०स० १९२६ मे वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि की सभाओ मे कविता-पाठ, समस्यापूर्ति आदि करने लगे थे। 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन के साथ ही वि० स० १९२७ मे इनकी कविताओ का प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया।

इसी समय उन्होने काशिराज द्वारा स्थापित धर्मसभा की परीक्षा मे साहित्य मे पुरस्कार प्राप्त किया। पुरस्कार ग्रहण करते समय बालक अम्बिकादत्त ने काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह और उनके पण्डित श्री ताराचरण भट्टाचार्य तर्करत्न के प्रश्नो का श्लोकबद्ध उत्तर देकर उन्हे मुग्ध कर लिया। गणेश शतक (सस्कृतकाव्य) उनकी इसी समय की रचना है।

बारहवर्षीय अम्बिकादत्त को 'सरस्वतीयन्त्र' कविता करते देखकर और उनकी कुछ अन्य कविताएँ सुनकर एक वृद्ध तैलङ्ग अष्टावधान ने कहा था 'सुकविरेष' और तभी भारतेन्दु ने उन्हे एक प्रशसा-पत्र देते हुए 'काशी कविताबर्द्धिनी सभा' की ओर से 'सुकवि' उपाधि प्रदान की थी।

बालक अम्बिकादत्त कविता करने के साथ ही साथ पहले घर मे और फिर मन्दिरो आदि मे एकादशी, हरतालिका, भागवत आदि की कथा भी कहा करते थे। इससे उनकी झिझक दूर हो गई और उनमे वाग्मिता तथा सभाचातुरी भी आ गई।

तेरह वर्ष के अल्प वय मे ही अम्बिकादत्त का विवाह हो गया। वि०स० १९३२ मे सत्रहवर्षीय अम्बिकादत्त ने काशी के गवर्नमेंट सस्कृत

---

* सक्षिप्त निजवृत्तान्त—पृष्ठ २।

कालेज मे ऐंग्लो-सस्कृत विभाग मे नाम लिखाया, और स० १९३४ मे उत्तम वर्ग तक की पढाई समाप्त की। स० १९३४ मे ऐंग्लो सस्कृत विभाग के तोड दिये जाने पर उनकी अग्रेजी शिक्षा स्वाध्याय तक ही सीमित रह गई। इसी बीच उन्होंने बँगला भाषा भी सीखी।

वि०स० १९३७ मे गवर्नमेंट सस्कृत कालेज मे आचार्य की परीक्षा प्रारम्भ हुई। साहित्य मे तेरह व्यक्तियो ने परीक्षा दी, जिसमे केवल अम्बिकादत्त ही उत्तीर्ण हुए। 'व्यास' की उपाधि उन्हे अच्छी कथा कहने के कारण स्वामी विशुद्धानन्दजी से पहले ही मिल चुकी थी। अब वे सुकवि साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कहे जाने लगे।

वि०स० १९३४ मे उन्होने एक साथ साङ्ख्यसागरसुधा, पातञ्जल-प्रतिबिम्ब, कुण्डलीदर्पण, इतिहाससंक्षेप और सामवतम् इन पाँच सस्कृत ग्रथो की रचना प्रारम्भ की थी, इनमे से इतिहास सक्षेप कभी पूरा न हो सका और कुण्डलीदर्पण कभी छप न सका। योग और साख्य के उपर्युक्त ग्रथ क्रमश स० १९४८ और स० १९५२ मे छपे थे। सामवतम् (सस्कृत नाटक) की रचना मिथिलानरेश के राजपण्डित के अनुरोध पर, युवराज के राज्याभिषेक के अवसर पर अभिनीत होने के लिये की गई थी। यह नाटक सवत् १९३७ मे पूरा हो गया था। इसी वर्ष उन्होंने गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, अबोध-निवारण, (महर्षि दयानन्द की एक सस्कृत पुस्तक की अशुद्धियो का विवेचन) आदि कृतियाँ भी लिखी और छापी। बाईस वर्ष के अम्बिकादत्त व्यास की 'सामवतम्' नामक नाट्यकृति के बारे मे डा० भगवान्दास ने लिखा है

"श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा सामवतम् नाम नाटक दो बार पढा। 'पुराणम् इत्येव हि साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्राय मेरे मत पर हँसेगे, तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित 'शकुन्तला' से किसी बात मे कम नही है।"

शीघ्र कवित्व, सभाओ मे भाषण देने और शास्त्रार्थ करने का जो कौशल अम्बिकादत्त ने अर्जित किया था, उसके प्रकाशन का अवसर उन्हे तब मिला, जब वे पोरबन्दर के वल्लभकुलावतस गोस्वामी जीवनलाल के साथ धर्मोपदेश के लिये

निकले, और सनातन धर्म के प्रचार के लिये व्याख्यान देने लगे। विहार मे आर्य-समाज की जो तेज लहर आ रही थी, उसे रोकने मे उन्होने वडी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होने काशी से 'वैष्णवपत्रिका' नामक एक अल्पजीवी मासिक पत्र भी निकाला। स० १९३८ मे काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के पण्डितो की ओर से उन्हे रजत पदक सहित घटिकाशतक की उपाधि प्रदान की गयी।

अम्बिकादत्त की माँ का देहावसान वि० स० १९३१ मे ही हो गया था, स० १९३७ मे उनके पिता जी ने भी शरीर छोड दिया। अल्पवयस्क अम्बिकादत्त के आश्रयहीन परिवार पर अभाव के वादल घिर आये, और जीविका के अभाव तथा ऋण के बोझ ने उन्हे चिन्तित कर दिया। स० १९४० मे जब गवनमेण्ट सस्कृत कालेज, वनारस के प्रिसिपल ने उन्हे मधुवनी सस्कृत स्कूल का अध्यक्ष नियुक्त किया तो यह चिन्ता कुछ कम हुई। पर वहाँ भी वे जम न सके। वहाँ अग्निकाण्ड मे उनका घर भस्मसात् हो गया, जिसमे इनकी कई पुस्तके और अनेक प्राचीन ग्रन्थ राख हो गये। इसी बीच इनका सहोदर अनुज, जिसे ये अपने साथ रखते और स्वय पढाते थे, अपनी नवोढा पत्नी की माँग सूनी कर स्वर्ग सिधार गया। खिन्नमना अम्बिकादत्त ने उदास होकर मधुवनी से त्यागपत्र दे दिया, किन्तु शीघ्र ही (स० १९४३ मे) उन्हे मुजफ्फरपुर जिला स्कूल मे 'हेड पण्डित' नियुक्त किया गया, जहाँ से स० १९४४ मे उन्हे भागलपुर जिला स्कूल भेज दिया गया। भागलपुर से वे छपरा गये, जहाँ अपने अन्तिम समय तक रहे। इस प्रकार उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत विहार प्रान्त ही रहा।

स० १९४५ मे सामवतम् नाटक को मिथिलेश्वर को समर्पित करने के साथ ही उन्होंने शिवराज विजय की रचना प्रारम्भ कर दी, और स० १९५० मे उसे पूरा कर दिया।

इस समय तक हिन्दी, सस्कृत और वँगला के ओजस्वी वक्ता के रूप मे उनकी वाक जम चुकी थी, और उनके वैदुष्य की कीर्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी। विहारी के दोहो पर 'विहारी-विहार' नाम से लिखा गया उनका कुण्डलियामय ग्रन्थ जव स० १९५२ मे छपा, तो वे हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियो की चर्चा के विपय वन गये। इस ग्रन्थ की शोधपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध मे जार्ज ग्रिार्सन ने लिखा था—

"I have read the introduction with special interest and was much gratified to see so much fresh light thrown on difficult historical questions Indeed I have no hesitation in saying that it is a model of historical research conducted with industry and sobriety, both of which are unfortunately too often abandoned by writers in this country in favour of credulity and hasty conclusions "*

प० अम्बिकादत्त व्यास को सनातन धर्म महामण्डल, दिल्ली से **बिहारभूषण** की उपाधि सहित स्वर्णपदक, काशी की महासभा मे काँकरोली के गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल से (स० १९५१ मे) **भारत-रत्न** उपाधिसहित स्वर्णपदक, अयोध्यानरेश से **शतावधान** की उपाधि-सहित सम्मानपत्र और सुवर्णपदक तथा बम्बई की महासभा मे गोस्वामी घनश्यामलाल से **भारतभूषण** की उपाधि सहित सुवर्णपदक प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार बयालीस वर्ष की अल्प आयु मे ही प्राय अस्सी पुस्तको का प्रणयन कर, महाकवि का सम्मान प्राप्त कर, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास सोमवार मार्गशीर्ष त्रयोदशी वि० स० १९५७ को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को निस्सहाय छोडकर पञ्चतत्व को प्राप्त हो गये।

व्यासजी की प्रतिभा विलक्षण थी, और उसका लोहा बाकीपुर मे स्वामी सहजानन्द सरस्वती तथा काशी मे स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी मानना पडा था। प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट कर्नल अल्काट और जार्ज ग्रियर्सन ने उनकी वक्तृत्वशक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की थी। शीघ्र कविता की उनमे अद्भुत शक्ति थी, और २४ मिनट मे सौ श्लोक बना देने के कारण ही उन्हे घटिकाशतक की उपाधि मिली थी। द्रव्यस्तोत्रम् उनकी एक ... की रचना है।

---

* बिहारी-विहार, परिशिष्ट पृष्ठ ९

निकले, और सनातन धर्म के प्रचार के लिये व्याख्यान देने लगे। बिहार मे आर्य-समाज की जो तेज लहर आ रही थी, उसे रोकने मे उन्होने बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होने काशी से 'वैष्णवपत्रिका' नामक एक अल्पजीवी मासिक पत्र भी निकाला। स० १९३८ मे काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के पण्डितो की ओर से उन्हे रजत पदक सहित घटिकाशतक की उपाधि प्रदान की गयी।

अम्बिकादत्त की माँ का देहावसान वि० स० १९३१ मे ही हो गया था, स० १९३७ मे उनके पिता जी ने भी शरीर छोड दिया। अल्पवयस्क अम्बिकादत्त के आश्रयहीन परिवार पर अभाव के बादल घिर आये, और जीविका के अभाव तथा ऋण के बोझ ने उन्हे चिन्तित कर दिया। स० १९४० मे जब गवर्नमेण्ट सस्कृत कालेज, बनारस के प्रिंसिपल ने उन्हे मधुवनी सस्कृत स्कूल का अध्यक्ष नियुक्त किया तो यह चिन्ता कुछ कम हुई। पर वहाँ भी वे जम न सके। वहाँ अग्निकाण्ड मे उनका घर भस्मसात् हो गया, जिसमे इनकी कई पुस्तके और अनेक प्राचीन ग्रन्थ राख हो गये। इसी बीच इनका सहोदर अनुज, जिसे ये अपने साथ रखते और स्वय पढाते थे, अपनी नवोढा पत्नी की माँग सूनी कर स्वर्ग सिधार गया। खिन्नमना अम्बिकादत्त ने उदास होकर मधुवनी से त्यागपत्र दे दिया, किन्तु शीघ्र ही (स० १९४३ मे) उन्हे मुजफ्फरपुर जिला स्कूल मे 'हेड पण्डित' नियुक्त किया गया, जहाँ से स० १९४४ मे उन्हे भागलपुर जिला स्कूल भेज दिया गया। भागलपुर से वे छपरा गये, जहाँ अपने अन्तिम समय तक रहे। इस प्रकार उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत बिहार प्रान्त ही रहा।

स० १९४५ मे सामवतम् नाटक को मिथिलेश्वर को समर्पित करने के साथ ही उन्होंने शिवराज विजय की रचना प्रारम्भ कर दी, और स० १९५० मे उसे पूरा कर दिया।

इस समय तक हिन्दी, सस्कृत और बँगला के ओजस्वी वक्ता के रूप मे उनकी धाक जम चुकी थी, और उनके वैदुष्य की कीर्ति दूर दूर तक फैल चकी थी। बिहारी के दोहो पर 'बिहारी-बिहार' नाम से लिखा गया उनका कुण्डलियामय ग्रन्थ जब स० १९५२ मे छपा, तो वे हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियो की चर्चा के विषय बन गये। इस ग्रन्थ की शोधपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध मे जार्ज ग्रिअर्सन ने लिखा था—

"I have read the introduction with special interest and was much gratified to see so much fresh light thrown on difficult historical questions Indeed I have no hesitation in saying that it is a model of historical research conducted with industry and sobriety, both of which are unfortunately too often abandoned by writers in this country in favour of credulity and hasty conclusions "*

प० अम्बिकादत्त व्यास को सनातन धर्म महामण्डल, दिल्ली से बिहारभूषण की उपाधि सहित स्वर्णपदक, काशी की महासभा मे कॉंकरोली के गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल से (स० १९५१ मे) भारत-रत्न उपाधिसहित स्वर्णपदक, अयोध्यानरेश से शतावधान की उपाधि-सहित सम्मानपत्र और सुवर्णपदक तथा बम्बई की महासभा मे गोस्वामी घनश्यामलाल से भारतभूषण की उपाधि सहित सुवर्णपदक प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार बयालीस वर्ष की अल्प आयु मे ही प्राय अस्सी पुस्तको का प्रणयन कर, महाकवि का सम्मान प्राप्त कर, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास सोमवार मार्गशीर्ष त्रयोदशी वि० स० १९५७ को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को निस्सहाय छोडकर पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो गये।

व्यासजी की प्रतिभा विलक्षण थी, और उसका लोहा बॉंकीपुर मे स्वामी सहजानन्द सरस्वती तथा काशी मे स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी मानना पडा था। प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट कर्नल अल्काट और जार्ज ग्रियर्सन ने उनकी वक्तृत्वशक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की थी। शीघ्र कविता की उनमे अद्भुत शक्ति थी, और २४ मिनट मे सौ श्लोक बना लेने के कारण ही उन्हे घटिकाशतक की उपाधि मिली थी। द्रव्यस्तोत्रम् उनकी एक भांति की रचना है।

---

* बिहारी-बिहार, परिशिष्ट पृष्ठ ९

हिन्दी और सस्कृत साहित्य के तो वे आचार्य थे ही, साख्य-योग, वेदान्त और न्याय आदि दर्शनो पर भी उनका अच्छा अधिकार था। कवि और विद्वान् होने के साथ ही वे शतरञ्ज के अच्छे खिलाडी, चित्रकार, सगीतज्ञ और एक अच्छे घुडसवार भी थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और बहुमुखी प्रवृत्तियो की छाप उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति शिवराजविजय मे पद-पद पर अङ्कित मिलती है।

पं० म्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य

विरचित ग्रन्थ *

ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रणयन्त्र नाम	विशेष
१ प्रस्तारदीपक	१९२५				अपूर्ण हिन्दीभाषा
२ गणेशशतक	१९२६	१९२७			संस्कृत
३ शिवविवाह	१९२७				अपूर्ण
४ साख्यसागरसुधा	१९३४	१९३४	१९५२	व्यासयन्त्रालय भागलपुर	बाबू महावीरप्र० कृ भा टी सहित
५ पातञ्जलप्रतिबिम्ब	१९३४	१९३७	१९४८	व्यासयन्त्रालय	संस्कृत
६ कुण्डलीदर्पण	१९३४	१९३५			संस्कृत, अमुद्रित
७ सामवत नाटक	१९३४	१९३७	१९४५	खड्गविलास बाँकीपुर	संस्कृत
८ इतिहास संक्षेप					
९ रेखागणित	१९३४				संस्कृत, अपूर्ण
(श्लोकबद्ध)१अ०	१९३५	१९३५			संस्कृत, अमुद्रित
१० ललिता नाटिका	१९३५	१९३५	१९४०	हरिप्रकाश काशी	व्रजभाषा
११ रत्नपुराण	१९३५				संस्कृत, अपूर्ण
१२ आनन्द मञ्जरी	१९३६	१९३६			व्रजभाषा (गीत)
१३ चिकित्सा चमत्कार	१९३६				अपूर्ण (मधुबनी मे दग्ध होगया)
१४ अबोधनिवारण	१९३७	१९३७	१९३७	हरिप्रकाश काशी	हिन्दीभाषा (तीन बार छप चुका)
५ गुप्ताशुद्धि प्रदर्शन	१९३७	१९३७	१९३७	,,	संस्कृत (दो बेर छपा)
१६ ताशकौतुकपचीसी	१९३७	१९३७	१९३७	काशी	हिन्दी भाषा

* 'बिहारी-बिहार' से उद्धृत ।

ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
१७ समस्यापूर्ति सर्वस्व	१९३७			काशी	सस्कृत, अपूर्ण
१८ रसीली कजरी	१९३९	१९३९	१९३९	"	हिन्दी भाषा
१९ द्रव्यस्तोत्र	१९३९	१९३९	१९३९	खड्गविलास (बाँकीपुर)	सस्कृत
२० चतुरगचातुरी	१९३९	१९३९	१९४१	चन्द्रप्रभा काशी	हिन्दी भाषा
२१ गोसकट नाटक	१९३९	१९३९	१९०१	खड्गविलास	"
२२ महाताश कौतुक पचासा	१९३९	१९३९	१९३९	चद्रप्रभा, काशी	"
२३ तर्कसग्रह,भा टी	१९४०	१९४०	१९४१	हरिप्रकाश	"
२४ साख्य-तरगिणी	१९४०	१९४८	१९४८	खड्गवि (बाँ पु)	"
२५ क्षेत्रकौशल	१९४०	१९४०	१९४१	च प्र , काशी	"
२६ पडित प्रपञ्च	१९४०				"
२७ आश्चर्य्यवृत्तान्त	१९४१	१९८५	१९५०	व्यासयत्रालय भागलपुर	"
२८ छन्द प्रबन्ध	१९४१				अपूर्ण
२९ रेखागणितभाषा	१९४२	१९४२	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी भाषा
३० धर्म्म की धूम	१९४२	१९४२	१९४२	"	ब्रजभाषा
३१ दयानन्दमत मूलोच्छेद	१९४२	१९४२	१९४२	"	हिन्दी भाषा
३२ दु खद्रुमकुठार	१९४२	१९४३	१९४३	हरि प्रकाश	सस्कृत
३३ पावस पचासा	१९४२	१९४२	१९४२	खड्गविलास	ब्रजभाषा
३४ कलियुग औ घी	१९४३	१९४३	१९४३	नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर	हिन्दी भाषा
३५ दोषग्राही औ गुणग्राही	१९४३				अपूर्ण

ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
३६ उपदेशलता	१९४३	१९४३	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी
३७ सुकवि सतसई	१९४३	१९४३	१९४४	नारायणप्रेस	व्रजभाषा
३८ मानसप्रशसा	१९४३	१९४४	१९४४	खड्गविलास	व्रजभाषा(रामायणकी भूमिका मे छपी)
३९ आर्य्यभाषा-सूत्रधार	१९४३				सूत्रवृत्ति सस्कृत अपूर्ण
४० भाषाभाष्य	१९४३				आर्यभाषा सूत्रधार पर, अपूर्ण
४१ पुष्पवर्षा	१९४४	१९४४	१९४४	नारायण	व्रजभाषा
४२ भारत सौभाग्य	१९४४	१९४४	१९४४	ख वि	हि भा नाटक
४३ विहारी विहार	१९४८	१९५२	१९५४	भारतजीवन	व्रजभाषा
४४ रत्नाष्टक	१९४४	१९४८	१९४४	च० प्र०	सस्कृत
४५ मन की उमग	१९४८	१९४८	१९४८	नारायण	हि तथा ब्र भा
४६ कथा कुसुम	१९४४	१९४४	१९४६	ख वि	सस्कृत
४७ पुष्पोपहार	१९४४	१९४४	१९४४	"	स तथा ब्र भा
४८ मूर्तिपूजा	१९४४	१९४३	१९४८	व्यासयन्त्रालय	हिन्दी
४९ सस्कृताभ्यास-पुस्तकम्	१९४५	१९४५	१९४५	च प्र काशी	स अग्रेजी
५० कथाकुसुम-कलिका	१९४५	१९४५	१९४५	व्यासयन्त्रालय	हिन्दीभाषा
५१ प्राकृतप्रवेशिका	१९४५	१९४५			अमुद्रित स०
५२ सस्कृतसजीवन	१९४५	१९४५	१९४५	च० प्र०	हि०भाषा
५३ प्राकृतगूढ शब्दकोश	१९४५	१९४५	१९४५	ख० वि०	सामवत के अत मे
५४ अनुष्टुप्-लक्षणोद्धार	१९४५	१९४५			अमुद्रित० स०
५५ शिवराजविजय	१९४५	१९५०			अमुद्रित० स०
५६ वालव्याकरण	१९४६	१९४६	१९४६	च० प्र०	स० अग्रेजी

ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
१७ समस्यापूर्ति सर्वस्व	१९३७			काशी	सस्कृत, अपूर्ण
१८ रसीली कजरी	१९३९	१९३९	१९३९	„	हिन्दी भाषा
१९ द्रव्यस्तोत्र	१९३९	१९३९	१९३९	खड्गविलास (बाँकीपुर)	सस्कृत
२० चतुरगचातुरी	१९३९	१९३९	१९४१	चन्द्रप्रभा काशी	हिन्दी भाषा
२१ गोसकट नाटक	१९३९	१९३९	१९४१	खड्गविलास	„
२२ महाताश कौतुक पचासा	१९३९	१९३९	१९३९	चद्रप्रभा, काशी	„
२३ तर्कसग्रह,भा टी	१९४०	१९४०	१९४१	हरिप्रकाश	„
२४ साख्य-तरगिणी	१९४०	१९४८	१९४८	खड्गवि (बाँ पु)	„
२५ क्षेत्रकौशल	१९४०	१९४०	१९४१	च प्र , काशी	„
२६ पडित प्रपञ्च	१९४०				„
२७ आश्चर्य्यवृत्तान्त	१९४१	१९८५	१९५०	व्यासयत्रालय भागलपुर	„
२८ छन्द प्रबन्ध	१९४१				अपूर्ण
२९ रेखागणितभाषा	१९४२	१९४२	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी भाषा
३० धर्म्म की धूम	१९४२	१९४२	१९४२	„	ब्रजभाषा
३१ दयानन्दमत मूलोच्छेद	१९४२	१९४२	१९४२	„	हिन्दी भाषा
३२ दु खद्रुमकुठार	१९४२	१९४३	१९४३	हरि प्रकाश	सस्कृत
३३ पावस पचासा	१९४२	१९४२	१९४२	खड्गविलास	ब्रजभाषा
३४ कलियुग ओ घी	१९४३	१९४३	१९४३	नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर	हिन्दी भाषा
३५ दोषग्राही ओ गुणग्राही	१९४३				अपूर्ण

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
३६	उपदेशलता	१९४३	१९४३	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी
३७	सुकवि सतसई	१९४३	१९४३	१९४४	नारायणप्रेस	व्रजभाषा
३८	मानसप्रशसा	१९४३	१९४४	१९४४	खड्गविलास	व्रजभाषा(रामायणकी भूमिका मे छपी)
३९	आर्य्यभाषा-सूत्रधार	१९४३				सूत्रवृत्ति सस्कृत अपूर्ण
४०	भाषाभाष्य	१९४३				आयभापा सूत्रधार पर, अपूर्ण
४१	पुष्पवर्पा	१९४०	१९४४	१९४४	नारायण	व्रजभाषा
४२	भारत सौभाग्य	१९४४	१९४४	१९४४	ख वि	हि भा नाटक
४३	विहारी विहार	१९४८	१९५२	१९५४	भारतजीवन	व्रजभापा
४४	रत्नाष्टक	१९४४	१९४८	१९४४	च० प्र०	सस्कृत
४५	मन की उमग	१९४८	१९४८	१९४४	नारायण	हि तथा व्र भा
४६	कथा कुसुम	१९४४	१९४४	१९४४	ख वि	सस्कृत
४७	पुष्पोपहार	१९४४	१९४४	१९४४	,,	स तथा व्र भा
४८	मूर्तिपूजा	१९४४	१९४७	१९४८	व्यासयन्त्रालय	हिन्दी
४९	सस्कृताभ्यास-पुस्तकम्	१९४५	१९४५	१९४५	च प्र काशी	स अग्रेजी
५०	कथाकुसुम-कलिका	१९४५	१९४५	१९४५	व्यासयन्त्रालय	हिन्दीभाषा
५१	प्राकृतप्रवेशिका	१९४५	१९४५			अमुद्रित स०
५२	सस्कृतसजीवन	१९४५	१९४५	१९४५	च० प्र०	हिं०भाषा
५३	प्राकृतगूढ शब्दकोश	१९४५	१९४५	१९४५	ख० वि०	सामवत के अत मे
५४	अनुष्टुप्-लक्षणोद्धार	१९४५	१९४५			अमुद्रित० स०
५५	शिवराजविजय	१९४५	१९५०			अमुद्रित० स०
५६	वालव्याकरण	१९४६	१९४६	१९४६	च० प्र०	स० अग्रेजी

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
५७	हो हो होरी	१९४६	१९४६	१९४६	व्यास यन्त्रा	व्र भाषा
५८	झूलन झमक	१९४८	१९४८	१९४८	व्यास यन्त्रा	व्र भाषा
५९	स्वर्गसभा	१९४८	१९४८	१९४८	व्यास यन्त्रा	ब्र० भा०
६०	विभक्तिविभाग	१९४९	१९४९	१९४९	„ „	हिन्दी
६१	पढे पढे पत्थर	१९४९				
६२	सहस्रनाम-रामायण	१९५०	१९५०	१९५०	„ „	अपूर्ण सस्कृत
६३	गद्यकाव्य मी०	१९५०	१९५०	१९५०	„ „	सस्कृत
६४	मरहट्ठा नाटक	१९५०				अपूर्ण हि भा
६५	साहित्यनवनीत	१९५०	१९५०	१९५०	श्रौतयन्त्रालय	हिन्दी
६६	वर्ण व्यवस्था	१९५०	१९५२			हिन्दी, अमुद्रित
६७	विहारी चरित	१९५०	१९५४	१९५४	भारतजीवन	विहारीविहार के आरभ मे
६८	आश्रमधर्म-निरूपण	१९५०	१९५२			अमुद्रित
६९	अवतार-कारिका	१९५४	१९५४	१९५४	व्यास यन्त्रा	अवतारमीमासा के अत मे, स०
७०	अवतार मी०	१९५१	१९५१	१९५४	व्या० य०	हिन्दी
७१	विहारीव्याख्या-कारचरितावली	१९५१	१९५८	१९५४	भारतजीवन	विहारी विहार की भूमिका मे
७२	पश्चिम यात्रा	१९५१				अपूर्ण
७३	वामिचरित	१९५१	१९५२			अमु ब्र०भा०
७४	शीघ्रलेख प्रणाली	१९५२	१९५२			„ हि० भाषा
७५	गद्यकाव्य-मीमासा भा	१९५३	१९५३	१९५८	गजगजेश्वरी	हिन्दीभाषा
७६	घनश्याम वि	१९५३				अपूर्ण व्र भा
७७	राची यात्रा	१९५८				अपूर्ण, हि०भा०
७८	निज वृत्तान्त	१९५८	१९५८	१९५८		हिन्दी भाषा

॥ श्री ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचित

शिवराजविजयः

द्वितीयो विरामः

"वय नो ते विप्रा प्रतिदिवसमासाद्य कृपणान्,
धन ये याचन्ते प्रतिगणित-नक्षत्र-तिथय"

—जगन्नाथपण्डितराज

शिवराज-विजय-वैजयन्ती

वागीश्वर्यै नम

मनोजमदमन्थने प्रमदमादधानो भव
स्वय भवति विष्टरो विनत एव यस्या कृते ।
समर्चित-पदद्वया त्रिदश-मण्डली-मण्डनै-
स्तमालदल-भासुरा भवतु काऽपि बुद्धिप्रदा ॥

पञ्चमे निश्वासे हिन्दू-धर्म-ध्वस-विध्वसन-पटुना शिववीरेण साक महाकवे-र्भूषणस्य सम्बन्ध विवर्णयिषुरुपक्षिपति पण्डितराजोक्तिम्—वय नो ते विप्रा इति ।

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

ज्ञानप्रतीकशुभपुस्तकवामहस्ता
वीणागुणक्वणनरञ्जितसर्वलोका ।
मन्मानसाच्छमुकुरार्पितविग्रहा सा
देवी स्मृता स्पृशतु मा स्वकृपाकटाक्षै ॥

"हम तिथि-नक्षत्रादि गिनने वाले उन ब्राह्मणो मे नही हैं जो प्रतिदिन कञ्जूसो के पास जाकर उनसे धन माँगते है ।"

—पण्डितराज जगन्नाथ

"हरेरद्य द्वारे शिव ! शिव ! शिवाना कलकल "

—जगन्नाथपण्डितराज

इतस्तु दृश्यता कि भवति पुण्यनगर इति । जाल्म–यवनाखेट-व्यसनिन शिववीरस्य शन शनैर्दिल्लीश्वरेणापि सह वैर ववृधे । दिल्लीश्वरस्तु शास्तिखान–नामान कञ्चिद् यवन–वीर प्रेष्य पुण्य-नगर तद्धस्तादाचिच्छिदे । सम्प्रति हि पुण्यनगरे शिववीराध्युपि-तचरे महाप्रासादे सपरिवार शास्तिखान प्रतिवसति । आसन्ने

यद्यपि तदात्वे बहवो ब्राह्मणब्रुवा धर्माधर्मविवेकविधुरास्तात्कालिकावस्थिति-मात्रदृष्टयोऽप्यभवन्, तथापि तेषामेव ब्राह्मणाना विशिष्टा सख्याऽऽसीद् ये जीविका-निर्वाह-प्रकारेऽदत्तदृष्टयस्त्यागिनो धर्म-रक्षण-मात्र-व्रता इति सूचयति पद्यखण्डेना-नेन । वक्ता चास्य दिल्लीवल्लभ-पाणि पल्लवतले नवीनस्य वयसो यापक इति परम वैशिष्टयम् । अपरा चात्र कथाऽऽगमिष्यति शिववीरहस्ताद् "शास्तिखान '–द्वारा दिल्लीवल्लभेन स्वायत्तीकृतस्य पुण्यनगरस्य, तच्च सिहपराक्रमस्य शिव-वीरस्य द्वारि शृगालसञ्चरणान्नातिरिच्यते यवनहतकसचरणमिति समुपक्षिपति द्वितीयेन तदीयेनैव पद्यखण्डेन–हरेरद्येति । शिवानाम् = शृगाल-शृगालीनाम् । "पुमान् स्त्रिया" त्येकशेप । जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणाम्, यवनानाम्, आखे-टस्य व्यसनिन । ववृधे = एधामास । तद्धस्तात् = शिववीरकरात् । आचि-च्छिदे = प्रसह्य जग्राह । स्वायत्तीचकारेति यावत् । "छीन लिये" इति हिन्दी । "छिदिर् द्वैधीकरण" इत्यस्य लिटि रूपम् । अध्युपित भूतपूर्वमध्युपितचरम्,

---

"शिव ! शिव ! आज सिह के दरवाजे पर गीदड कोलाहल कर रहे हैं ।'

—पण्डितराज जगन्नाथ

इधर देखिये पूना नगर मे क्या हो रहा है । जालिम यवनो का शिकार खेलने के शौकीन महाराज शिवाजी का, धीरे-धीरे दिल्ली सम्राट् औरगजेब के साथ भी वैर बढ गया । औरगजेब ने शाइस्ता खाँ नामक किसी यवन वीर को भेजकर शिवाजी के हाथ मे पूना नगर छीन लिया । इस समय पूना नगर के उस राजमहल मे जहाँ पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, सपरिवार शाइस्ता खा

सिहदुर्गे च ससेन शिववीरो विराजते। परस्परं च च्छलाशङ्का युद्धाशङ्काश्च जरीजृम्भन्ते।

अथैकदा रजन्या सिहदुर्गाविदूर एव सुकोमल-शादाया कलित-प्रसादाया केकि-केका-विहित-प्रहरि-प्रातिनिध्याया भुवि, निष्कृप-कृपाण-पाणि, कञ्चुकाच्छादित-कठिन-कवच, कलित-सैनिक-भट-वेष श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परित पर्यटन्, दुग्ध-धारयेव क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितै पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारा-

"भूतपूर्वे चरडि" ति चरट्। शिववीरेणाध्युषितचरम् तस्मिन्निति विग्रह। छला-शङ्का =धौर्त्यातङ्का। जरीजृम्भन्ते = मुख व्यादायेव वृद्धिमतिशयेन गच्छन्ति। "जृभी गात्रविनाम्" इत्यस्य यङ्लुकि रूपम्। सुकोमला शादा = हरिततृणानि यस्या तस्याम्। "शादो जम्बालशष्पयोरि"त्यमर। कलित = सम्पन्न, प्रसाद = नैर्मल्य यया तस्याम्। केकिकेकाभि = मयूरवाणीभि, 'केकावाणी मयूरस्ये' त्यमर। विहितम् = सम्पादितम्, प्रहरिणाम् = यामिकानाम्, प्रातिनिध्यम्= प्रतिनिधिकर्म यस्या तस्याम्। "गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणीति" ष्यञ्। भुवो विशेषणानि त्रीणि। शिववीर विशिनष्टि—निष्कृप = कृपाशून्य, कृपाण पाणौ यस्य स। कञ्चुकेन = चोलकेन, आच्छादित = प्रावृत, कठिन = दृढ, कवच = तनुत्र, यस्य स। कलित सैनिकभटस्य वेष. = नेपथ्य येन स। "सेनारक्षास्तु सैनिका" इत्यमर, "सेनाया समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च त" इति चामर, "रक्षति" इति ठक्। जोत्स्नया = कौमुद्या। प्रकाशितै = प्रद्योतितै।

रह रहा है। समीप मे ही स्थित सिहगढ मे अपनी सेना के साथ महाराज शिवाजी रह रहे है। शाइस्ता खाँ और शिवाजी मे परस्पर छल और युद्ध की आशङ्काएँ बढती जा रही है।

एक दिन रात मे सिहगढ से थोडी ही दूर पर सुकोमल हरी-हरी घास वाली निर्मल भूमि पर—जहाँ मयूर मानो बीच-बीच मे बोल कर पहरा दे रहे थे—हाथ मे निर्दय कृपाण लिये, कञ्चुक के नीचे लौहकवच पहने, एक सैनिक के छद्मवेष मे घूमते हुए महाराज शिवाजी, दूध की धारा से धुले हुए से लगने वाले, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित मार्गों से समीपवर्ती शिवमन्दिर के पास पहुँचे। मन्दिर

"हरेरद्य द्वारे शिव ! शिव ! शिवाना कलकल "

—जगन्नाथपण्डितराज

इतस्तु दृश्यता कि भवति पुण्यनगर इति । जाल्म-यवनाखेट-व्यसनिन शिववीरस्य शन शनैर्दिल्लीश्वरेणापि सह वैर ववृधे । दिल्लीश्वरस्तु शास्तिखान-नामान कश्चिद् यवन-वीर प्रेष्य पुण्य-नगर तद्धस्तादाचिच्छिदे । सम्प्रति हि पुण्यनगरे शिववीराध्युपि-तचरे महाप्रासादे सपरिवार शास्तिखान प्रतिवसति । आसन्ने

यद्यपि तदात्वे बहवो ब्राह्मणब्रुवा धर्माधर्मविवेकविधुरास्तात्कालिकावस्थिति-मात्रदृष्टयोऽप्यभवन्, तथापि तेषामेव ब्राह्मणाना विशिष्टा सख्याऽऽसीद् ये जीविका-निर्वाह-प्रकारेऽदत्तदृष्टयस्त्यागिनो धर्म-रक्षण-मात्र-व्रता इति सूचयति पद्यखण्डेना-नेन । वक्ता चास्य दिल्लीवल्लभ-पाणि पल्लवतले नवीनस्य वयसो यापक इति परम वैशिष्ट्यम् । अपरा चात्र कथाऽऽगमिष्यति शिववीरहस्ताद् "शास्तिखान"-द्वारा दिल्लीवल्लभेन स्वायत्तीकृतस्य पुण्यनगरस्य, तच्च सिहपराक्रमस्य शिव-वीरस्य द्वारि शृगालसञ्चरणान्नातिरिच्यते यवनहतकसचरणमिति समुपक्षिपति द्वितीयेन तदीयेनैव पद्यखण्डेन—हरेरद्येति । शिवानाम् = शृगाल-शृगालीनाम् । "पुमान् स्त्रिया" इत्येकशेष । जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणाम्, यवनानाम्, आखे-टस्य व्यसनिन । ववृधे = एधामास । तद्धस्तात् = शिववीरकरात् । आचि-च्छिदे = प्रसह्य जग्राह । स्वायत्तीचकारेति यावत् । "छीन लिये" इति हिन्दी । "छिदिर् द्वैधीकरण" इत्यस्य लिटि रूपम् । अध्युषित भूतपूर्वमध्युषितचरम्,

---

"शिव ! शिव ! आज सिह के दरवाजे पर गीदड कोलाहल कर रहे हैं ।'

—पण्डितराज जगन्नाथ

इधर देखिये पूना नगर मे क्या हो रहा है । जालिम यवनो का शिकार खेलने के शौकीन महाराज शिवाजी का, धीरे-धीरे दिल्ली सम्राट् औरगजेब से साथ भी वैर बढ गया । औरगजेब ने शाइस्ता खाँ नामक किसी यवन वीर को भेजकर शिवाजी के हाथ से पूना नगर छीन लिया । इस समय पूना नगर के उस राजमहल मे जहाँ पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, सपरिवार शाइस्ता खाँ

सिंहदुर्गे च ससेन शिववीरो विराजते। परस्परं च च्छलाशङ्का युद्धाशङ्काश्च जरीजृम्भन्ते।

अथैकदा रजन्या सिंहदुर्गाविदूर एव सुकोमल–शादाया कलित-प्रसादाया केकि–केका–विहित–प्रहरि–प्रातिनिध्याया भुवि, निष्कृप-कृपाण–पाणि, कञ्चुकाच्छादित–कठिन–कवच, कलित–सैनिक-भट–वेष श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परित पर्य्यटन्, दुग्ध-धारयेव क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितै पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारा-

---

"भूतपूर्वे चरडि" ति चरट्। शिववीरेणाध्युषितचरम् तस्मिन्निति विग्रह। छला-शङ्का = धौर्त्यातङ्का। जरीजृम्भन्ते = मुख व्यादायेव वृद्धिमतिशयेन गच्छन्ति। "जृभी गात्रविनामे" इत्यस्य यङ्लुकि रूपम्। सुकोमला शादा = हरिततृणानि यस्या तस्याम्। "शादो जम्बालशष्पयोरि"त्यमर। कलित = सम्पन्न, प्रसाद = नैर्मल्य यया तस्याम्। केकिकेकाभि = मयूरवाणीभि, "केकावाणी मयूरस्ये" त्यमर। विहितम् = सम्पादितम्, प्रहरिणाम् = यामिकानाम्, प्रातिनिध्यम् = प्रतिनिधिकम यस्या तस्याम्। "गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणीति" ष्यञ्। भुवो विशेषणानि त्रीणि। शिववीर विशिनष्टि—निष्कृप = कृपाशून्य, कृपाण पाणौ यस्य स। कञ्चुकेन = चोलकेन, आच्छादित = प्रावृतः, कठिन = दृढ, कवच = तनुत्र, यस्य स। कलित सैनिकभटस्य वेष. = नेपथ्य येन स। "सेनारक्षास्तु सैनिका" इत्यमर, 'सेनाया समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च त" इति चामर, "रक्षति" इति ठक्। जोत्स्नया = कौमुद्या। प्रकाशितै = प्रद्योतितै।

रह रहा है। समीप मे ही स्थित सिंहगढ मे अपनी सेना के साथ महाराज शिवाजी रह रहे हैं। शाइस्ता खाँ और शिवाजी मे परस्पर छल और युद्ध की आशङ्काएँ बढती जा रही हैं।

एक दिन रात मे सिंहगढ से थोडी ही दूर पर सुकोमल हरी-हरी घास वाली निर्मल भूमि पर—जहाँ मयूर मानो बीच-बीच मे बोल कर पहरा दे रहे थे—हाथ मे निर्दय कृपाण लिये, कञ्चुक के नीचे लोहकवच पहने, एक सैनिक के छद्मवेष मे घूमते हुए महाराज शिवाजी, दूध की धारा से धुले हुए से लगने वाले, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित मार्गों से समीपवर्ती शिवमन्दिर के पास पहुँचे। मन्दिर के

जगाम। तत्र च द्वारि रेणु–रूषित–रोम—कुहरम्, शफोत्फालित-मृत्स्ना-स्नातम्, त्वरितगति-श्वास-प्रश्वास-सहचरित-ह्णित्कार-सूचित-क्लमम्, उत्थायोत्थाय पृष्ठमुत्कम्प्य, ग्रीवामुद्धूय, पौन पुन्येन पतित्वा, भुवि विलुण्ठन्त कञ्चनाश्वमद्राक्षीत् 'कस्यायम्? कुतोऽयम्? इति मनसि विचिन्वश्च समीपमागत्य, चुचुत्कारैरश्व सान्त्वयन्त हरित-तृण-भार च पुरत प्रक्षिपन्त कमपि शूद्र-युवकमप्यवालोकयत्। त च विवर्णवदनम्, आजानु–धूलि–धूसरित–चरण–युगलम्, मन्थरितशरीरम् स्वेद–क्लिन्न चावलोक्य, "दूरत कश्चन

उत्प्रेक्षते—दुग्धधारया = पय प्रवाहेण। क्षालितैरिव = धौतैरिव "आराद् दूरसमीपयो"रित्यमर, तद्योगे "अन्यारादि"ति पञ्चमी। तत्र च द्वारि कञ्चनाश्व-मद्राक्षीदिति सम्बन्ध। अश्व विशिनष्टि—रेणुभि = धूलिभि, रूषितानि = छुरितानि, रोम्णा कुहराणि = छिद्राणि, यस्य तम्। शफोत्फालितया = खुरोद्धूलितया, मृत्स्नया = प्रशस्तया मृदा, स्नातम् = अनुलिप्तम्। त्वरित-गतीनाम् = शीघ्रगमनानाम्, श्वासप्रश्वासानाम्, सहचरितेन = सहवासिना, ह्णित्कारेण = हेषारवेण, सूचित =प्रकटीकृत, क्लम = दूरमार्गानुधावनोत्थ श्रमो येन तम्। अश्वाना दीर्घश्वासप्रश्वासौ हेषासहितावेव भवत। उत्थायेत्यादि भुवि विलुण्ठन्तमित्यन्त स्वभावोक्ति। उत्कम्प्य=कम्पयित्वा। विवर्णवदनम्= खिन्नाननम्। आजानु = जानुपर्यन्तम्, धूल्या = रजसा, धूसरितम् = मलिनम्,

---

द्वार पर उन्होंने धूल धूसरित रोमकूप वाले किसी घोडे को देखा, जिसका शरीर खुरो से उछलने वाली मिट्टी से लथपथ था। उसकी श्वास-प्रश्वास की गति तेज थी, साथ-ही-साथ वह हिनहिनाता भी था, जिससे प्रकट होता था कि वह थका है। वह उठता था, पीठ हिलाता था, गर्दन उठाता था और पुन पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगता था। उसे देख कर मन ही मन यह सोचते हुए कि "यह घोडा किसका है", "कहा से आया है" शिवाजी ने समीप आकर, चुमकार कर उस घोडे को सान्त्वना दे रहे और उसके आगे हरी घास डाल रहे एक शूद्र युवक को भी देखा। उस शूद्र युवक का उतरा हुआ मुंह, घुटनो तक धूलधूसरित

समायातोऽस्ति, तद्भृत्य एवायम्" इति निश्चित्य शनैरप्राक्षीत्-"कस्यायमश्व ?" इति। स तु स्वकार्य-सलग्नोऽन्यमनस्क एव, "समायात कोऽपि" इत्युदतरत्। पुनरपि "कुत आगता यूयम् ?" इति पृच्छति शिववीरे च, "किमिव निरर्थं प्रश्नानुट्टङ्कयसि, आलपितुमिच्छसि चेद् घटिका-युगलमतिवाह्य समायास्यसि, तथा पूरित-जठर-पिटक, ताम्रक-धूमपानैर्गलनल कवोष्णयन्, त्वया सह वार्त्ताभिरध्व-परिश्रममल्पयिष्यामि।" तदाकर्ण्यान्तर्विहसन्निव शिववीर "तथा करिष्याव, किन्तु कथय तावत्, कुत आगता यूयम् ?"—इति पुनरपृच्छत्। स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपमवादीत्—"कुत आगता यूयम् ? कुत आगता यूयमिति कुत्कारै स्फोटितौ मे कर्णौ, वय

चरणयुगल यस्य तम्। मन्थरितम् = स्थगितम्, शरीरम् = देहो यस्य तम्। स्वेदेन = क्लमजलेन, क्लिन्नम् = आर्द्रम्। शूद्रयुवकविशेषणानीमानि। अन्य-मनस्क इव = विमना इव। प्रश्ने प्रश्नकर्त्तरि च ध्यानमददवेति यावत्। निरर्थम् = प्रयोजनशून्यम्। पूरित = भरित, जठरमेव पिटक = मञ्जूषा येन तादृश। "पिटक पेटक पेटा मञ्जूषे" त्यमर। गलनलम् = कण्ठरन्ध्रम्, कवोष्णयन् = ईषदुष्ण कुर्वन्।

पैर और थका तथा पसीने से लथपथ शरीर देख कर महाराज शिवाजी ने यह समझ कर कि "कोई अश्वारोही दूर से आया है और यह उसका नौकर है" उससे पूछा 'यह घोडा किसका है ?' अपने काम मे लगे हुए उसने अन्यमनस्कतापूवक उत्तर दिया "कोई आया है।" पुन महाराज शिवाजी के यह पूछने पर कि "तुम लोग कहाँ से आये हो ?" वह बोला, "क्यो बेकार के प्रश्न पूछ रहे हो ? यदि बातचीत करना चाहते हो तो दो घडी बाद आना, तब अपना पेट-पिटारा भर कर, तम्बाकू पीता (अपनी कण्ठनली को कुछ गर्म करता) हुआ, तुम्हारे साथ बातचीत कर के रास्ते की थकावट दूर करूँगा।" यह सुन कर मन-ही-मन हँसते हुए शिवाजी ने पुन पूछा "अच्छा, ऐसा ही करेंगे, पर तब तक यह तो बताओ कि तुम लोग आ कहाँ से रहे हो ?" वह घोडे की ही ओर देखता हुआ

दिल्लीत आगता, दिल्लीतो दिल्लीतो दिल्लीत, कथय किं गज ददासि घोटक वा ?" तदाकर्ण्य, शिववीरस्तत्प्रकृतिं परिज्ञाय, शनै परिवृत्य, मन्दिरस्य पश्चिमदेशे पर्य्यटितुमारेभे ।

"कोऽय, कुतोऽय, चरो वा सदेशहरो वा, कपटपथिको वा, अस्मत्पक्षपातो वा, शत्रुपदातिर्वा, कोऽप्युभयपक्षोदासीनो वेति सद्य एव विज्ञेयम्" इति विचारयन्, मन्दिर-पाश्चात्त्य-प्राचीर-गवाक्षादायान्त कञ्चिदस्पष्टालाप–ध्वनिमश्रौषीत्। क्षण विरम्य च, गवाक्ष-समीपमागत्य, ध्वनिप्रतिध्वनिभिरव्यक्ताश-बहुलामप्येवमुक्ति निश्चिच्ये यत्—

"चिराय दिल्ली-वल्लभ-पाणिपल्लव-तल्लज-च्छायामध्युषितो-

मन्दिरस्य = देवालयस्य, पाश्चात्त्य =पश्चाद् भव, य प्राचीरगवाक्ष = प्रान्ततोवृति-वातायनम्, तस्मात् "प्राचीर प्रान्ततो वृति" इत्यमर । अस्पष्ट = अव्यक्त य, यथा कथचिदेवमेवमिति निश्चित आलापस्य = पारस्परिकवार्त्ताया, ध्वनि, तम् । ध्वनिप्रतिध्वनिभि = शब्दप्रतिशब्दै, अव्यक्ताशबहुलाम् = अस्पष्टभागप्रचुराम् । निश्चिच्ये = निश्चिकाय ।

झुंझला कर बोला "तुम लोग कहाँ से आये हो, तुम लोग कहाँ से आये हो," इस कहाँ कहाँ से तो तुम मेरे कान फोडे डाल रहे हो, हम दिल्ली से आये है दिल्ली से, दिल्ली से, दिल्ली से, कहो, हाथी देते हो कि घोडा ?" यह सुन कर शिवाजी उसका स्वभाव समझ कर, धीरे से लौट कर, मन्दिर के पश्चिम की ओर टहलने लगे ।

"यह कौन है, कहाँ से आया हे, गुप्तचर है या दूत, छद्मवेषी पथिक हे या हमारे ही पक्ष का कोई व्यक्ति, शत्रुसेना का कोई सैनिक है या दोनो पक्षो से उदासीन कोई तटस्थ व्यक्ति, यह शीघ्र ही जानना चाहिये" यह विचार करते हुए शिवाजी ने मन्दिर की पश्चिम ओर की चहारदीवारी की खिडकी से आती हुई फुनफुसाहट (वातचीत की अस्पष्ट और मन्द ध्वनि) सुनी । क्षण भर रुक कर, खिडकी के पास आकर, शिवाजी ने, ध्वनि-प्रतिध्वनि के कारण उस अस्पष्ट वातचीत के अधिकाश भाग के अव्यक्त होने पर भी, उसके अधोलिखित उक्ति होने का निश्चय किया ।

ऽस्मि। पर वय कवय कस्यापि राजत्व वा प्रतापित्व वा आढ्यत्व वा नापेक्षामहे, न वा कस्यापि साभिमान—भ्रूभङ्गम् उत्तुङ्ग—कोपा—ञ्चिताखर्व—गर्व—बर्बरता वा सहामहे । न तस्य तादृश भू-वलये राज्य यादृशमस्माक सारस्वतसृष्टौ । तस्य क्रीतदासा अपि न तदीहा-समकालमेव बद्ध-कर-सम्पुटा यथोचितावस्थाना पुरोऽवतिष्ठन्ते यथाऽस्माक पदानि वाक्यानि छन्दासि अलङ्कारा

चिरायेत्यारभ्य कि भात्रीत्यन्त पथिकस्य कस्यचनोक्ति । स चाय पथिको हिन्दीकविकुलमूधन्यो भूषण एवेत्यग्रे स्फुटीभविष्यति। दिल्लीवल्लभपाणिपल्लव-तल्लजस्य = दिल्लीपति-करकिसलय-प्रशस्तस्य, छायाम् = आश्रयम् । "उपान्वध्याङ्वस" इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । अध्युषित = कृतनिवास । आढ्यत्वम् = धनिकत्वम् । अभिमानेन सहित साभिमान , स चासौ भ्रूभङ्ग = भ्रूविक्षेप , तम् । उत्तुङ्गकोपेन = विपुलक्रोधेन, अञ्चिताम् = भूषिताम् अखर्वगर्वाम् = अनल्पदर्पाम् बर्बरताम् = मूर्खताम् । सरस्वत्या इय सारस्वती = वाग्देवी, सा चासौ सृष्टि =सर्ग , तस्याम् । क्रीतदासा =स्वाधीनीकृता भृत्या । न केवल वेतनमात्रभोगिन । तदीहासमकालम् = तदिच्छासमसमयम् । बद्धकरसम्पुटा = प्राञ्जलय । यथोचितावस्थाना = समुचितस्थानस्थितय । पदानि = सुबन्तानि तिङन्तानि च। "सुप्तिङन्त पदमि"ति पाणिनिदर्शनम् । "एतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चे"ति भणतो निरुक्तकारस्याप्यत्रैव तात्पर्यम् । उपसर्गनिपातयोरपि सुबन्तत्वात् नाम्नश्च सुबन्तत्वाविशेषादिति वैयाकरणा । वाक्यानि = सुबन्तचया, तिङन्तचया , सुबन्ततिङन्तचयाश्च । "सुप्तिङन्तचयो वाक्यामि' ति अमरकार । "एकतिङ् वाक्यमि"ति

"मै बहुत दिनो तक दिल्ली-सम्राट् औरगजेब के प्रशस्त करपल्लव की छाया मे रहा हूँ। पर हम कवि लोग न तो किसी के राजा, प्रतापी या धनी होने की ही परवाह करते है और न किसी का अभिमानपूवक भौहे टेढी करना, क्रोधपूर्ण, गर्व या बर्बरतापूण व्यवहार ही सहते हैं। औरगजेब का पृथ्वी पर वैसा राज्य नही है जैसा हमारा काव्य जगत् मे। उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही तत्क्षण हाथ जोडकर उसके सामने आकर यथोचित स्थान पर वैसे नही खडे हो

रीतयो गुणा रसाश्च । स दीनारसभारैरपि न तथा परास्तोषयितुमलम्, यथा वय केवल वचनभङ्गीभिरेव पारयाम । अस्मच्छृङ्गार-रस-रसायनकमास्वाद्य जित-राग-द्वेषो मुनिरपि प्रतीपदर्शिनी-मनुकूलयितुमाकुल कल्पेत । अस्मद्वैराग्य-कवितामाकर्ण्य रागोऽपि

वदत कात्यायनस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याकरेभ्योऽवधारणीयम् । छन्दांसि = मात्रा वर्णभेदभिन्नान्यार्या-भुजङ्गप्रयातादीनि । अलङ्कारा = काव्यशोभाऽऽधायका अनुप्रासोपमादय । रीतय = पदसङ्घटनारूपा वैदर्भीप्रभृतय । गुणा = रसधर्मा श्लेषाद्यन्यतमा । रसा = शृङ्गारादय । ' विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस-निष्पत्तिरि"ति भरताचार्यसूत्रम् । एतदर्थ काव्यप्रकाशादिभ्योऽवधारणीय । दीनारसम्भारै = स्वर्णमुद्राकोटिभि । तोषयितुम् = प्रसादयितुम् । वचन-भङ्गीभि = कथनप्रकारै । कवित्वेनेति यावत् । अस्माक शृङ्गाररस एव रसायनकम् = सर्वश्रेष्ठमाषधम् । राग = विषयाभिलाप, द्वेष = शत्रुता, तौ जितौ येन तादृश मुनि = मननशील । प्रतीप द्रष्टु शील यस्यास्ता प्रतीप-दर्शिनी "प्रतीपदर्शिनी वामे"त्यमर । अनुकूलयितुम् = वशयितुम् । आकुल = विह्वल ।

"शृङ्गारी चेत् कवि काव्ये जात रसमय जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरस निखिल भवेत् ॥"

इति हि माननीयपादा । वैराग्यजनिका कविता वैराग्यकविता, ताम् । रागोऽपि विरज्येत् = विषयाभिलापोऽपि विरागमागच्छेत् । रूपहानिरिय रागस्य विरागिता नाम । को हि नाम सचेता —

"यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद् बहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोऽय शुन काकाश्च वारयेत् ॥"

जाने, जैसे हमारी इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलङ्कार, रीति, गुण और रस उपस्थित होते हैं । वह करोड़ो दीनार देकर भी दूसरो को उतना प्रसन्न नही कर सकता जितना हम केवल अपनी वाग्विदग्धता से ही कर सकते है । हमारे शृगाररस रूप रसायन का स्वाद चख लेने पर वीतराग जितमत्सर मुनि भी वामाक्षियो को वश मे करने के लिये व्याकुल हो जाय, हमारी

विरज्येत् । अस्मद्वीर-रस-कविता चाऽऽकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्ध उत्तिष्ठेत् । यस्य भाग्ये चिरावस्थायिनी कीर्ति , समुद्र-कल्लोलाघात-सह च यश , स एवास्मानाद्रियते । न वय मीनानिव पीनान्, इभानिव तुन्दिभान् , भेकानिव निर्विवेकान् , वृषदशकानिव कपट-हिसकान् , काकानिवाऽऽस्वादित-दुर्विपाकान्, वलीमुखानिव चञ्चल-मुखान्, शृगालानिव कलित-धूर्त्तताभालान् , द्विजिह्वानिव च द्विजिह्वान् ,

इत्यादि निशम्य बुध्वा चेतदथ पुन पाञ्चभौतिकदेहरक्षणसक्षण स्यात् ? एवमन्येष्वप्यूहनीयम् । म्रियमाणोऽपि = प्राणास्त्यजन्नपि । अतिशयोक्ति । उत्तिष्ठेत् = उत्थितो भवेत् । "उदोऽनूर्ध्वकर्मणी"त्यात्मनेपद न, ऊर्ध्वकर्मणो विवक्षितत्वात् । भाग्ये = भागधेये । चिरावस्थायिनी = बहुकालव्यापिनी । समुद्रस्य = अकूपारस्य, कल्लोलानाम् = लहरीणाम्, आघातस्य = ताडनस्य, सहम् = सोढु क्षमम् । समुद्रान्त व्याप्ता कीर्त्तिर्यस्येति वाच्योऽर्थ । आद्रियते = सत्करोति, पीनान् = स्थूलान् । कानिवेत्युपमिनोति । एवमन्यत्राप्युपमालङ्कारो द्रष्टव्य । इभान् = गजान् । तुन्दिभान् = स्थूलोदरान् । भेकान = मण्डूकान् । निर्विवेकान् = विचारशून्यान् । वृषदशकान् = बिडालान् । बिडालो मार्जारो वृषदशक आखुभुगि"त्यमर । कपटहिसकान् = छद्महिसालग्नान् । मार्जारा हि स्व गोपित्वा मृगया कुर्वन्ति । काकान् = करटान् । आस्वादित-दुर्विपाकान् = भुक्तमलान् । वलीमुखान् = वानरान् । चञ्चलमुखान् = चपलमुखान् । अस्थिरवाच इति यावत् । शृगालान् = क्रोष्टून् । कलिता = गृहीता, धूर्त्ततायाः = वञ्चनस्य, माला = परम्परा, यैस्तान् । द्विजिह्वान् =

वैराग्यकविता को सुनकर राग भी विरक्त हो जाय, और हमारी वीर रस की कविता सुनकर मरणासन्न व्यक्ति भी युद्ध करने को उठ बैठे। जिसके भाग्य मे चिरस्थायिनी कीर्ति ओर समुद्र की लहरो की चोट को सहने वाला यश है, वही हमारा आदर करता है । हम ऐसे लोगो की सेवा मे स्वप्न मे भी नही रहते जो मछलियो की तरह मोटे, हाथियो की तरह तुन्दिल, मण्डूको की भाँति विचारशून्य, बिल्लो की तरह छलपूवक हिसा करने वाले, कौओ की तरह अभक्ष्यभक्षक, बन्दरो की तरह चपल मुख वाले, शृगालो की तरह धूर्त (धूर्तता की माला

रीतयो गुणा रसाश्च । स दीनारसभारैरपि न तथा परास्तोषयितुमलम्, यथा वय केवल वचनभङ्गीभिरेव पारयाम । अस्मच्छृङ्गार-रस-रसायनकमास्वाद्य जित-राग-द्वेषो मुनिरपि प्रतीपदर्शिनी-मनुकूलयितुमाकुल कल्पेत । अस्मद्वैराग्य-कवितामाकर्ण्य रागोऽपि

वदत कात्यायनस्याप्यत्रैव तात्पयमित्याकरेभ्योऽवधारणीयम् । छन्दासि = मात्रा-वर्णभेदभिन्नान्यार्या-भुजङ्गप्रयातादीनि । अलङ्कारा = काव्यशोभाऽऽधायका अनुप्रासोपमादय । रीतय = पदसङ्घटनारूपा वैदर्भीप्रभृतय । गुणा = रसधर्मा श्लेषाद्यन्यतमा । रसा = शृङ्गारादय । "विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद् रस-निष्पत्तिरि"ति भरताचार्यसूत्रम् । एतदथ काव्यप्रकाशादिभ्योऽवधारणीय । दीनारसम्भारै = स्वर्णमुद्राकोटिभि । तोषयितुम् = प्रसादयितुम् । वचन-भङ्गीभि = कथनप्रकारै । कवित्वेनेति यावत् । अस्माक शृङ्गाररस एव रसायनकम् = सवश्रेष्ठमोषधम् । राग = विषयाभिलाष, द्वेष = शत्रुता, तौ जितौ येन तादृश मुनि = मननशील । प्रतीप द्रष्टु शील यस्यास्ता प्रतीप-दर्शिनी "प्रतीपदर्शिनी वामे"त्यमर । अनुकूलयितुम् = वशयितुम् । आकुल = विह्वल ।

"शृङ्गारी चेत् कवि काव्ये जात रसमय जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरस निखिल भवेत् ॥"

इति हि माननीयपादा । वैराग्यजनिका कविता वैराग्यकविता, ताम् । रागोऽपि विरज्येत् = विषयाभिलाषोऽपि विरागमागच्छेत् । रूपहानिरिय रागस्य विरागिता नाम । को हि नाम सचेता—

"यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद् वहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोऽय शुन काकाश्च वारयेत् ॥"

जाते, जैसे हमारी इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अल्ङ्कार, रीति, गुण और रस उपस्थित होते है । वह करोडो दीनार देकर भी दूसरो को उतना प्रसन्न नही कर सकता जितना हम केवल अपनी वाग्विदग्धता से ही कर सकते है । हमारे शृगाररस रूप रसायन का स्वाद चख लेने पर वीतराग गतमत्सर मुनि भी वामाक्षियो को वश मे करने के लिये व्याकुल हो जाय, हमारी

विरज्येत् । अस्मद्वीर-रस-कविता चाऽऽकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्ध उत्तिष्ठेत् । यस्य भाग्ये चिरावस्थायिनी कीर्ति , समुद्र-कल्लोलाघात-सह च यश , स एवास्मानाद्रियते । न वय मीनानिव पीनान्, इभानिव तुन्दिभान्, भेकानिव निर्विवेकान्, वृषदशकानिव कपट-हिंसकान्, काकानिवाऽऽस्वादित-दुर्विपाकान्, वलीमुखानिव चञ्चल-मुखान्, शृगालानिव कलित-धूर्त्ततामालान्, द्विजिह्वानिव च द्विजिह्वान्,

---

इत्यादि निशम्य वुध्वा चैतदर्थ पुन पाञ्चभातिकदेहरक्षणसक्षण स्यात् ? एवमन्येष्वप्यूहनीयम् । म्रियमाणोऽपि = प्राणास्त्यजन्नपि । अतिशयोक्ति । उत्तिष्ठेत् = उत्थितो भवेत् । "उदोऽनूर्ध्वकर्मणी"त्यात्मनेपद न, ऊर्ध्वकर्मणो विवक्षितत्वात् । भाग्ये = भागधेये । चिरावस्थायिनी = बहुकालव्यापिनी । समुद्रस्य = अकूपारस्य, कल्लोलानाम् = लहरीणाम्, आघातस्य = ताडनस्य, सहम् = सोढु क्षमम् । समुद्रान्त व्याप्ता कीर्त्तिर्यस्येति वाच्योऽर्थ । आद्रियते = सत्करोति, पीनान् = स्थूलान् । कानिवेत्युपमिनोति । एवमन्यत्राप्युपमालङ्कारो द्रष्टव्य । इभान् = गजान् । तुन्दिभान् = स्थूलोदरान् । भेकान् = मण्डूकान् । निर्विवेकान् = विचारशून्यान् । वृषदशकान् = बिडालान् । बिडालो मार्जारो वृषदशक आखुभुगि"त्यमर । कपटहिंसकान् = छद्महिंसालग्नान् । मार्जारा हि स्व गोपित्वा मृगया कुर्वन्ति । काकान् = करटान् । आस्वादित-दुर्विपाकान् = भुक्तमलान् । वलीमुखान् = वानरान् । चञ्चलमुखान् = चपलमुखान् । अस्थिरवाच इति यावत् । शृगालान् = क्रोष्टून् । कलिता = गृहीता, धूर्त्ततायाः = वञ्चनस्य, माला = परम्परा, यैस्तान् । द्विजिह्वान् =

वैराग्यकविता को सुनकर राग भी विरक्त हो जाय, और हमारी वीर रस की कविता सुनकर मरणासन्न व्यक्ति भी युद्ध करने को उठ बैठे। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति और समुद्र की लहरो की चोट को सहने वाला यश है, वही हमारा आदर करता है। हम ऐसे लोगो की सेवा मे स्वप्न मे भी नही रहते जो मछलियो की तरह मोटे, हाथियो की तरह तुन्दिल, मण्डूको की भांति विचारशून्य, बिल्ली की तरह छलपूर्वक हिंसा करने वाले, कौओ की तरह अभक्ष्यभक्षक, बन्दरो की तरह चपल मुख वाले, शृगालो की तरह धूर्त (धूर्तता की माला

सजीवानिवोपबर्हान्, आत्मस्तुतिमात्ररुचीन्, मूर्तिमत इवाभिमानान्, विद्या-शून्यान्, गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान्, मिथ्या-मोद-रतान्, वाराङ्गना-व्रात-चरणपाताघात-सहान्, मद्य-कीटान्, द्यूतानन्यभक्तान्, नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे । दिल्लीश्वर-पद-विडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि ।

सर्पान् । द्विजिह्वान् = पिशुनान् । सजीवान् = प्राणयुतान्, उपबर्हानिवेत्युत्प्रेक्षा । यथा स्थूल उपबर्हो भवति तथा जडान् स्थूलकायानिति तात्पर्यम् । आत्मस्तुतिमात्ररुचीन् = स्वप्रशंसामात्राभिलाषान् । मूर्तिमत = गृहीतदेहान् । अतिस्तब्धानित्यर्थः । गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान् = कलाविदिव्रज-वैशिष्ट्य-बोध-विरहितान् । मिथ्यामोदे = मोहप्रायानन्दे, केवलं कल्पनयैव समुपस्थापिते, रतान् = सलग्नान् । वाराङ्गनाव्रातस्य = वेश्यानिकरस्य, चरणपाताघातम् = अङ्घ्रिनिपातताडनम्, सहन्ते ये तान् । मद्यकीटान् = आसवभृङ्गान् । अतिमात्रं सुरापायिन इति यावत् । आत्मानं नृपं मन्यन्त इति नृपम्मन्यास्तान् । स्वप्नेऽपि = जाग्रदवस्थायास्तु चर्चैव का, निद्रायामपि नेदृशान् सेवामहे । रसिकान्तरम् = भिन्नं रसिकम् । न हि कवितानिवेदनमरसिकेषु युज्यते । तथा च प्राक्तनं पद्यम्—

"इतरपापफलानि निजेच्छया विलिखतानि सहे चतुरानन ! ।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥"

धारण करने वाले) सर्पों की तरह दो जीभ वाले (अर्थात् झूठ और सच दोनो बोलने वाले, चुगलखोर), सजीव तकिये से, केवल अपनी प्रशंसा मे ही रुचि रखने वाले, मूर्तिमान् अभिमान् विद्याविहीन, गुणियो के गुणो को न समझने वाले, काल्पनिक आनन्द मे ही रमण करने वाले, वेश्याओ के पादप्रहार को सहने-वाले, मदिराकीट और जुए के अनन्य भक्त है तथा अपने को राजा समझते है । मै दिल्लीश्वर पद की विडम्बना करने वाले औरगजेब को भी उक्त प्रकार के नृपाभिमानियो मे से ही एक समझकर, तत्क्षण उससे सम्बन्ध सूत्र तोड कर किसी

पथि चामेर-देशाधीशेन बहुश प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्ली-वलय-कलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य, शिववीर-कीर्त्तीश्च श्राव श्राव कर्ण-योराकृष्ट इव इत समायातोऽस्मि, द्रक्ष्यामि किं भावि ?"—

—इति वक्तार कमपि कवि त्यक्त-दिल्लीश-द्वार निज दिदृक्षु-मत्राऽऽगतमूरीकृत्य, पुन परिक्रम्य, द्वार-मार्गेण मन्दिर प्रविश्य, शिव प्रणम्य, घण्टामाहत्य, बिल्व–दलमुत्थाप्य, नेत्रयो सस्पृश्य शिखाया सस्थाप्य, मृत्तिका-शरावस्थ भस्मालिके विलिप्य, प्रद-क्षिणच्छलेन पान्थाद्युषित-प्रदेशमागत्य तेनाऽऽलपन्त शिवमन्दिरा-

आमेरदेशाधीशेन = जयपुराधीश्वरेण । अद्यतन जयपुरराज्य तदानीम "आमेर" इति ख्यातमासीत् । "अम्बर" इत्यपि व्यवहारस्तत्र । लाला-टिक = भालदर्शिसेवकतुल्य । यथा कार्याकारिण केवल प्रभुभालावलोकमात्र-निरता भवन्ति कुत्सिता भृत्या एवमयमपि दिल्लीकलङ्कस्य क्रोधप्रसन्नताऽवधारणाय केवल तदीयभाल समवलोकयति, न स्वतन्त्रतया किमपि विधातु शक्नोति । सोऽय दुर्वार कलङ्को वज्रलेपायितो मानसिहदुरन्वयजनुपा जयपुरीयाणा स्थास्य-त्याप्रलयम् ।

निज दिदृक्षुम् = शिववीरदर्शनाभिलाषिणम् । "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृ-नामि" ति षष्ठीनिषेध । शिवम् = शङ्करम् । आहत्य = ताडयित्वा । वादयित्वेति यावत् । भस्म = भसितम् । अलिके = ललाटे । "ललाटमलिक गोधिरि" त्यमर । आगन्तुकम् = प्राघुणिकम् ।

अन्य वीर रसिक को खोजता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल पडा । रास्ते मे आमेर (आधुनिक जयपुर) के राजा ने बार-बार प्रार्थना की, पर उसे दिल्ली साम्राज्य के कलङ्क औरगजेब का लालाटिक (भालदर्शी और असमर्थ सेवक) जानकर महाराज शिवाजी का यश सुनकर, उससे आकृष्ट होकर ही इधर आया हूँ, देखूँ क्या होता है ।" ऐसा कहने वाले किसी व्यक्ति को, दिल्लीश्वर औरगजेब का दरबार छोडकर, अपने (शिवाजी) को देखने के लिये यहाँ आया हुआ कोई कवि समझ कर, पुन घूमकर, दरवाजे के रास्ते से मन्दिर मे घुसकर, शिवमूर्ति को प्रणाम कर, घण्टा बजा कर, बिल्वपत्र उठा कर, आँखो से लगाकर, शिखा मे

सजीवानिवोपबर्हान्, आत्मस्तुतिमात्ररुचीन्, मूर्तिमत इवाभिमानान्, विद्या-शून्यान्, गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान्, मिथ्या-मोद-रतान्, वाराङ्गना-व्रात-चरणपाताघात-सहान्, मद्य-कीटान्, द्यूतानन्यभक्तान्, नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे। दिल्लीश्वर-पद-विडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि।

सर्पान्। द्विजिह्वान् = पिशुनान्। सजीवान् = प्राणयुतान्,उपबर्हानिवेत्युत्प्रेक्षा। यथा स्थूल उपबर्हो भवति तथा जडान् स्थूलकायानिति तात्पर्यम्। आत्मस्तुतिमात्ररुचीन् = स्वप्रशंसामात्राभिलाषान्। मूर्तिमत = गृहीतदेहान्। अतिस्नञ्गानित्यर्थ। गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान् = कलावेदिव्रज-वैशिष्ट्य-बोध-विरहितान्। मिथ्यामोदे = मोहप्रायानन्दे, केवलं कल्पनयैव समुपस्थापिते, रतान् = संलग्नान्। वाराङ्गनाव्रातस्य = वेश्यानिकरस्य, चरणपाताघातम् = अङ्घ्रिनिपातताडनम्, सहन्ते ये तान्। मद्यकीटान् = आसवभृङ्गान्। अतिमात्रं सुरापायिन इति यावत्। आत्मानं नृपं मन्यन्त इति नृपम्मन्यास्तान्। स्वप्नेऽपि = जाग्रदवस्थायास्तु चर्चैव का, निद्रायामपि नेदृशान् सेवामहे। रसिकान्तरम् = भिन्नं रसिकम्। न हि कवितानिवेदनमरसिकेषु युज्यते। तथा च प्राक्तनं पद्यम्—

"इतरपापफलानि निजेच्छया विलिखितानि सहे चतुरानन!।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख॥"

धारण करने वाले) सर्पों की तरह दो जीभ वाले (अर्थात् झूठ और सच दोनों बोलने वाले, चुगलखोर), सजीव तकिये से, केवल अपनी प्रशंसा में ही रुचि रखने वाले, मूर्तिमान् अभिमान् विद्याविहीन, गुणियों के गुणों को न समझने वाले, काल्पनिक आनन्द में ही रमण करने वाले, वेश्याओं के पादप्रहार को सहने-वाले, मदिराकीट और जुए के अनन्य भक्त हैं तथा अपने को राजा समझते हैं। मैं दिल्लीश्वर पद की विडम्बना करने वाले औरंगजेब को भी उक्त प्रकार के नृपाभिमानियों में से ही एक समझकर, तत्क्षण उससे सम्बन्ध सूत्र तोड़ कर किसी

पथि चामेर-देशाधीशेन बहुश प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्ली-वलय-कलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य, शिववीर-कीर्त्तीश्च श्राव श्राव कर्णयोराकृष्ट इव इत समायातोऽस्मि, द्रक्ष्यामि कि भावि ?"—

—इति वक्तार कमपि कवि त्यक्त-दिल्लीश-द्वार निज दिदृक्षुमत्राऽऽगतमूरीकृत्य, पुन परिक्रम्य, द्वार-मार्गेण मन्दिर प्रविश्य, शिव प्रणम्य, घण्टामाहृत्य, बिल्व-दलमुत्थाप्य, नेत्रयो सस्पृश्य शिखाया सस्थाप्य, मृत्तिका-शरावस्थ भस्मालिके विलिप्य, प्रदक्षिणच्छलेन पान्थाध्युषित-प्रदेशमागत्य तेनाऽऽलपन्त शिवमन्दिरा-

आमेरदेशाधीशेन = जयपुराधीश्वरेण । अद्यतन जयपुरराज्य तदानीम "आमेर" इति ख्यातमासीत् । "अम्बर" इत्यपि व्यवहारस्तत्र । लालाटिक = भालदर्शिसेवकतुल्य । यथा कार्याकारिण केवल प्रभुभालावलोकमात्रनिरता भवन्ति कुत्सिता भृत्या एवमयमपि दिल्लीकलङ्कस्य क्रोधप्रसन्नताऽवधारणाय केवल तदीयभाल समवलोकयति, न स्वतन्त्रतया किमपि विधातु शक्नोति । सोऽय दुर्वार कलङ्को वज्रलेपायितो मानसिहदुरन्वयजनुपा जयपुरीयाणा स्थास्यत्याप्रलयम् ।

निज दिदृक्षुम् = शिववीरदर्शनाभिलाषिणम् । "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामि" ति षष्ठीनिषेध । शिवम् = शङ्करम् । आहृत्य = ताडयित्वा । वादयित्वेति यावत् । भस्म = भसितम् । अलिके = ललाटे । "ललाटमलिक गोधिरि" त्यमर । आगन्तुकम् = प्राघुणिकम् ।

अन्य वीर रसिक को खोजता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल पडा । रास्ते मे आमेर (आधुनिक जयपुर) के राजा ने बार-बार प्रार्थना की, पर उसे दिल्ली साम्राज्य के कलङ्क औरगजेब का लालाटिक (भालदर्शी और असमर्थ सेवक) जानकर महाराज शिवाजी का यश सुनकर, उससे आकृष्ट होकर ही इधर आया हूँ, देखूँ क्या होता है ।" ऐसा कहने वाले किसी व्यक्ति को, दिल्लीश्वर औरगजेब का दरबार छोडकर, अपने (शिवाजी) को देखने के लिये यहाँ आया हुआ कोई कवि समझ कर, पुन घूमकर, दरवाजे के रास्ते से मन्दिर मे घुसकर, शिवमूर्ति को प्रणाम कर, घण्टा बजा कर, बिल्वपत्र उठा कर, आँखो से लगाकर, शिखा मे

ध्यक्ष प्रणम्य, बद्धाञ्जलिरागन्तुकमपि—"कुत श्रीमान् ? क श्रीमान् ?" इति सादर समपृच्छत् ।

मन्दिराध्यक्षस्तु स्वरेण आकृत्या च त परिचिन्वन्नपि तन्नियम सस्मृत्य न तथाऽचेष्टत, यथा स विज्ञात स्यादपरैः ।

शिववीरस्तु तेन सह चिरमालप्य, तस्य वृत्तान्तमवस्था प्रकृति चावगत्य, चिराय श्रुतचर 'भूषण'कविरित्यभिधान चोररीकृत्य "श्वो द्रष्टा भवान् शिवराजम्" इत्यभिधाय न्यवर्त्तिष्ट ।

निवर्तमानश्च तेनापि "को भवान् ?" इति पृष्ट 'एतद्देशीय कोऽपि वीरोऽस्मि" इत्युदतीतरत् ।

परिचिन्वन् = शिववीरत्वेन जानन् ।

प्रकृतिम् = स्वभावम् । अवगत्य = बुद्ध्वा । उररीकृत्य = स्वीकृत्य, ज्ञात्वेति यावत् । न्यवर्तिष्ट = निवृत्तोऽभूत् । गतवानित्यथ । वीर = राजभट । "सिपाही" इति हिन्दी । उदतीतरत् = उत्तर दत्तवान् ।

बाँध कर, मिट्टी के सकोरे म रखी भस्म को ललाट मे लगाकर, प्रदक्षिणा के बहाने उस स्थल पर—जहाँ वह पथिक था—आकर, उस पथिक के साथ बातचीत करते हुए शिव मन्दिर के अध्यक्ष को पणाम कर, हाथ जोडकर, आगन्तुक से भी सादर पूछा, "आप कहाँ से आये ह और कौन है !"

मन्दिर के अध्यक्ष ने स्वर और आकृति से शिवाजी को पहचानते हुए भी उन (शिवाजी) के नियम की याद करके कोई ऐसी चेष्टा नही की जिससे अन्य लोग उन्हे (शिवाजी को) पहचान सके ।

शिवाजी ने उस पथिक के साथ काफी देर तक बातचीत करके, उसका वृत्तान्त, अवस्था और स्वभाव जानकर, और उसका नाम 'भूषण' कवि—जिसकी प्रसिद्धि उन्होने बहुत दिनो से सुन रखी थी—जान कर "आप कल शिवाजी के दर्शन करे" ऐसा कह कर लौट पडे । लौटते समय, भूषण कवि के "आप कौन है" यह पूछने पर, "इसी देश का एक वीर हूँ" यह उत्तर दिया ।

प्रातरेव च नित्य-नियमान्निर्वर्त्य स्वेष्ट-जन-सहित सभासस्थ एव स्वभृत्येन भूषण-कविमाकारयत् ।

स तु बद्धमहोष्णीष, पादाग्र–पर्य्यन्त–विलम्बमान–कञ्चुक, नारिकेल–फल–सार–सहित यज्ञोपवीत–युगल हस्ते आदधान द्वार-पाल–दर्शितेन पथा सभा प्रविश्य "विजयता महाराज"—इति सिहगर्ज्जनमवधीरयता स्वरेणोच्चैरुच्चार्य स्वोपहार महाराजहस्ते आर्पयत् ।

निर्द्दिष्टस्थान उपविश्य च, स एवाय पूर्वदृष्टो वीर इति निरीक्ष्य, "अहो! वीरो वीरो वीर । वीरमेवान्विष्यन् दिल्लीत इतो यावत् समायातोऽस्मि, वीरमेव च प्राप्तवानस्मि । विजयता धर्मो-द्धारण-धीर, सपत्नोत्सारण-समीर, वीरो महाराज" इत्युदीर्य

नारिकेल-फलस्य सारेण=तत्त्वाशेन, "गरी का गोला" इति हिन्दी, सहितम् । आदधान =धारयन् । स्वोपहारम्=स्वोपायनम् । आर्पयत्= आदरेण दत्तवान् । "ऋ गतिप्रापणयोरि"त्यस्माण्णिचि "अर्त्तिह्रीव्ली-रीक्नूयीक्ष्माय्याता पुङ्णावि"ति पुकि रूपम् । वीरो वीरो वीर = सम्भ्रमेऽनेकशब्दोच्चारणमिति वहव । सपत्नानाम्=शत्रूणाम्, "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विपद्द्वेषणदुर्हृद" इत्यमर । उत्सारणे=दूरीकरणे, समीर =

प्रात काल ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर, अपने सभासदो के साथ सभा मे वैठे शिवाजी ने सभा मे ही अपने सेवक से भूपण कवि को वुलवाया ।

वडी-सी पगडी वाँधे, पैरो तक लटकने वाला लम्बा कुर्ता पहने, हाथ मे गरी का गोला और यज्ञोपवीत की जोडी लिये महाकवि भूपण ने द्वारपाल द्वारा दिखाये गये रास्ते से सभाभवन मे प्रविष्ट होकर, सिहगर्जन को भी तिरस्कृत कराने वाले गम्भीर स्वर से "महाराज की जय हो" यह कह कर अपना उपहार महाराज शिवाजी के हाथ मे रख दिया ।

तदनन्तर दिखाये गये स्थान पर वैठ कर भूपण ने "यह तो वही पहले (कल) देखा हुआ वीर है" यह देखकर, "अहा वीर! वीर!! वीर!!! वीर की खोज मे ही दिल्ली से यहाँ तक आया और वीर से ही आ मिला । जय हो, धर्म

किञ्चित् स्मयमानस्य महाराजस्य मुखमवलोकयस्तत्प्रशसाया वीर-रसमयी कवितामेकामपठत् ।

महाराजस्तु "साधु साधु" इति व्याहृत्य, पुन पठितुमाज्ञप्तवान् । पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत् । इत्येव विशतिवार तेन सा ब्रज–भाषामयी 'कवित्वकाम'नामिका वृत्तिरपाठि । महाराजेन च तस्मै गजाना विंशतिर्वितीर्णा-इत्यद्यापि प्रसिद्ध कविता-रसिकाना मण्डले ।

तदेव च दिनमारभ्य तेनभूषण-कवि स्व-सभाया सस्थापित ।

अथ दृश्यता तत शास्तिखानस्य काऽवस्थेति ।

अस्तमिते भगवति मरीचिमालिनि, अन्धकारेण व्याप्तासु हरित्सु

वाय् । स्मयमानस्य = ईषद्धास्यनिरतस्य । ब्रजभाषामयी = ब्रजभाषाया निर्मिता । तुल्सीदासजन्मन पूर्व ब्रजभाषैव कविताभाषात्वेन गणिता । बहो कालादनन्तरमपि तस्यास्तद् गौरव सुरक्षितमेवाभवत् । अधुना तु प्रायो हिन्द्यामेव कविता कुर्वन्ति । कवित्वकामनामिका = लोके "कवित्त" इत्यपभ्रगतया ख्याता । वृत्ति = छन्द । विंशति, "विंशत्याद्या सदैकत्वे सर्वा सख्येय-सख्ययोरि" त्यमर । गजशब्दस्य प्रथमान्तत्वेऽपि गजा विशतिरित्येव । अस्तमिते = अस्ताचल गते । व्याप्तासु = सङ्कुलासु । हरित्सु = दिक्षु ।

के उद्धार मे धीर, शत्रुओ को उखाडने मे समीर के समान महाराज शिवाजी की जय हो" यह कह कर, कुछ मुस्कराते हुए महाराज शिवाजी के मुख की ओर देखते हुए उनकी प्रशसामे एक वीररसमयी कविता पढी ।

महाराज ने "साधु साधु" कह कर पुन पढने की आज्ञा दी । भूषण के पढने पर तथा सबके प्रसन्न होने पर पुन आज्ञा दी । इस प्रकार भूषण ने बीस बार ब्रजभाषा का कवित्त सुनाया । महाराज ने उसे बीस हाथी दिये यह बात आज भी कविता-रसिको की मण्डली मे प्रसिद्ध है । उसी दिन से महाराज ने भूषण कवि को अपनी सभा मे रख लिया ।

अब देखे, उधर शाइस्ता खाँ की क्या हालत है ।

भगवान् सूर्य अस्ताचल की ओर गमन कर चुके है, दिशाओ मे अन्धकार

किञ्चित् किञ्चिच्चमत्कुर्वत्सु नक्षत्रेषु, शिववीरेणाध्युषितपूर्वस्य महाप्रासादस्याट्टालिकायामात्मीयै शास्तिखान. समुपविष्टोऽस्ति। परितश्चानेके योद्धारो मौद्गला पर्यवातिष्ठन्त। परितो दीपमाला चकास्ति। पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्त-कुसुमसौरभमादाय धीर समीर प्रवहति। शास्तिखानस्तु महदुपधान पृष्ठेनाऽऽक्रम्य, सम्मुखस्थ-रत्न--जटित-धूमपान-यन्त्र-नलिका हस्ते दधन्, मध्ये मध्ये च यूथिका-कोरक-पङ्क्ति-परिवेष्टित-नलिकाग्रत सगुडगुडाशब्द ताम्रकधूममाकर्षन्, पार्श्वस्थ-ताम्बूलवाहकहस्ताद् वीटिकामपि गृह्णन्, उशीर-

चमत्कुर्वत्सु = प्रभा वितरत्सु। नक्षत्रेषु = उडुगणेषु। महाप्रासादस्य = विशालराजमन्दिरस्य। अट्टालिकायाम् = तैलिन्याम्, "अटारी" इति हिन्दी। आत्मीयै = स्वीयै। मौद्गला = मौद्गल्या। "मोगल" इति हिन्दी। पूर्वप्रदर्शिततत्त्वरत्नमते मौद्गल्यगोत्रा इमे क्षत्रिया इति मन्तव्यम्। साहित्याचार्यरामावतारशर्मादयोऽप्येतत्पथपथिका इति न विस्मरणीयम्। पर्यवातिष्ठन्त= परित स्थिता अभूवन्। चकास्ति = दीप्यते। प्रस्फुटताम् = विकसताम् अतिमुक्तकुसुमानाम् = माधवीपुष्पाणाम्, सौरभम् = शोभन गन्धम्। सम्मुखस्थस्य = पुर स्थापितस्य, रत्नजटितस्य = हीरकादिखचितस्य धूमपानयन्त्रस्य = "हुक्का" इति ख्यातस्य, नलिकाम् = "नली" इति लोके ख्याताम्। यूथिकाकोरकाणाम् = माधवीकलिकानाम्, पङ्क्तिभि = राजिभि, परिवेष्टिताया = सर्वतो भूषिताया, नलिकाया अग्रत। "गुडगुडा" इत्यनुक्रियमाणशब्द गुडगुडाशब्द, तेन सहितम्। ताम्रकस्य = "तम्बाकू"

फैल गया है, तारे कुछ-कुछ टिमटिमाने लगे हैं। शाइस्ता खाँ उसी राजप्रासाद में, जिसमें पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, अपने मुसाहिबों के साथ बैठा है। चारों ओर अनेक योद्धा मुगल बैठे हैं। चारों ओर दीपक जल रहे हैं। फुलवाड़ी से, खिलते हुए माधवी पुष्पों की सुगन्ध लेकर, मन्द-मन्द वायु चल रही है। शाइस्ता खाँ एक बड़े मसनद पर पीठ रखे, सामने रखे हुए रत्नजटित हुक्के की नली को हाथ में लिये बैठा है। वह बीच-बीच में माधवी पुष्प की कलियोंकी मालासे विभूषित उस नली के अग्रभाग से गुडगुड शब्द

जल--सिक्त--व्यजन-वातैर्वीज्यमान , परित सस्थापित-सतोय--भाजनस्थ--कुसुम--स्तबकै सुरभीक्रियमाण केनचन कार्यवाहेण सहैवमालपत् ।

शास्तिखान --[मुखात् ताम्रकधूम फूत्कुवन्] वदरदीन ! कथय कीदृशस्ते प्रवन्ध पुण्यनगरे ?

बदरदीन --[करौ सम्पुटीकृत्य] चमूपते, सर्व सुष्ठु ! प्रतिश्रृङ्गाटक प्रतिविपणि प्रतिगोपुर प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते दिल्लीश्वरस्य विजय--पताका । विनाऽऽदेश न कश्चिद् स्पटतम-सोदर्योऽपि

इति ख्यातस्य, धूमम् । पार्श्वस्थ = निकटे तिष्ठन्, य ताम्बूलवाहक तद्धस्तात् वीटिकाम् = ताम्बूलीदलीम् । "वीडा" इति हिन्दी । उशीरजलेन = नलदाम्भसा सिक्तस्य = आर्द्रीकृतस्य, व्यजनस्य वातै । ग्रीष्मे शैत्यपारिमल्याधानार्थ पानीये उशीर ('खस' इति भाषाया) निक्षिपन्ति जना । वीज्यमान = सेव्यमान , परित सस्थापितेषु = सर्वतो निहितेषु सतोयेषु = पानीययुतेषु, भाजनेषु = पात्रेषु, तिष्ठद्भि कुसुमस्तबकै = पुष्पगुच्छै, "गुलदस्ता" इति ख्यातै । कार्यवाहेण = कृत्यसम्पादकेन । अनुचरेणेति यावत् ।

बदरदीन ! सम्बुद्धचन्तम् । "वदरुद्दीन" इति लोकख्यात तन्नाम ।

श्रृङ्गाटक श्रृङ्गाटक प्रतीति प्रतिश्रृङ्गाटकम् । "अव्यय विभक्ती"त्यादिना

करते हुए, तम्बाकू का धुआँ खीचता हे ओर बीच-बीच मे पास मे खडे ताम्बूलवाहक के हाथ से पान का वीडा भी ले लेता हे । उसे खस के जल से भिगोये गये पखो की हवा और चारो ओर रखे जलयुक्त पात्रो मे लगे गुलदस्तो की सुगन्ध मिल रही हे । वह अपने किसी कायकर्ता से इस प्रकार वातचीत कर रहा हे--

शाइस्ता खाँ--(मुख से तम्बाकू का धुआँ निकालता हुआ) वदरुद्दीन ! कहो, पूना नगर मे तुम्हारा कैसा प्रवन्ध हे ?

बदरुद्दीन--(हाथ जोड कर) सेनापति ! सब ठीक ह । प्रत्येक चोराहे, प्रत्येक वाजार, नगर के प्रत्येक बहिर्द्वार, और प्रत्येक गाँव मे दिल्लीपति औरगजेब की विजयपताकाएँ फहरा रही हैं । विना अनुमति के

शक्तो गोपुरावग्रहणी पदा स्प्रष्टुमुल्लङ्घितु वा। औद्वाहिक-वर-यात्रार्थं वा, मृतकोद्वहन-निमित्त वा, श्रीमदादेश-मुद्रापत्र विना ससमारोह न केऽपि पारयन्ति सर्पितुम्। साधारणतोऽपि च द्वित्राधिका न सह पर्य्यटितु शक्नुवन्ति जना। प्रतिप्रत्यूष प्रत्यस्तमनवेल प्रतिमध्याह्न प्रतिनिशीथ च मज्जित-स्थानेभ्य समुत्थिता मौलिवि-वर्यैर्निषाद-स्वरेणोच्चैरुच्चारिता धमद्धमद्ध-

वीप्सायामव्ययीभाव। एवमग्रेऽपि प्रतिविपण्यादौ। शृङ्गाटकम् = चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। विपणि = पण्यवीथिका, "बाजार" इति हिन्दी। गोपुरम् = पुरद्वारम्, "पुरद्वार तु गोपुरमि"त्यमर। पल्लि = कुटी। आभीरादिगेहमिति यावत्। "कुटीकुग्रामयो पल्लिरि" ति शाश्वत। दोधूयन्ते = अतिशयेन कम्पन्ते। रुष्टतमसोदर्य = "रुस्तम" इति ख्यातस्य भ्राता। महान् वलशाली रुस्तम-नामा कश्चिद् यवन पूर्वमासीत्। अवग्रहणीम् = देहलीम्। पदा = अङ्घ्रिणा। उल्लङ्घितुम् = अतिक्रमितुम्। औद्वाहिकी = विवाहसम्बन्धिनी या वरयात्रा = "बारात" इति ख्याता, तस्यै। मृतकोद्वहननिमित्तम् = शववहन-सस्कारहेतुकम्। श्रीमदादेशस्य = भवदाज्ञाया, मुद्रापत्रम् = मुद्राङ्कित पत्रम्। ससमारोह = जनसम्मर्देन सहित यथा स्यात् तथा सर्पितुम् = गन्तुम्। साधारणत = सामान्यरूपेण। नि समारोहमिति यावत्। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा, तेभ्योऽधिका। चत्वारस्तदधिका वा जना न मिथ सयुज्य वार्त्तालापादिक कुर्युरिति साम्प्रतिक-भारत-विधान-शास्त्रीय (ताजीरात हिन्द) चतुश्चत्वारिंशदधिकशततम—(१४४)धाराया अर्थ। स यवनकालसमारब्ध एवेति हृदयम्। मज्जित-स्थानेभ्य = "मसजिद" नामकभवनेभ्य, मौलौ = शिरसि, विरिव पक्षीव, येषा

कोई रुस्तम का भाई भी, नगर के वाहरी दरवाजे की देहली को पैर से छू या लाघ नही सकता। आपकी अनुमति की मुहर से चिह्नित आज्ञापत्र के विना कोई विवाह की बारात या मृतक की अर्थी भी समारोहपूर्वक नही ले जा सकता। वैसे भी दो-तीन से अधिक लोग साथ-साथ नही घूम सकते। प्रतिदिन सुबह, शाम, दोपहर और आधीरात को मस्जिदो से उठने वाली, मौलवियो द्वारा निषाद स्वर से जोर-जोर से की गयी, धमद-

जल–सिक्त–व्यजन-वातैर्वीज्यमान , परित सस्थापित-सतोय–भाजनस्थ–कुसुम–स्तवकै सुरभीक्रियमाण केनचन कार्यवाहेण सहैवमालपत् ।

शास्तिखान —[मुखात् ताम्रकधूम फूत्कुर्वन्] वदरदीन ! कथय कीदृशस्ते प्रवन्ध पुण्यनगरे ?

वदरदीन —[करौ सम्पुटीकृत्य] चमूपते, सर्व सुष्ठु ! प्रतिशृङ्गाटक प्रतिविपणि प्रतिगोपुर प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते दिल्लीश्वरस्य विजय–पताका । विनाऽऽदेश न कश्चिद् स्पष्टतम-सोदर्योऽपि

इति ख्यातस्य, वृमम् । पार्श्वस्थ = निकटे तिष्ठन्, य ताम्बूलवाहक तद्धस्तात् वीटिकाम् = ताम्बूलीदलीम् । "बीडा" इति हिन्दी । उशीरजलेन = नलदाम्भसा सिक्तस्य = आर्द्रीकृतस्य, व्यजनस्य वातै । ग्रीष्मे शैत्यपारिमल्याधानार्थ पानीये उशीर ('खस' इति भाषाया) निक्षिपन्ति जना । वीज्यमान = सेव्यमान , परित सस्थापितेषु = सर्वतो निहितेषु सतोयेषु = पानीययुतेषु, भाजनेषु = पात्रेषु, तिष्ठद्भि कुसुमस्तवकै = पुष्पगुच्छै, "गुलदस्ता" इति ख्यातै । कार्यवाहेण = कृत्यसम्पादकेन । अनुचरेणेति यावत् ।

वदरदीन ! सम्बुद्धयन्तम् । "वदरुद्दीन" इति लोकख्यात तन्नाम ।

शृङ्गाटक शृङ्गाटक प्रतीति प्रतिशृङ्गाटकम् । "अव्यय विभक्ती"त्यादिना

करते हुए, तम्बाकू का धुआँ खीचता है और बीच-बीच मे पास मे खडे ताम्बूलवाहक के हाथ से पान का बीडा भी ले लेता है । उसे खस के जल से भिगोये गये पखो की हवा और चारो ओर रखे जलयुक्त पात्रो मे लगे गुलदस्तो की सुगन्ध मिल रही है । वह अपने किसी कार्यकर्ता से इस प्रकार बातचीत कर रहा है—

शाइस्ता खाँ—(मुख से तम्बाकू का धुआँ निकालता हुआ) वदरुद्दीन ! कहो, पूना नगर मे तुम्हारा कैसा प्रवन्ध है ?

वदरुद्दीन—(हाथ जोड कर) सेनापति ! सब ठीक है । प्रत्येक चौराहे, प्रत्येक बाजार, नगर के प्रत्येक बहिर्द्वार, और प्रत्येक गाँव मे दिल्लीपति औरगजेब की विजयपताकाएँ फहरा रही है । बिना अनुमति के

शक्तो गोपुरावग्रहणी पदा स्प्रष्टमुल्लङ्घितु वा। औद्वाहिक-वर-यात्रार्थं वा, मृतकोद्वहन--निमित्त वा, श्रीमदादेश-मुद्रापत्र विना ससमारोह न केऽपि पारयन्ति सर्पितुम्। साधारणतोऽपि च द्वित्राधिका न सह पर्य्यटितु शक्नुवन्ति जना। प्रतिप्रत्यूष प्रत्यस्तमनवेल प्रतिमध्याह्न प्रतिनिशीथ च मज्जित-स्थानेभ्य समुत्थिता मौलिवि-वर्यैर्निषाद-स्वरेणोच्चैरुच्चारिता धमद्धमद्ध-

वीप्सायामव्ययीभाव। एवमग्रेऽपि प्रतिविपण्यादौ। शृङ्गाटकम् = चतुष्पथम्। 'चौराहा" इति हिन्दी। विपणि = पण्यवीथिका, "बाजार" इति हिन्दी। गोपुरम् = पुरद्वारम्, 'पुरद्वार तु गोपुरमि"त्यमर। पल्लि = कुटी। आभीरादिगेहमिति यावत्। "कुटीकुग्रामयो पल्लिरि" ति शाश्वत। दोधूयन्ते = अतिशयेन कम्पन्ते। रुष्टतमसोदर्य = "रुस्तम" इति ख्यातस्य भ्राता। महान् बलशाली रुस्तम-नामा कश्चिद् यवन पूर्वमासीत्। अवग्रहणीम् = देहलीम्। पदा = अङ्घ्रिणा। उल्लङ्घितुम् = अतिक्रमितुम्। औद्वाहिकी = विवाहसम्बन्धिनी या वरयात्रा = 'बारात" इति ख्याता, तस्यै। मृतकोद्वहननिमित्तम् = शववहन-सस्कारहेतुकम्। श्रीमदादेशस्य = भवदाज्ञाया, मुद्रापत्रम् = मुद्राङ्कित पत्रम्। ससमारोह = जनसम्मर्देन सहित यथा स्यात् तथा सर्पितुम् = गन्तुम्। साधारणत = सामान्यरूपेण। नि समारोहमिति यावत्। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा, तेभ्योऽधिका। चत्वारस्तदधिका वा जना न मिथ सयुज्य वार्त्तालापादिक कुर्युरिति साम्प्रतिक-भारत-विधान-शास्त्रीय (ताजीरात हिन्द) चतुश्चत्वारिंशदधिकशततम--(१४४) धाराया अर्थ। स यवनकालसमारब्ध एवेति हृदयम्। मज्जित-स्थानेभ्य = "मसजिद" नामकभवनेभ्य, मौलौ = शिरसि, विरिव पक्षीव, येषा

कोई रुस्तम का भाई भी, नगर के बाहरी दरवाजे की देहली को पैर से छू या लाँघ नही सकता। आपकी अनुमति की मुहर से चिह्नित आज्ञापत्र के बिना कोई विवाह की बारात या मृतक की अर्थी भी समारोहपूर्वक नही ले जा सकता। वैसे भी दो-तीन से अधिक लोग साथ-साथ नही घूम सकते। प्रतिदिन सुबह, शाम, दोपहर और आधीरात को मस्जिदो से उठने वाली, मौलवियो द्वारा निषाद स्वर से जोर-जोर से की गयी, धमद-

मकितदिगन्तराला ध्वन्यन्तर-निपातन "अल्ला, अल्ला, अल्ला"-इति ध्वनय प्रतिगृहम्, प्रतिप्रासादम्, प्रतिहट्टम् प्रत्यट्टम्, प्रत्यङ्गणम् प्रतिशालम्, प्रतितडागम्, प्रत्याराम चोत्थितै प्रतिशब्दै सहस्र-गुणभूता नभोमण्डल तरङ्गयन्ति। न जानीमो वराका काका इव कुत उड्डीना उदूढ-भ्राष्ट्रा इव दु खदन्दह्यमान-हृदया महाराष्ट्रा ।

शास्तिखान —[प्रसन्नाना स्मयमानाना पार्श्वस्थाना मुखान्यवलोक्य, सकपट-हासम्] अहो ! अहो ! एव किम् ?

बदरदीन —[सादरम्] श्रीमन् ! एवमेव ! हता हता इति हता हिन्दु-हतका ।

ते मौलिवय ="मौलिवी" इति ख्याता, तेषा वर्यै =श्रेष्ठै । ध्वन्यन्तर-निपातनम् =इतरनादमभिभूय । क्रियाविशेषणम् । घमद्धमदितिध्वन्यनुकरणम् । अल्ला =मातेत्यर्थ सस्कृतशब्दस्यास्य । यवना सर्वेश्वर वाचक मन्यन्ते । सागर-पारस्थिता क्षत्रिया महामायाया मन्तार आसन्निति तर्करत्नमतानुयायिन । अट्टम् =अट्टालिका । प्रतिशब्दै =प्रतिध्वनिभि । नभोमण्डल तरङ्गयन्ति= व्याप्नुवन्ति । उदूढभ्राष्ट्रा =अतितप्ताम्बरीषाणि । "क्लीबेऽम्बरीष भ्राष्ट्रो ना" इत्यमर । दु खेन =पराजयप्राप्तिखेदेन, दन्दह्यमानम् =अतिशयेन दह्यमानम्, हृदय येषा ते ।

घमद् शब्द से दिशाओ को गूंजाने वाली, अन्य ध्वनियो को अभिभूत कर देने वाली, "अल्ला, अल्ला, अल्ला' की ध्वनियाँ, प्रत्येक घर, प्रत्येक महल, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक अट्टालिका, प्रत्येक आगन, प्रत्येक शाला, प्रत्येक तालाब और प्रत्येक उपवन से उठने वाली प्रतिध्वनियो से हजारगुनी होकर आकाशमण्डल को तरङ्गित करती है । भट्टी के समान जलते हृदय वाले बेचारे दु खसन्तप्त मराठे कौओं की तरह न जाने कहाँ भाग गये हैं।

शाइस्ता खाँ—(पास मे बैठे प्रसन्न तथा मुस्कराते हुए लोगो के मुख की ओर देख कर कपट की हँसी से) अहा हा, क्या—ऐसा है ?

बदरुद्दीन—(आदरपूर्वक) हाँ हुजूर, ऐसा ही है। इन गये-गुज़रे हिन्दू काफिरो को मरा ही समझिये ।

शास्तिखान —अथ शिव-वियोगेन प्रजा सीदन्ति प्रसीदन्ति वा।

बदरदीन —भगवन् ! सर्वोऽप्यत्यानन्दित समालोक्यते पुण्य-नगर-निवासी जन । सायसमय आसन्न एव जलै सिक्तासु रथ्यासु क्षणे क्षणे खखडखडाशब्द पुष्यरथा प्रधावन्ति । बहव एतद्देशीया अन्यदेशीयाश्च स्वच्छ-परिधाना सुसूक्ष्म-वसनाङ्ग-रक्षिको-त्तरीया वीटिका-राग-रञ्जिताधरा सुवर्णादि-खचित-विविध—यष्टिकान्दोलन-चञ्चल-करा प्रतोलीषु पर्यटन्ति । केचिद् "उत्तरी-याणि भो ! उत्तरीयाणि, नारङ्गाणि नारङ्गाणि, रम्भा रम्भा, व्यजनानि व्यजनानि, मालिका मालिका, पाचक पाचकम्, मुरलिका मुरलिका, क्रीडनकानि क्रीडनकानि, मोदका मोदका, परिमल परि-मलम्"—इति विविधभङ्गीभि सुस्वर स्व-स्व-वस्तूनि विक्रीणते।

सीदन्ति = क्लेशमनुभवन्ति । प्रसीदन्ति = प्रसन्नतामनुभवन्ति । पुष्यरथा = उत्सवादिषु सुखभ्रमणाय यानानि । "असौ पुष्यरथश्चक्रयान न समराय यदि"त्यमर । प्रतोलीषु = रथ्यासु । पाचकम् = कोष्ठ-शोधकमौषधम् । विक्रेतारश्चतुष्पथादिषु प्राय कदलीनागरङ्गादिपण्यवस्तुघोषण-पूर्वं मिलन्तीति ननु दृष्टिगोचरम् । मुरलिका = वश्य । क्रीडनकानि =

शाइस्ता खाँ—हाँ तो शिवाजी के वियोग से प्रजा दुखी है या प्रसन्न ?

बदरुद्दीन—हुजूर ! पूनानिवासी प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दीख पडता है। शाम होते ही पानी छिडकी हुई सडको पर क्षण-क्षण भर मे पुष्यरथ (बग्घियाँ) खड-खड शब्द करते हुए दौडने लगते हैं। साफ सुथरे वस्त्र पहने, महीन कपडो के कुर्ते और उत्तरीय धारण किये, पान की पीक से लाल हो रहे अधरोष्ठ वाले, चञ्चल हाथो मे स्वर्ण आदि जटित विभिन्न छडियाँ लेकर उन्हें हिलाने वाले, इस प्रदेश तथा अन्य प्रदेशो के भी अनेक व्यक्ति सडको पर घूमने लगते है। कुछ "उत्तरीय लो उत्तरीय, नारङ्गी लो नारङ्गी, केले लो केले, पखे लो पखे, माला लो माला, पाचक चूर्ण लो पाचक चूर्ण, बाँसुरी लो बाँसुरी, खिलौने लो खिलौने, लड्डू लो लड्डू, इत्र लो इत्र," इस प्रकार नाना प्रकार की भाव-

कुतश्चिदाकुञ्चिततिरस्करिणीषु अट्टालिका-गवाक्षिकासु विविध-भूषण-विहित-प्रबल-चाकचक्या प्रसाधित-केशा अञ्जन-रञ्जित-नयनाञ्चला सुवर्ण-कुसुमाङ्कित-पट्टाम्बर-धरा मद-विघूर्णित-लोचना उद्भिन्न-यौवना उन्नत-कुचा मसृण-कपोला कपोत-कण्ठ्यो वाराङ्गना' कटाक्ष-जल-वागुराभिर्नव-युवक-मृगान् पाश-यन्ति। किमिव कथयामि? क्वचिदापान-गोष्ठ्य, क्वचिद् मृदङ्गादि-ध्वनय, क्वचिद् द्यूतकोलाहला, क्वचिद् वारवधूतौर्यत्रिकमि-त्यखिलमानन्दमयमवलोक्यते।

"खिलौना" इति हिन्दी। **परिमलम्** = सौगन्धिकम्। "इत्र" इति हिन्दी। **विविधभङ्गीभि** = नानापरिपाटीभि। **विक्रीणते** = विक्रय कुर्वते। **आकुञ्चितासु** = ईषद् दूरीकृतासु, **तिरस्करिणीषु** = यवनिकासु, "पर्दा" इति हिन्दी। **अट्टालिकागवाक्षिकासु** = "अटारी की खिडकियो मे" इति हिन्दी। विविधै, **भूषणै** = अलङ्करणै, विहित प्रबल चाकचक्य यासा ता। **प्रसाधित-केशा** = कङ्कतिकया कृतसीमन्ता। **अञ्जनेन** = कज्जलेन, **रञ्जितानि** = भूषितानि, **नयनाञ्चलानि** = नेत्रप्रान्ता, यासा ता। **सुवर्णकुसुमै** = हिरण्मयतन्तुरचितकुसुमाकृतिभि, **अङ्कितानि** = चिह्नितानि, **पट्टाम्बराणि** = कौशेयवासासि, यासा ता। **उद्भिन्नयौवना** = विकसिततारुण्या, **मसृण-कपोला** = चिक्कणगण्डस्थला। **कपोत-कण्ठ्य** = पारावतकन्धरा। कटाक्ष-जालमेव **वागुरा** = मृगबन्धनानि, "वागुरा मृगबन्धिनी" इत्यमर। ताभि। **नवयुवका** एव मृगा इति रूपकम्। **पाशयन्ति** = बन्धयन्ति। वशीकुर्वन्तीति

भगियो से मधुर स्वर मे बोलते हुए, अपनी-अपनी वस्तुएँ बेचने लगते है। कही लिपटी हुई चिको वाली अट्टालिकाओ की खिडकियो मे बैठी, नाना प्रकार के आभूषणो से चकाचौध उत्पन्न करने वाली, सँवारे हुए बालो वाली, काजल लगे नेत्रो वाली, सोने के फूल कढ़ी रेशमी साडी पहनने वाली, मदमत्त नेत्रो से घूरते वाली, विकसित यौवना, उन्नत कुच, चिकने गाल और कबूतर की-सी गर्दन वाली वेश्याएँ अपने कटाक्ष जालो से नवयुवक रूप मृगो को फाँसती है। क्या-

शास्ति०---तत् किं शिवसहचरा महाराष्ट्रा अपि प्रसादमेवाऽऽसादयन्ति, न तु विषादम् ?

बद०---भगवन् ! स्यान्नाम विषादस्तेषा हृदये, किन्तु बहिः प्रसादमेव दर्शयन्ति ।

इत्याकलय्य अन्येऽपि श्लाघका --"भगवन् ! को नाम जिजीविषु प्रसाद न दर्शयेत् ? प्रकटिक-शिव-वियोग-विषादस्तु बलाद् विषाद एव क्रियेत"--इत्याहु ।

आसीत् तत्रैवोपविष्ट एको वृद्धो वीरश्चान्द्रखाननामा । स तु केवल रोचकमिद मिथ्या-प्रशसनमाकर्ण्य, कर्णयोस्तोद्यमान इव ग्रीवामाकुञ्च्य, भ्रू-युग सन्नमय्य, ओष्ठ-युग कम्पयन्, मनस्येव---

---

यावत् । आपानगोष्ठ्य = मद्यपानसभा । वारवधूनाम् = वेश्यानाम्, तौर्यत्रिकम् = नृत्यगीतम् ।

जिजीविषु = जीवितुमिच्छु । प्रकटित शिववियोगस्य विषाद = क्लेश येन स । विषमत्तीति विषाद = विषभक्षी । हन्येतास्माभिरिति तात्पर्यम् ।

चान्द्रखान-नामा = "चांद खाँ" इति नाम यस्य स । तोद्यमान = कण्टकादिना वेद्धयमान । भ्रूयुगम् = भ्रूयुगलम् । सह युञ्जते = सयुक्ता

क्या कहूँ ? कही मद्यपानगोष्ठियाँ, कही मृदङ्ग आदि की ध्वनियाँ, कही जुए का कोलाहल, कही वेश्याओ का नाचगाना, सब आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है ।

शाइस्ता खाँ---तो क्या शिवाजी के साथी मराठे भी खिन्न न होकर, प्रसन्न ही हो रहे हैं ?

बदरुद्दीन---हुजूर, वे दिल मे भले ही सञ्जीदा हो पर बाहर तो खुशी ही प्रकट करते हैं ।

यह सुनकर और भी खुशामदी बोल पडे--"हुजूर, जिन्दगी चाहने वाला कौन सा ऐसा आदमी है जो प्रसन्नता न प्रकट करेगा । जो शिवाजी के वियोग के विषाद (दुःख) को प्रकट करेगा, उसे बलपूर्वक विषाद (विषभक्षक) ही बना दिया जायगा (अर्थात् मार डाला जायगा)।

वही चांद खाँ नाम का एक बूढा वीर बैठा था । इस रोचक झूठी

"धिगेताश्चाटुकार-हतकान्, ये प्रशसाभिरेव प्रभूनन्धयन्ति। प्रतिक्षणमधिक जाज्वल्यते शिव-तिरस्कार-जन्या ज्वाला महाराष्ट्राणा हृदये। गानेषु पानेषु नृत्येषु कुकृत्येषु चास्मत्सजातीया एव सह युञ्जते, न तु महाराष्ट्र-सिहा। यावदारभ्य चिक्कनदुर्गोऽस्माभिर्गृहीतस्तावदारभ्य महाराष्ट्र-बालकोऽप्यस्माश्चिचर्वयिषुरिव सभ्रुकुटि पश्यति न त्वधीन इति बिभेति। पर्वत-प्रायस्य कोङ्कणदेशस्य केशरिण एते। को जानीते कदाऽऽक्रम्यास्मान् कर्तयित्वा क्रव्यादेभ्यो विकिरिष्यन्ति, परन्तु कृतघ्ना एते मिथ्या-प्रलापैरेव चमूपति वञ्चयन्ति"–इत्यालपत्।
अथ पुनरारब्धवानालपितु शास्तिखान।

भवन्ति। सम्मिलन्तीति यावत्। चिक्कनदुर्ग = "चाकन दुर्ग" इति प्रसिद्ध। चिचर्वयिषु = चवयितुमिच्छु। कर्तयित्वा = छित्वा। क्रव्यादेभ्य = मासभक्षकेभ्य सिहादिभ्य। शतघ्न्य = तोफ।

तारीफ को सुनकर, मानो उसके कानो मे पीडा होने लगी हो इस प्रकार गर्दन सिकोड कर, भौहे नीची कर, अधरोष्ठो को कँपाता हुआ, वह मन ही मन कहने लगा—"इन गये-गुजरे खुशामदियो को धिक्कार हे जो झूठी तारीफो से मालिक को इस प्रकार अन्धा बनाए दे रहे है। मराठो के हृदय मे शिवाजी के अपमान से उत्पन्न होने वाली ज्वाला क्षण-प्रतिक्षण बढती ही जा रही हे। गान, पान, नाच और कुकृत्यो मे तो हमारी ही जाति के लोग इकठ्ठे होते है, न कि मराठे वीर। जब से हमने 'चाकन' दुर्ग छीना है तब से मराठा बच्चा भी, "मै मुगलो के अधीन हूँ" यह सोचकर डरने के बजाय, हम लोगो की ओर क्रोध से भौह तान कर ही देखता है, मानो हमे चबा जाना चाहता हो। ये कोकण के पहाडी प्रदेश के शेर ही है। कौन जाने कब आक्रमण कर के काट-काट कर मासभक्षी सिहादिको के आगे फेंक दे। परन्तु ये कृतघ्न खुशामदी झूठी बकवादो से सेनापति को धोखा दे रहे है, ठग रहे है।"

फिर शाइस्ता खां ने इस प्रकार बातचीत शुरू की।

शा०—अथ क प्रबन्धश्चिक्कनदुर्गस्य ?

ब०—श्रीमन्! तत्रापि परितो नीलध्वजा समुद्धूयन्ते। यथा-स्थान शतघ्न्य सस्थापिता, द्वारेषु च भटा नियुक्ता सन्ति, अन्तश्च सानन्द सेना निवसति।

चान्द्रखान—[मनस्येव] सानन्दम्, न तु सतर्कम् ?

शास्ति०—[स्वय किञ्चिद् विचार्येव, सोत्प्रासम्] सम्मुखयुद्ध प्राप्येत चेद् विजये एव को विलम्ब ?

तावत् तत्रस्थ कश्चिच्चाटुकारो महामदगणिनामा सगात्रविक्षेप प्रावोचत्—

भगवन्! महाराष्ट्रा स्वप्नेऽपि न पारयन्ति सम्मुख योद्धुम्, तथा साहस कलयितु च।

सोत्प्रासम् = सोल्लुण्ठनम्। सोपहासमिति यावत्।

महामदगणि-नामा = मुहम्मदगनी-नामधेय। सगात्रविक्षेपम् = शरीर प्रकम्प्य। हर्षातिरेकादिदम्।

शाइस्ता खाँ—अच्छा, चाकन दुर्ग का क्या प्रबन्ध है ?

बदरुद्दीन—हुजूर, वहाँ भी चारो ओर नीले झण्डे फहरा रहे हैं। यथोचित स्थानो पर तोपे रखी है, द्वारो पर योद्धा नियुक्त हैं और अन्दर सेना आनन्द-पूर्वक रह रही है।

चाँद खाँ—(मन ही मे) आनन्दपूर्वक, न कि सतर्कतापूर्वक।

शाइस्ता खाँ—(स्वय मानो कुछ सोच कर, हँसता हुआ) यदि सम्मुख युद्ध करने को मिल जाय, तब तो हमारी विजय मे कुछ भी देर नही है।

इसी बीच वहाँ बैठा हुआ मुहम्मद गनी नाम का कोई खुशामदी प्रसन्नता से शरीर हिलाता हुआ बोला—"हुजूर! मराठे सपने मे भी सम्मुख युद्ध नही कर सकते, तथा साहस भी नही कर सकते।"

"धिगेताश्चाटुकार-हतकान्, ये प्रशसाभिरेव प्रभूनन्धयन्ति । प्रतिक्षणमधिक जाज्वल्यते शिव-तिरस्कार-जन्या ज्वाला महाराष्ट्राणा हृदये। गानेषु पानेषु नृत्येषु कुकृत्येषु चास्मत्सजातीया एव सह युञ्जते, न तु महाराष्ट्र-सिहा । यावदारभ्य चिक्कनदुर्गोऽस्माभिर्गृहीतस्तावदारभ्य महाराष्ट्र-बालकोऽप्यस्माश्चिचर्वयिषुरिव सभ्रुकुटि पश्यति न त्वधीन इति बिभेति । पर्वत-प्रायस्य कोङ्कणदेशस्य केशरिण एते । को जानीते कदाऽऽक्रम्यास्मान् कर्तयित्वा क्रव्यादेभ्यो विकिरिष्यन्ति, परन्तु कृतघ्ना एते मिथ्या-प्रलापैरेव चमूपति वञ्चयन्ति"–इत्यालपत् ।

अथ पुनरारब्धवानालपितु शास्तिखान' ।

भवन्ति । सम्मिलन्तीति यावत् । चिक्कनदुर्ग ="चाकन दुर्ग" इति प्रसिद्ध । चिचर्वयिषु =चर्वयितुमिच्छु । कर्तयित्वा = छित्वा । क्रव्यादेभ्य = मासभक्षकेभ्य सिहादिभ्य । शतघ्न्य =तोफ ।

तारीफ को सुनकर, मानो उसके कानो मे पीडा होने लगी हो इस प्रकार गर्दन सिकोड कर, भौहे नीची कर, अधरोष्ठो को कँपाता हुआ, वह मन ही मन कहने लगा—"इन गये-गुजरे खुशामदियो को धिक्कार है जो झूठी तारीफो से मालिक को इस प्रकार अन्धा बनाए दे रहे है । मराठो के हृदय मे शिवाजी के अपमान से उत्पन्न होने वाली ज्वाला क्षण-प्रतिक्षण बढती ही जा रही हे। गान, पान, नाच और कुकृत्यो मे तो हमारी ही जाति के लोग इकठ्ठे होते है, न कि मराठे वीर। जब से हमने 'चाकन' दुर्ग छीना है तब से मराठा बच्चा भी, "मै मुगलो के अधीन हूँ" यह सोचकर डरने के बजाय, हम लोगो की ओर क्रोध से भौह तान कर ही देखता है, मानो हमे चबा जाना चाहता हो। ये कोकण के पहाडी प्रदेश के शेर ही है। कौन जाने कब आक्रमण कर के काट-काट कर मासभक्षी सिहादिको के आगे फेंक दे। परन्तु ये कृतघ्न खुशामदी झूठी बकवादो से सेनापति को धोखा दे रहे है, ठग रहे है।"

फिर शाइस्ता खाँ ने इस प्रकार बातचीत शुरू की ।

शा०—अथ क प्रबन्धश्चिक्कनदुर्गस्य ?

ब०—श्रीमन् ! तत्रापि परितो नीलध्वजा समुद्धूयन्ते । यथा-स्थान शतघ्न्य सस्थापिता , द्वारेषु च भटा नियुक्ता सन्ति, अन्तश्च सानन्द सेना निवसति ।

चान्द्रखान —[मनस्येव] सानन्दम्, न तु सतर्कम् ?

शास्ति०—[स्वय किञ्चिद् विचार्येव, सोत्प्रासम्] सम्मुखयुद्ध प्राप्येत चेद् विजये एव को विलम्ब ?

तावत् तत्रस्थ कश्चिच्चाटुकारो महामदगणिनामा सगात्रविक्षेप प्रावोचत्—

भगवन् ! महाराष्ट्रा स्वप्नेऽपि न पारयन्ति सम्मुख योद्धुम्, तथा साहस कलयितु च ।

सोत्प्रासम् = सोल्लुण्ठनम् । सोपहासमिति यावत् ।

महामदगणि-नामा = मुहम्मदगनी-नामधेय । **सगात्रविक्षेपम्** = शरीर प्रकम्प्य । हर्षातिरेकादिदम् ।

शाइस्ता खाँ—अच्छा, चाकन दुर्ग का क्या प्रबन्ध है ?

बदरुद्दीन—हुजूर, वहाँ भी चारो ओर नीले झण्डे फहरा रहे हैं । यथोचित स्थानो पर तोपे रखी है, द्वारो पर योद्धा नियुक्त हैं और अन्दर सेना आनन्द-पूर्वक रह रही है ।

चाँद खाँ—(मन ही मे) आनन्दपूर्वक, न कि सतर्कतापूर्वक ।

शाइस्ता खाँ—(स्वय मानो कुछ सोच कर, हँसता हुआ) यदि सम्मुख युद्ध करने को मिल जाय, तब तो हमारी विजय मे कुछ भी देर नही है ।

इसी बीच वहाँ बैठा हुआ मुहम्मद गनी नाम का कोई खुशामदी प्रसन्नता से शरीर हिलाता हुआ बोला—"हुजूर ! मराठे सपने मे भी सम्मुख युद्ध नही कर सकते, तथा साहस भी नही कर सकते ।"

चान्द्रखानस्तु असहमान शनैरवोचत्—अह तु मन्ये, ते उभय कर्तुं पारयन्ति ।

शास्ति०—कथम् ?

चा०—कि न स्मर्यते चमूपति–चरणैर्यद् गत–वत्सरे चिक्कनदुर्गं प्रविश्याऽऽस्माकीनसेना ते कथमिव वीरतया साहसेन प्रावल्येन च पश्यतामेवास्मदीय—वीरम्मन्याना खण्डश समकार्षु ? कि नैतत् सम्मुख युद्धम् ? न वैतत् साहसम् ? भगवन् ! अह तै सह युद्धे बहुवारमासम् । किन्तु समसेनैरपि मौद्गलैर्युद्धे प्रवृत्ते तेपामेव ध्रुवो जय —इति मे निश्चय ।

महामदगणि —[चमूपतेश्चान्द्रस्य च मुखमालोक्य] आ !! तत् कि वय दुर्बला वा, असाहसा वा, अचतुरा वा, कातरा वा ? यत् समबलानामपि तेषामेव जयो भवेदिति ।

चा०—मैवम् , किन्त्वल्पाऽपि परिपन्थि–सेना द्वैगुण्येनैव आक्रम-

---

चाँद खाँ से न सहा गया, वह धीरे से बोला—'मै समझता हूँ वे दोनो कर सकते है, सम्मुख युद्ध भी और साहस भी ।"

शाइस्ता खाँ—कैसे ?

चाँद खाँ—क्या हुजूर को याद नही ह कि पिछले साल मराठो ने चाकन दुर्ग मे प्रवेश कर, अपने को वीर मानने वाले हमारे सिपाहियो के देखते-ही-देखने, किस प्रकार वीरता, साहस और प्रवलता से हमारी फौज के टुकडे-टुकडे कर डाले थे ? क्या यह सम्मुख युद्ध नही है ? अथवा यह साहस नही ह ? हुजूर, मै मराठो के साथ युद्ध मे कई बार रहा हूँ, किन्तु मराठो की मेना के वरावर मुगल सेना होने पर भी युद्ध मे मराठो की ही जीत तय है, ऐमा मेरा पक्का विश्वास है ।

मुहम्मद गनी—(शाइस्ता खाँ और चाँद खाँ का मुँह देखकर) अरे, तो क्या हम दुर्बल है, साहसहीन है, डरपोक है, या हम मे चालाकी या वीरता नही जो समान सेना होने पर भी उन्ही की जीत होगी ?

चाँद खाँ—नही, यह वात नही है । फिर भी, हमारा अभ्याम थोडी सी

णीया--इत्येषोऽस्माकमभ्याम । तेषा च द्विगुणाऽपि चतुर्गुणाऽपि च शत्रुसेना कतिपयैरेव सादिभिर्योद्धव्या, निरोद्धव्येति च विलक्षणो वीर-स्वभाव ।

शा०--[धूममाकृष्य हसित्वेव] चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति साम्प्रत पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि विभेति । (चान्द्रस्तु कोष्ण-किरात-स्वरसमिव क्रोधमवगीर्य तूष्णीक एव तस्थौ)

महामदगणि --आम्, आम्, आम, सम्यगाज्ञप्तमार्यैं । उन्दुरवयैं इवैव ते गिरि-कुहरेषु निवसन्ति ।

वद०--हु हु हुम्, अन्धकारेषु बहिर्भवन्ति, ताड्यमानाश्च पलायमाना पुन कुहराणि श्रयन्ते ।

चान्द्र०--आम् सत्यम् । किन्तु उन्दुरव एतेऽस्मद्ध्वजान् कञ्चुकान् उष्णीषाश्च खण्डशो न कुर्य्यु, अस्मदालयभित्तिकातलानि

पार्वतेभ्य = पर्वतीयेभ्य । उन्दुरुभ्य = मूषकेभ्य, । "उन्दुरुर्मूषकोऽप्याखुरि" त्यमर । कोष्ण = ईषदुष्ण, किरातस्वरस = मूनिम्बकषाय, तमिव । "चिरायते का काढा" इति हिन्दी । अतितिक्तोऽयम् ।

मी शत्रुओ की सेना पर दुगुनी सेना से आक्रमण करने का है और उनका दुगुनी और चौगुनी सेना से भी कुछ ही घुडसवारो से भिड जाने और रोक लेने का अद्भुत वीरस्वभाव है ।

शाइस्ता खाँ--(धुआँ खीचकर, हँस कर) चाँद खाँ बुड्ढा हो गया है इसलिए अब पहाडी चूहो से भी डरने लगा है । (चाँद खाँ गरम चिरायते के काढे की तरह क्रोध पीकर चुपचाप बैठा रहा) ।

मुहम्मद गनी--जी हाँ, जी हाँ, जी हाँ, हुजूर ने ठीक फरमाया । ये चूहो की तरह ही पहाडो की खोहो मे रहते है ।

वदरुद्दीन--हूँ, हू, हूँ, अँधेरे मे बाहर निकलते है और पीटे जाने पर फिर भाग कर बिलो मे घुस जाते है ।

चाँद खाँ--हा, सच है । किन्तु ये चूहे कही हमारे झडो, कुर्तो और पगडियो

जर्जरितानि न विदध्यु, पुण्यनगर–बहि प्रदेशादेतत्पर्य्यन्त चान्त-रन्तरेव महागर्तं विधाय, अकस्मान्न पातयेयु ।

शा०—इह बहवो यवन–बिडाला सन्ति, न भयमुन्दुरुभ्य ।

तत सर्वेऽपि चाटुकारा सकरतल–ध्वनि अहसन्, चाटुकारा एव च विजिग्यिरे।

ततश्चिर यावद् महाराष्ट्र-भटै सह कथ योद्धव्यमित्येव विचारो जात । किन्तु चिक्कनदुर्ग–जय–समये महता कष्टेन महाराष्ट्रा परा-ङ्मुखीकृता –इति दुर्गयुद्धायानुत्सहमान शास्तिखान प्रावोचत्—

पर्वतमयोऽय समन्ताद् दुर्गमय कोङ्कणदेश । तदेकैक दुर्गजयोद्योग क्रियेत चेत्, "पादाङ्गुष्ठ–शिरीषाग्नि कदा मौलि-मवाप्स्यति ?–" इति प्रतीक्षा विडम्बना स्यात् । तस्मात् तिष्ठन्तु नाम

विजिग्यिरे=विजय प्राप्तवन्त । "विपराभ्या जेरि" त्यात्मनेपदम् ।
'पादाङ्गुष्ठशिरीषाग्नि कदा मौलिमवाप्स्यति ?' लोकोक्ति । एक-तस्तु पादाङ्गुष्ठतले विद्यमान सोऽपि च शिरीषाग्नि, तस्य सार्धत्रिहस्तोर्ध्व-

---

को टुकडे-टुकडे न कर डाले, हमारे घरो की दीवारो की नीव जर्जर न कर दे, पूना के बाहर वाले प्रदेश से लेकर यहाँ तक अन्दर ही अन्दर खोखला बना-कर कही एकाएक गिरा न दे ।

शाइस्ता खाँ—यहाँ बहुत-से यवन-योद्धा रूप बिडाल रहते है, इसलिये चूहो से कोई डर नही है (यह सुनकर सभी चापलूस ताली बजाकर हँस पडे, और जीत चापलूसो की ही हुई ।)

फिर देर तक यही विचार होता रहा कि मराठे सिपाहियो से कैसे लडना चाहिये । किन्तु चाकन दुर्ग की विजय के समय मराठो को बडी मुश्किल से भगाया जा सका था यह सोचकर, दुर्गयुद्ध के लिये अनिच्छुक शाइस्ता खा ने कहा—कोकण प्रदेश पर्वतबहुल है और इसके चारो ही ओर किले है । यदि एक-एक किला जीतने का प्रयत्न किया जायगा तो इसमे काफी समय लगेगा, तब तक शिवाजी को जीतने की प्रतीक्षा विडम्बना ही होगी । पैर के अगूठे के नीचे विद्यमान शिरीष-पुष्पो की अग्नि सिर तक कब

दुर्गेषु कारागारेषु निगृहीता इव महाराष्ट्रा एव। अस्माभिस्तु साम्मुखीन-युद्धार्थमेव यतनीयम्। चान्द्रखानस्तु एतद्विषयेषु अत्यन्त सप्रतिभ आसीत। स तु किञ्चिद् विचार्य्येव करौ सम्पुटीकृत्य, नीति-परिपूर्णमुपदिदेश यत्—

"चमूपते! दुर्गाण्येव महाराष्ट्राणा बलानि। प्रायस्ते व्यर्थमिति मत्वा कमपि प्रशस्त भूभाग रणाङ्गणीकृत्य ध्वजान् समुद्धूय भेरी-राहत्य न योत्स्यन्ते। किन्तु परित पर्वतदरीषु महारण्येषु गिरि-गणावृत-दुर्गेषु च निर्भया अवस्थास्यन्ते। अस्माश्च यदा कदाचि-देवासावधानानाकलय्य पशुमार मारयिष्यन्तीति शनै शनैरेकैकदुर्ग-ग्रहणायैवोद्योग करणीय—इति मे मति। सम्मुख च युद्धायो-पस्थिता अपि पलायिष्यन्ते चेद् उच्चावचोपत्यकासु गण्ड-शैलमय-

---

स्थितशिर पर्यन्तगमने कियान् विलम्ब इति सम्भाव्यमेव। शिरीषम् = पुष्पविशेष कोमलोपमानत्वे प्रसिद्ध। सप्रतिभ = नवनवोन्मेषशालिन्या बुद्धया विभूषित। असावधानान् = प्रमत्तान्। पशुमार मारयिष्यन्ति = यथा पशून् मारयिष्यन्ति तथेत्यर्थ। अनायासेनेति यावत्। "उपमाने कर्मणि चे"ति णमुल्। उच्चावचोपत्यकासु = निम्नोन्नतासु पर्वतासन्नभूमिषु।

पहुँचेगी इसकी प्रतीक्षा विडम्बना ही है। अत मराठे दुर्ग रूप जेलो मे कैदी की भाँति पडे रहे, हमे तो सम्मुख युद्ध के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। चाँद खाँ इन विषयो मे अत्यधिक प्रतिभाशाली था। उसने कुछ विचार-सा करके, हाथ जोडकर, यह नीतिपूर्ण उपदेश दिया—

सेनापति! दुर्ग ही मराठो की शक्ति है। वे किसी सुन्दर भूभाग को युद्धस्थल बनाकर, ध्वज फहराकर, भेरी बजाकर, लडने को व्यर्थ समझकर प्राय इस प्रकार का युद्ध नही करेंगे। किन्तु चारो ओर पहाडो की कन्दराओ मे, घने जगलो मे, और पहाडियो से घिरे दुर्गों मे निर्भय होकर रहेंगे और ज्यो ही हमे असावधान देखेंगे जानवर की मौत मार डालेंगे। अत मेरे मत से धीरे-धीरे एक-एक दुग पर अधिकार करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सम्मुख युद्ध के लिये उपस्थित होने पर भी यदि वे भागे तो ऊँची-नीची घाटियो, पहा-

निविडारण्य-कुज्झटिकासु दुरूहारोहावरोह-पद्धतिषु सानुषु च तेषां कथामात्रमपि न प्राप्स्यतेऽस्माभि ।"

शास्तिखानस्तु चिक्कन-दुर्गाधिकार-युद्ध स्मरणेन हतहृदय पुनस्तादृश रोम-हर्षण युद्धमविधित्सु कातरतरान्तरात्मा समुवाच—"महाराष्ट्रा युद्धक्षेत्रमपास्य पलायिष्यन्ते चेत् किमास्माकीना नानुधाविष्यन्ति ? अस्मत्सेनास्वश्वारोहा न सन्ति ? ते कि घोटक-खुर-खडखडा–शब्द–श्रवणेनैवार्द्धमृतप्रायान् कन्दरिकन्दरेष्वर्द्ध प्रविष्टानेव शक्ति-प्रोतान् न करिष्यन्ति ?"

चान्द्रखान —महामान्य ! सक्ष्वेड महाराष्ट्रा सम्मुखमाया-

गण्डशैलमयानि निविडानि = घनानि, अरण्यान्येव कुज्झटिका = दुरवगाह-नीयभूमय, तासु । दुरूहा = दुर्विज्ञेया, आरोहावरोहपद्धतय = ऊर्ध्वा-धोगमनमार्गा येषु तादृशेषु । सानुषु = पर्वतनितम्बेषु, नितम्बोऽद्रे स्नु प्रस्थ सानुरस्त्रियामि त्यम— ।

अविधित्सु = अचिकीर्षु । कातरतर = अत्यन्तत्रस्त, अन्तरात्मा = अन्त करण, यस्य स । अत्यन्तकातरत्वादेव प्रयोगे वारद्वय किम प्रयुक्तवान् ।

शक्तिप्रोतान् = शक्तिनामकशस्त्रविद्धान् ।

डियो वाले घने जगलो कठिन उतार-चढाव वाले रास्तो और पहाडो की चोटियो मे हम उनके निशान भी न पा सकेगे ।

चाकन दुर्ग पर अधिकार करते समय युद्ध के स्मरण से साहसहीन, और पुन उस प्रकार का रोमाञ्चकारी युद्ध करने को अनिच्छुक अधीरहृदय शाइस्ता खॉ ने कहा—यदि मराठे युद्धस्थल छोड कर भागेगे तो क्या हमारे सैनिक उनका पीछा न करेगे ? क्या हमारी सेना मे घुडसवार नही है ? क्या वे घोडो के खुरो के खड-खड शब्द सुनने से ही प्राय अधमरे हो गए, पहाडो की खोहो मे आधे ही घुसे मराठो को बर्छी से छेद कर मार न डालेगे ?

चॉद खॉं—महामान्य ! यदि मराठे सिहगर्जन कर सामने आ जायें तो

ताञ्चेद् दिल्लीवल्लभस्य निश्चितो जय, पलायिता अपि च गृह्ये-रञ्चेदवश्यमेव जय, पर पलायितानामेषामनुधावनमेव कठिनम्।

शास्ति०—तत् कथम्?

चान्द्र०—भगवन्! अस्माक स्थूलकाया सरल-भूभाग-मात्र-धावनाभ्यासिनो हया, तदुपरि च महाकवचा शस्त्रास्त्रमहाभारभृत सादिन इति ते न शक्नुवन्ति उद्घातिनीषु उपत्यकासु तथा अश्वा-श्चालयितु यथा महाराष्ट्रा लघुभि पार्वतघोटकैरुन्दुरव इव कुहरेषु निविशन्ते, मर्कटा इव सानुमत्सानून्यारोहन्ति पक्षिण इवोपत्य-कात उपत्यकामुड्डीयेव गच्छन्ति, शशका इव च तरुलतासु सपद्य-त्मानमाच्छाद्य तिष्ठन्ति। तत् सपदि सेनाम् आयोज्य सिंहदुर्ग एवा-

सक्ष्वेडम् = ससिंहनादम्। "क्ष्वेडा तु सिंहनाद स्यादि'त्यमर। गृह्ये-रन् = गृहीता भवेयु। अनुधावनम् = अनुसृत्य धावनम्।

महाकवचा = विशालतनुत्राणा। उद्घातिनीषु = स्खलनयोग्यासु विष-मासु। उन्दुरव = मूषका इव, उपमालङ्कार। अग्रेऽप्येवम्। निविशन्ते, 'नेर्विश" इत्यात्मनेपदम्। सानुमत्सानूनि = पर्वतनितम्वान्। उड्डीयेवेत्यु-

दिल्लीपति की जय निश्चित है, भागते हुए भी यदि पकड लिये जायँ तो भी जीत अवश्य होगी, पर भागते हुए मराठो का पीछा करना ही तो कठिन है।

शाइस्ता खाँ—वह कैसे?

चाँद खाँ—हुजूर! हमारे मोटे-ताजे और केवल मैदान मे ही दौडने के अभ्यस्त घोडो पर वैठे, वडे-वडे कवचो और शस्त्रास्त्रो का भारी भरकम वोझ सँभालने वाले घुडसवार ऊँची-नीची घाटियो मे घोडो को वैसे नही दाडा पाते जैसे मराठे छोटे-छोटे पहाडी टट्टूओ से चूहो की तरह कन्दराओ मे घुस जाते है, वन्दरो की तरह पहाड की चोटियो पर चढ जाते है, पक्षियो की तरह एक घाटी मे दूसरी घाटी को मानो उडकर चले जाते है और खरगोशो की तरह वृक्षलताओ के पीछे अपने को झट से छिपाकर वैठ जाते है। अत जल्द ही सेना

श्वनीय । तस्मिन्नेव शिवोऽस्ति, मासेन मासद्वयेन वा दुर्गमेतद्धस्तगत भविष्यति, शिवश्च बन्दीकरिष्यते, दिल्लीश्वरस्य च विजयपताका सर्वत्रापि कोङ्कणप्रदेशे दोधूयिष्यन्ते । इदमेवाध्यवस्यति मम तुच्छा बुद्धि । श्रीमते च यथा रोचेत तथा विधेयम् ।

शा०—[सभ्रुकुटि] कथमिव साहसमुन्मुच्य सम्मुखयुद्धाद् विरज्यसि । [परितोऽवलोक्य] कि कोऽपि नास्ति साहसिकोऽस्मत्सेनासु यत् त्व रण--प्राङ्गण--समर--विरुद्ध मन्त्रयसे । [ततो 'वय रणाङ्गणयुद्धमीहामहे' इति परितश्चाटुवादिनोऽब्रुवन्]

चा०—[शोककोपोन्मथितहृदयो मुखमध कृत्वा निश्वस्य च] न सामर्थ्य मम मन्त्रणस्य, किन्तु श्रीमद्भिरेव स्थिरीक्रियताम् । यथा चाऽऽज्ञापयिष्यते तथा विधास्यति दास एष ।

त्प्रेक्षा । आयोज्य = सङ्घट्य्य । अश्वनीय = अश्वैरतिक्रमणीय, "तेनातिक्रामति" । अध्यवस्यति = निश्चिनोति । उन्मुच्य = परित्यज्य । विरज्यसि= विरक्तो भवसि ।

साहसिक = साहसवान् । मत्वर्थीये ठनि तस्य चेकि रूपम् ।

तैय्यार कर सिंह दुर्ग को घुडसवारो से घेर लेना चाहिये । शिवाजी इसी दुर्ग मे है । महीने-दो-महीने मे यह दुर्ग अपने हाथ आ जायगा, शिवाजी बन्दी बना लिया जायगा, और दिल्लीश्वर की विजयपताकाएँ सारे कोकण प्रदेश मे फहराने लगेगी । मेरी तुच्छ बुद्धि तो यही निश्चय करती है, आगे हुजूर को जैसा अच्छा लगे वैसा करे ।

शाइस्ता खाँ—(भौहे तान कर) छि छि, क्या साहस छोड कर सम्मुख युद्ध से भागते हो । (चारो ओर देखकर) क्या हमारी सेना मे कोई साहसी वीर नही है जो तुम इस प्रकार युद्धस्थल मे युद्ध करने के विरुद्ध राय देते हो ? (तव सव ओर से चापलूस वोलने लगे, "हम युद्धस्थल मे सम्मुख युद्ध चाहते हैं ।")

चाँद खाँ—(शोक तथा क्रोध से उन्मथित हृदय, मुँह-नीचा कर के नि श्वास

इति सम्प्रधार्य, धूमपान-नलिका-मुख पार्श्वस्थोपबर्हे सस्थाप्य ताम्बूलिक-दत्ता वीटिका दन्तै सन्दश्य, सम्मुख-सस्थापित-राजत-पात्रस्थ-कुसुम-गुच्छानामन्यतममुत्थाप्य जिघ्रति तस्मिन्, अकस्मात् प्रतीहारेण प्रविश्य सजयध्वनि अभिवाद्य करौ सम्पुटीकृत्य कथितम्--दीनबन्धो ! सिंहदुर्गात् पण्डित एक समायातोऽस्ति ।

तदाकर्ण्य, आ ! एवम् ! स एव तु चिरात् प्रतीक्ष्यते मया । प्रवेशय प्रवेशय--इति साम्रेडमुक्तवान् शास्तिखान ।

तावत् सर्वेषु तत्पथमेव प्रविलोकयत्सु प्रतीहारेण सह सात्त्विक-वेष पण्डित एक प्रविवेश ।

त च श्यामवर्णम्, चन्दन-त्रिपुण्ड्राङ्कितम् आरक्तचक्रोष्णीषम्,

---

ताम्बूलिकदत्ताम् = ताम्बूलवाहिदत्ताम् । यद्यपि ताम्बूल पण्यमस्येति विग्रहे "तदस्य पण्यमि"ति ठकि साधुत्वेन ताम्बूलविक्रेत्रर्थे युक्त प्रयोग, किन्तू-पचारेण ताम्बूलदायकेऽपि प्रयोग कार्य इति ग्रन्थकृदभिप्राय ।

सात्त्विक वेष प्रदर्शयति—त चेत्यादिना । चन्दनत्रिपुण्ड्रेणाङ्कितम् । ललाटे

पूर्वक) आपको राय दे सकने की शक्ति मुझ मे नही है, आप ही निश्चय करे, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही यह दास करेगा ।

यह सुनकर शाइस्ता खाँ हुक्के की नली के मुह को पास की मसनद पर रख कर ताम्बूलवाहक (खवास) द्वारा दिये गये पान के बीडे को दाँतो से काट कर, सामने रखे चाँदी के पात्रो मे वर्तमान फूल के गुच्छो मे से एक गुच्छा उठाकर सूंघ ही रहा था कि एकाएक द्वारपाल ने प्रवेश कर, जयध्वनि के साथ अभिवादन कर के हाथ जोड कर कहा—

"गरीबपरवर ! सिंहगढ से एक पण्डित आया है।"

यह सुनकर शाइस्ता खाँ ने "अच्छा, भेजो, भेजो । उसी का तो मै कितनी देर से इन्तजार कर रहा था" कहा ।

सभी लोग पण्डित की राह देखने लगे, इसी बीच प्रतीहारी के साथ सात्त्विक वेष मे एक पण्डित ने प्रवेश किया ।

सुन्दर-श्वेत-कञ्चुकम्, पीतोत्तरीय-शोभित-कन्धरम् किञ्चित् खर्वाकृतिमपि अपीच्यदर्शनमवलोक्य सर्वे सभासदस्तथैवावास्थिषत।

"आगम्यतामिह समीपे स्थीयताम्" इति स्थानं निर्दिशति शास्ति-खाने सोऽपि प्रह्वीभूय किमप्यादर-सूचक-वचनमुच्चार्यैव समुपाविक्षत्। ततस्तेन तेषामेवमभूदालापः।

शास्तिखानः—पण्डित! तव किं नाम?

पण्डितः—नास्ति देहोऽपि गेहमपि नामापि मम किञ्चन। आम्, लोकास्तथाऽपि भाषन्ते [सकासनम्] मां महादेव इति। भगवन्! अस्मिन्नसारे संसारे देहो वा गेहं वा नाम वा, तादृशं किमस्ति यदहं

तिसृभिः रेखाभिः सूच्यमानं त्रिपुण्ड्रम्। आरक्तम् = ईषद् रक्तम्, चक्रम् = वृत्ताकृति, उष्णीषं यस्य तम्। "गोल टोपी" इति हिन्दी। किञ्चित् खर्वाकृतिम् = ईषद् वामनम्। अपीच्यदर्शनम् = शोभनावलोकनम्। सुन्दरमिति यावत्। अवास्थिषत = स्थिता बभूवुः।

नास्ति देहोऽपि, गेहमपीत्यादिना तस्य वेदान्तिता प्रकटिता। सकासनम् = 'खाँसी के साथ" इति हिन्दी। कासश्वासादिप्रकरणे वैद्यकग्रन्थेषु बहुश ईदृशेऽर्थे व्यवहृतोऽस्य धातुः। धातोरनेकार्थतायाः सर्वसम्मतत्वेन निर्वाहः।

सॉवले रंग वाले, चन्दन का त्रिपुण्ड लगाये हुए, गुलाबी गोल पगडी और सुन्दर सफेद कुर्ता धारण किये हुए, कन्धे पर पीला उत्तरीय डाले, कुछ ठिगने होने पर भी देखने मे सुन्दर लगने वाले महादेव पण्डित को देखकर सभी दरबारी ज्यो-के-त्यो बैठे रहे।

शाइस्ता खा के "आइये, इधर पास मे बैठिये" इस प्रकार स्थान निर्देश करने पर, वह पण्डित भी नम्रतापूर्वक कुछ आदरसूचक वाक्य कह कर बैठ गया। तब उस पण्डित से उन लोगो की इस प्रकार बातचीत हुई।

शाइस्ता खाँ—पण्डित! तुम्हारा नाम क्या है?

पण्डित—न तो शरीर ही मेरा है, न घर ही, और न मेरा कोई नाम ही है। फिर भी लोग मुझे (खाँसते हुए) "महादेव' कहते है। भगवन्! इस

ममेति कथयामि। तथाऽपि मा जना "महादेवो महादेव" इति कथयन्ति।

[तदाकलय्य सर्वेऽपि पण्डिताना भापण-भङ्गीमभिननन्दु]

शा॰—अथ को वृत्तान्त सिंहदुर्गस्य ?

महादेव —

"रसयन् गोस्तनी-कन्दम्, स्थितोऽपि स्वर्ण-पञ्जरे।

[किञ्चित् कासित्वा]

रसालवन—वियोग—ज्वालाभिर्दह्यत एव कोकिल ॥"

शास्तिखान —किम् ?

महा॰—भगवन् ! यद्यपि सुवर्ण-रचिते पञ्जरे कोऽपि कोकिल-स्तिष्ठेत्, यद्यपि च द्राक्षाया कन्द प्रत्यह खादेत्, तथाऽप्याम्रवन-वियोग-दु खेन दु खी भवत्येव।

असारे ससार=इति ते बहुधा कथयन्ति ये ससारार्णवे चिराय निमग्ना, पुत्रकलत्रादिरक्षणमात्रपरा, सस्कृताक्षरदुर्दशाकरणपटव इति सोपहासमुक्ति । अत एवाग्रे—"पण्डिताना भाषणभङ्गीम्"—इति बहुत्व प्रायुङ्क्त कविरिति वर्ण-स्वारस्यवेदिन ।

गोस्तनी=द्राक्षा। रसालवनेत्यत्र छन्दोभङ्ग, स च विस्मृत पद्यखण्ड स्वय यथा तथा निर्माय पपाठेति द्योतयति। अत एव मध्ये कासनमप्युपपद्यते। विस्मृत्य हि जना कासनादिना समयमतिवाहयन्ति।

सारहीन ससार मे, शरीर घर या नाम ऐसी कौन-सी चीज है जिसे मैं अपना कह सकूँ। फिर भी लोग मुझे "महादेव", "महादेव" ऐसा कहते है। (यह कर सभी ने पण्डित की भाषणशैली की प्रशसा की)

शाइस्ता खाँ—अच्छा, सिंहगढ का क्या समाचार है ?

महादेव—द्राक्षारस का पान करता हुआ और सोने के पिंजरे मे रहता ा भी (कुछ खाँस कर) कोयल पक्षी, आम्रवन के वियोग की ज्वाला से ्ता ही रहता है।

शा०—किं तात्पर्य्यम् ?

महा०—चमूपते ! एतदेव यद्, यद्यपि सिंह–दुर्गे सिंहसदृशै-र्वीर–भटैर्युतो रत्न–जटित–कनक–दण्डै श्वेत–चामरैर्वीज्यमान शिववीर सुखेन वसति, तथाऽपि पुण्यनगर–वियोगस्य चिक्कन–दुर्ग–वियोगस्य च दारुण व्रणमिव दु ख स बिभर्त्ति ?

शा०—सत्यम्, किन्तु तस्य व्रणस्य का चिकित्सा ? दु साध्योऽय रोग ।

महा०—सोऽप्यसाध्य न मनुते, किन्तु दु साध्यमेव ।

शा०—तत कि प्रधान चिक्कन–दुर्ग कोङ्कण–देश–रत्नमिव च

किमिति पृष्ट श्लोकार्धमेव प्रकटयामासेति द्वितीया पण्डितानां भाषणशैली । ते यदि किमपि वक्तुमुद्यता भवन्ति तदा घुष्ट श्लोक निवेद्य तादृशैरेवाक्षरैस्तदर्थ समुपस्थाप्य विरमन्ति ।

शाइस्ता खाँ—क्या ?

महादेव—भगवन् ! यदि कोई कोयल सोने के पिंजरे में भी रहे और प्रतिदिन अंगूर भी खाये, फिर भी उसे आम्रवन के वियोग का दु ख तो होता ही है।

शाइस्ता खाँ—क्या मतलब ?

महादेव—सेनापति ! यही कि यद्यपि शिवाजी सिंहगढ में सिंह के समान वीर सैनिकों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं, और उन्हे रत्नजटित सोने के दण्ड वाले, सफेद चँवरों से हवा की जा रही है, फिर भी पूना नगर और चाकन दुर्ग का वियोग उन्हे दारुण घाव की तरह कष्ट दे रहा है।

शाइस्ता खाँ—सच है, पर उस घाव का इलाज क्या है ? यह रोग तो दु साध्य है।

महादेव—शिवाजी भी इस रोग को असाध्य नही दु साध्य ही मानते हैं।

शाइस्ता खाँ—तो क्या प्रधान चाकन दुर्ग और कोंकण देश के रत्नभूत

पुण्यनगर हस्तीकृतवत्यपि मयि शिवोऽधुना मया सह युयुत्सते ? युद्धेन वा महारोगस्यैतस्योपाय चिकीर्षति ? एव चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षित-केसरि-खर-नखराक्रान्तोरण--जिघृक्षा विफला ।

महा०—चमूपते !

"न कुर्य्याच्चातको मुग्धश्चेत् स्ववाञ्छित-सूचनम् ।
न पूरयति कि मेघस्तत्तृष्णा जल—वृष्टिभि ? ॥"

शा०—किम् ?

महा०—प्रभो ! यदि चातक--नामा पक्षी याचितु न जानीयात्, तत् कि मेघो जलवृष्टिभिस्तत्तृष्णा न शमयति ? अर्थात् यदि सम्मुख-

---

हस्तीकृतवति = वशीकृतवति । जम्बुकस्य = शृगालस्य । बुभुक्षितस्य = क्षुधार्त्तस्य, केसरिण खरनखरै = तीक्ष्णाङ्गुलिप्रान्तै, आक्रान्तस्य = आस्कन्दितस्य, गृहीतस्येति यावत् । उरणस्य = मेषस्य, जिघृक्षा = ग्रहीतुमिच्छा । यथा शिवकर्तृकतादृशोरणग्रहणेच्छाया वैफल्य, तथैव शिववीरस्य चिक्कनदुर्गादिलब्ध्यभिलाष इति तत्त्वम् ।

न कुर्याच्चातको मुग्ध इत्यत्र शिववीरशास्तिखानचरिते प्रस्तुतेऽप्रस्तुतचातकमेघादिवर्णनादप्रस्तुतप्रशसा ।

पूना नगर के मेरे हथिया लेने पर भी शिवाजी मुझसे लडना चाहता है ? या इस महारोग का इलाज युद्ध से करना चाहता है ? यदि ऐसा है तो गीदड की, भूखे शेर के पैने नाखूनो से दबोचे गये मेडे को छीन लेने की कोशिश बेकार ही होगी ।

महादेव—सेनापते ! यदि भोलाभाला चातक पक्षी अपनी अभिलाषा सूचित न करे, तो, क्या मेघ जलवृष्टि द्वारा उसकी पिपासा शान्त नही करता ?

शाइस्ता खाँ—क्या ?

महादेव—हुजूर ! यदि चातक नामक पक्षी माँगना न जानता हो तो क्या बादल पानी बरसा कर उसकी प्यास नही बुझाते ? अर्थात् यदि सम्मुख

युद्ध-पराभव-लज्जितो महाराष्ट्र--राज स्वमुखेन सन्धये न प्रार्थयेत्, तत् किं भवान् स्वयमेव स्वोदारतया यथोचित-दानाऽऽदानैस्तेन सह न सन्दध्यात् ?

शा०—[सन्धि--प्रस्ताव श्रुत्वा सानन्द] तत् कि सन्धित्सते शिव ?

महा०—चमूपते ! दिल्लीश्वरेण योद्धु कोऽभिमन्येत ? सम्प्रति तु महाराष्ट्र—मण्डले प्रतिगेह प्रतिभित्ति प्रतिमुख च सन्धि सन्धि-रित्येव श्रूयते महाध्वनि ।

शा०—[हसन् , चान्द्रखान प्रति सामषम्] ह ह ह ! पश्य, महा-राष्ट्रा सम्मुखयुद्धाद् भीता ? आहोस्विद् दुर्गरोधाद् ? साम्रेड कथयाम्येतै कदर्य्य-हतकै सम्मुख योद्धव्यमिति । त्व तु नैजानेव स्वप्नान् पश्यसि ।

दानादानै =दानप्रतिग्रहे । न सन्दध्यात्=न सन्धि कुर्वीत ? काक्वा कुर्वीतैव । "शेषे प्रथम " इत्यनेन भवत्पदयोगात् प्रथमपुरुषत्वम् ।

युद्ध मे हार जाने के कारण लज्जित महाराज शिवाजी अपने मुँह से सन्धि की प्रार्थना न करे तो क्या आप स्वय ही अपनी उदारता से कुछ ले-देकर उनसे सन्धि नही कर सकते ?

शाइस्ता खाँ—(सन्धि का प्रस्ताव सुनकर आनन्दपूर्वक) तो क्या शिवाजी सन्धि करना चाहता हे ?

महादेव—सेनापते ! दिल्लीनरेश से युद्ध करने का अभिमान कौन कर सकता है ? इस समय तो महाराष्ट्र देश मे हर घर, हर दीवार और हर मुँह से "सन्धि सन्धि" यही कोलाहल सुनाई दे रहा हे ।

शाइस्ता खाँ—(हँसता हुआ, चाँद खाँ की ओर क्रोधपूर्वक) ह ह ह ! देख, मराठे सम्मुख युद्ध मे डरे ह या किले घेरने से ? बार-बार कहता हूँ कि इन क्षुद्र कायरो मे सम्मुख-युद्ध करना चाहिये, पर तुम अपने ही सपने देखा करते हो ।

तदाकर्ण्य चान्द्रखान क्रोधारक्त-वदनोऽप्यधोमुख समतिष्ठत। महादेवश्च महाराष्ट्र-निन्दा सकष्टमश्रौषोत्। शास्तिखान पुनर्महा-देवाभिमुखीभूय त सम्बोध्य सोत्प्रासमुवाच—

"साधु, साधु, पण्डित! साधु, तव पाण्डित्येऽतितरा प्रसीदामि।"

चाटुकारा—आम्, आम्, माधु, साधु, महानेष पण्डित।

शा०—अहो! माधुर्य्य सस्कृत-भाषाया।

चाटु०—आ! अपूर्वमेव माधुर्य्यमिदम्!!

शा०—तत् किमायातो भवान् सन्धि-विषयक-वार्ता कर्तुम्?

महा०—एवम्!

शा०—अथ दर्शय किमपि प्रमाणपत्रम्, यथा त्व शिवेनास्मिन् विषयेऽधिकृतोऽसीत्यह निश्चिनुयाम्।

समतिष्ठत, "समवप्रविभ्य स्थ" इत्यात्मनेपदत्वम्। सोत्प्रासम् =

यह सुन कर चाद खाँ का मुँह गुस्से से लाल हो गया, पर वह मुँह नीचा किये ही बैठा रहा। महादेव ने बहुत कष्टपूर्वक मराठों की निन्दा सुनी। शाइस्ता खाँ पुन महादेव की ओर मुह कर उसे सबोधित कर मुस्करा कर बोला—

"ठीक है, ठीक है पण्डित जी! आपकी विद्वत्ता से मै बहुत खुश हू"।

चापलूस लोग—हाँ हाँ, ठीक हे, ठीक ह, यह बहुत बडे विद्वान् हे।

शाइस्ता खाँ—अहा, सस्कृत भाषा कितनी मधुर हे!

चापलूस लोग—वाह, अपूर्व माधुर्य है!

शाइस्ता खाँ—तो क्या आप सन्धि के सम्बन्ध मे बातचीत करने आये ह?

महादेव—हाँ यही बात हे?

शाइस्ता खाँ—अच्छा तो कोई प्रमाणपत्र दिखाइये जिससे मुझे यह निश्चय हो सके कि शिवाजी ने आपको सन्धिसम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया है।

महा०—तथा [इति पत्र दर्शयामास]

तत शास्तिखाने पत्र हस्ते गृहीतवत्येव कश्चन भृत्यो जाज्वल्यमान–दीपाश्रित–काच–मञ्जूषा हस्ते ममादाय, सम्मुख आगत्य, पत्रोपर्यनुकूलप्रकाशमकरोत्। स च द्विस्त्रि पठित्वा, मुद्रादिक सावधानतयाऽवलोक्य, पत्र भुवि सस्थाप्य, "भद्रम्, ज्ञातमिदम्, अस्ति भवानधिकृतोऽस्मिन् विषये, तदारभ्यताम्"—इत्यब्रूत ।

महा०—चमूपते ! "वयमादौ पराजिता , पुनश्च शोणित-शोणधाराभि क्षोणी-क्षालन व्यर्थम्"—इति निवेदयति प्रभु ।

शा०—आम् !

महा०—अत स सन्धित्सते।

शा०—तथाऽस्तु।

मन्दस्मितेन सह। शोणित-शोणधाराभि =लोहित–लोहित-प्रवाह । क्षोणी=पृथिवी।

महादेव—अच्छा (यह कह पत्र दिखा दिया) तदनन्तर, शाइस्ता खॉ के हाथ मे पत्र लेते ही, एक नोकर ने हाथ मे लालटेन, (शीशे की मञ्जूषा, जिसम जलता दीपक रखा था) लेकर, सामने आकर, पत्र के ऊपर उचित प्रकाश कर दिया। शाइस्ता खाँ ने पत्र को दो-तीन बार पढ कर, उसकी मुहर आदि का सावधानी पूर्वक निरीक्षण कर, उसे जमीन पर रखकर कहा—"हाँ समझ गया। आपको सन्धि-सम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया गया ह। अच्छा तो प्रारम्भ कीजिये।"

महादेव—सेनापते ! हमारे महाराज निवेदन करते है कि "हम पहले ही हार गए हैं, फिर खून की लाल धाराओ से जमीन को धोना बेकार ही है।"

शाइस्ता खाँ—हाँ।

महादेव—इसीलिये वे सन्धि करना चाहते है।

शाइस्ता खाँ—तो ऐसा ही किया जाय।

महा०—तत् कैर्नियमैः सन्धेयमिति स विवित्सति ।

शा०—आदौ दिल्लीश्वरस्य वशवदता कर-प्रदता चाङ्गीकरणीया, अपि रोचत इद भवत्प्रभवे ?

महा०—तस्मै कि रोचते, का वा तस्य सम्मतिरिति वक्तु नाधिकृतोऽस्मि, किन्तु यदादेक्ष्यतेऽत्रभवद्भिस्तदेवास्मै निवेदयिष्यामि, स चोरीकारमनूरीकार वा स्वय प्रकटयिष्यति ।

शा०—अस्तु, कथ्यता तस्मै यत् प्रथमतो दिल्लीश्वराज्ञावाहकता तत्करदता चाङ्गीकरणीया । द्वितीयतो यानि दुर्गाणि स्थानानि चास्माभिर्जितानि, तेषा पुनरादित्सा न विधेया । तृतीयतश्चान्यान्यपि सिंहदुर्ग-प्रभृतीनि कानिचित् दुर्गाणि दिल्लीश्वरायोपहरणीयानि ।

महा०—[किञ्चिद् विचार्येव] सिंहदुर्गादीनि कानि कानि ?

विवित्सति = वेत्तुमिच्छति ।

आदेक्ष्यते = आदेश करिष्यते । ऊरीकारम् = स्वीकारम् ।

आदित्सा = आदातुमिच्छा । उपहरणीयानि = उपायनीकरणीयानि ।

महादेव—वे जानना चाहते है कि सन्धि—किन नियमो से होगी ?

शाइस्ता खाँ—पहले तो दिल्लीनरेश की अधीनता और करप्रदता (कर देना) स्वीकार करनी होगी, क्या आपके मालिक को यह पसन्द है ?

महादेव—उन्हे क्या पसन्द है या उनकी क्या राय है, यह कहने का मुझे अधिकार नही दिया गया है, किन्तु जो कुछ आप आज्ञा करेंगे मै उनसे निवेदन कर दूंगा, स्वीकृति या अस्वीकृति तो वे स्वय ही प्रकट करेगे ।

शाइस्ता खाँ—अच्छी बात है । तो उनसे कह दीजिये कि पहले तो दिल्लीश्वर की आज्ञा मानना और उन्हे कर देना स्वीकार करना होगा, दूसरे वे उन दुर्गो या स्थानो को लेने की कोशिश न करे जिन्हे हमने जीत लिया है और तीसरे सिंहगढ आदि कुछ दुर्ग दिल्लीश्वर को उपहार मे देने होंगे ।

महादेव—(कुछ विचार-सा करके) सिंहगढ इत्यादि कौन-कौन से ?

शा०—तानि विविच्य परस्तात् पत्रद्वारा सूचयिष्यामि ।

महा०—नान्यत् ?

शा०—नान्यत् । इदमेव तस्मै कथ्यताम्, तत्सम्मतिश्च मह्य सोसूच्यताम् ।

महा०—अथास्मिन् विषये यावत् पत्रालाप, नियम–व्यवस्थापन च भवेत्, तावत् युद्ध शाम्यतु–इत्यपि निवेदयति प्रभु ।

सा०—अलमुत्कीर्त्यापि तत् । यावन्नियम स्थिरो न भवति तावद् यवन-वीरा यत्रैव महाराष्ट्र-सेना द्रक्ष्यन्ति, तत्रैव तैर्योत्स्यन्ते । गम्यतामधुना, कथ्यतामेष विषय स्वप्रभुषु ।

तदाकर्ण्य, "तथाऽस्तु" इति व्याहृत्य सप्रह्वभावमुत्थाय न्यवर्तत महादेव ।

उत्कीर्त्य = कथयित्वा । वक्तव्यमपि नेत्यथ । सप्रह्वभावम् = सनम्रतम ।

शाइस्ता खा—उन्हे विचार-विमर्श कर वाद मे पत्र द्वारा सूचित करूँगा ।

महादेव—और कुछ नही ?

शाइस्ता खाँ—और कुछ नही । उनसे जाकर यही कहो और उनकी राय से मुझे सूचित करो ।

महादेव—हमारे स्वामी का यह भी निवेदन है कि जव तक सन्धि-विषयक पत्र-व्यवहार चले और जव तक इस सम्वन्ध मे नियमो की कोई निश्चित व्यवस्था न हो जाय तव तक युद्ध वन्द रहे ।"

शाइस्ता खाँ—उसका तो नाम भी न लीजिये । जव तक सन्धि के नियम स्थिर नही हो जाते तव तक मुगल सैनिक जहाँ कही भी मराठी सेना देखेगे वही उनसे लडेगे । अव आप जाइये आर यह वात अपने मालिक से कह दीजिये ।

यह सुनकर महादेव पण्डित "ऐसा ही होगा" यह कह कर नम्रतापूर्वक उठकर लोट पडे ।

अवलोकन-च्छलेन शनैः शनैर्निश्रेणी कोष्ठानि प्राचीराणि शस्त्रागार रक्षकावास च यथाशक्ति गम्भीरमवालोकयत् । "किमिवेतस्तत पश्यसि ?" इति पृष्टवति चान्यतमे रक्षके, "न किमपि, अस्मिन्नेव पूर्व शिववीर उवास, अधुना च सर्वं युष्माभिराक्रान्तमित्येव स्मृत्वा भवदैश्वर्यं विलोकयामि"—इत्युवाच ।

सवादिनी = सदृशा । अनुकारिणी = तुल्या । परामर्शपराभ्याम् = अनुसन्धानासक्ताभ्याम् । अन्यादृश = पर इव स्वविषये । अनीहमान = अनिच्छन् । नि श्रेणी = अधिरोहिणी ।

महादेव पण्डित की बाते सुन-सुन कर—"क्या यह स्वय शिवाजी है या उसी का कोई छोटा भाई या साथी है, क्योकि इसकी आकृति तो शिवाजी की-सी ही है आर बोली भी उसकी बोली के समान ही है" यह सशय करता हुआ, पण्डित को खोजपूर्ण नेत्रो से सावधानीपूर्वक बार-बार देखता हुआ, "सेनापति शाइस्ता खाँ तो कुछ दूसरा ही समझते है" यह सोचकर अपने अभिप्राय को प्रकट करने को अनिच्छुक चाँद खाँ भी महादेव पण्डित के उठते ही खुद भी उठ पडा ।

महादेव पण्डित ने शीशो, चित्रपटो, स्तम्भो, तम्बुओ, दरवाजो और किवाडो को देखने के बहाने धीरे-धीरे सीढियो, कमरो, चहारदीवारियो, शस्त्रागार और रक्षको के निवासस्थान को भी यथाशक्ति भली-भाँति देख लिया । किसी प्रहरी के—"इधर-उधर क्या देख रहे हो" यह पूछने पर "कुछ भी नही, पहले इसी किले मे शिवाजी रहते थे, अब तो सब कुछ तुम लोगो ने दबा लिया है, यही सोचकर आपका ऐश्वर्य देख रहा हूँ" यह कहा ।

अथ "गच्छ, यत्र शिवोऽधुना वसति तस्मिन्नपि वयमद्य श्वो वा, एवमेव विचरिष्याम । किमिव गत शोचसि ? तद्रक्षार्थमेव यतनीयमिति प्रभवे निवेदय"—इति प्रौढ भाषमाणे रक्षके अङ्गार-प्रतिमाभ्या चक्षुर्भ्यां त दहन्निव, आपादमामस्तक च द्विस्त्रिरवलोक्य यदाज्ञाप्यते वीरै " इति सव्यङ्ग्यमाभाष्य, द्वारदेहलीमुल्लङ्घ्य, तत्रत्यानि पञ्चषाणि सोपानान्यवतीर्य घण्टापथेन यातायात कुर्वता मनुष्याणा प्रवाहे मिश्रितो बभूव ।

इति पञ्चमो निश्वास

प्रौढम् = उच्चै । घण्टापथेन = राजमार्गेण । "दशधन्वन्तरो राजमार्गो घण्टापथ स्मृत " इति चाणक्य ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या पञ्चमनिश्वासविवरणम्

तदनन्तर, प्रहरी के, जोर से "जाइये, जहाँ इस समय शिवाजी रह रहा है वहाँ भी हम आज या कल मे इसी तरह घूमेंगे । व्यर्थ बीती बातो को क्या सोचते हो ? जाकर मालिक से कहो कि जहाँ है उसी को बचाने की कोशिश करे ।" यह कहने पर, अपने अगारसदृश नेत्रो से उसे जलाते हुए से महादेव पण्डित, उसे सिर से पैर तक दो-तीन वार देख कर, व्यगपूर्वक "वीरवर की—जो आज्ञा" कह कर, दरवाजे की देहली पार कर, वहाँ की पाँच-छ सीढियाँ उतर कर सडक पर यातायात करते हुए लोगो की भीड मे मिल गये ।

शिवराजविजय का पञ्चम निश्वास समाप्त

॥ श्री ॥

अथ षष्ठो निश्वास

"बुद्धिर्यस्य बल तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?"

—पञ्चतन्त्रम् ।

आसीत् शिववीरस्य परम-मित्र नीति-निष्णातो वीरवर॰ परम-साहसी विविध-युद्धेषु विहित-शिव-साहचर्य , खड्ग-चालन-विद्या-कुशलो माल्यश्रीकनामा । स च महादेव-पण्डित-वेषमाकलय्य दूतताच्छलेन शत्रुभवन प्रविविक्षु शिववीर-मालोक्य तदनुमत्या गृहीत-यवन-भिक्षु-वेष , नील—निचोला-

शिववीरेण महादेवपण्डितात्मना योधपुराधीश्वर श्रीयशवन्तसिह स्व-मनीषाप्रभावाद् वशीकृत इति कथोपक्षेपक पञ्चतन्त्रीय प्रतीकमुद्धरति-बुद्धिर्य-स्येति । परम च तन्मित्रम् । मित्रशब्द नित्यक्लीब सहचररूपेऽर्थे । नीति-निष्णात =राजनीतिकुशल । विविधयुद्धेषु विहित शिवस्य साहचर्य येन स । नित्यसापेक्षत्व विधानस्य केन कथ कुत्राद्यर्थे इति न सविशेषणाना-वृत्त्यभावानुचिन्ता । प्रविविक्षुम् =प्रवेष्टुमिच्छुम् । गृहीत =अङ्गीकृत ,

जो बुद्धिसम्पन्न है वही बलशाली है, बुद्धिहीन को बल कहां ?

—पञ्चतन्त्र

शिवाजी के माल्यश्रीक नाम के एक परम मित्र थे। वह नीति मे निष्णात, अत्यन्त वीर, परमसाहसी, तथा तलवार चलाने की कला मे अत्यन्त कुशल थे, और अनेक युद्धो मे शिवाजी के साथ रहा करते थे । शिवाजी को महादेव पण्डित का वेश धारण कर, दूतता के बहाने शत्रुओ के घर मे प्रवेश करने को इच्छुक देखकर वह शिवाजी की अनुमति लेकर, मुसलमान फकीर का वेष धारण कर, उनके पीछे-पीछे चल दिये । उन्होने अपने नीले कञ्चुक के नीचे

ञ्चलाधस्तिरोहिततीक्ष्णतरच्छुरिक , कटि-पर्य्यन्त-विलम्बमान-मेचक-कुञ्चित-केप , सुशोभित-कृत्रिम-श्मश्रु-कूर्च , हरित-परिधान , करेणैकेन तीव्रतम-शङ्कुकृत-दण्डम् , नारङ्गाकृति-मुखम् , विलम्बित-विविध-सुसूक्ष्म-शृङ्खला-खण्डम् , झणज्झणद्-ध्वनि-रुचिर वाद्यमेक वादयन् , भिक्षाटनार्थमिव तत्पश्चादेव प्रचलित । यवन-भिक्षुकाणा च नाऽऽसीत् तथा निरोध –इति गोपुराध्यक्षेण किञ्चि-

---

यवनभिक्षो = यवनयाचकस्य, "फकीर" इति ख्यातस्य, **वेप** = नेपथ्य येन स । **नीलनिचोलस्य** = नीलरक्तकञ्चुकस्य **अञ्चलाध** = कोणनिम्नभागे **तिरोहिता** = गुप्ता, **तीक्ष्णतरा** = खरतरा **छुरिका** = कृपाणिका, येन स । **कटिपर्यन्तम्** = श्रोणीपर्यन्तम **विलम्बमाना** = समायाता , **मेचका** = श्यामा , **कुञ्चिता** = वलिता , **केशा** = वाला यस्य स । **हरितपरिधान** = हरितवासा । यवनसाधव प्रायो हरितवासस एव भवन्ति । वाद्य विशिनष्टि—**तीव्रतम** = अत्यन्तकठोर , **शङ्कुकृत** = कीलकीकृत , दण्डो यस्य तत् । **नारङ्गाकृति** = नारङ्गाकारम , अर्थाद् गोलाकृति यस्य तत् । **विलम्बितानि** = आलम्बमानानि, विविधानि सुसूक्ष्माणि शृङ्खलाखण्डानि यस्मिस्तत् । झणज्झणद्ध्वनिना **रुचिरम्** = श्रोतृचित्ताकर्पकम् । **भिक्षाटनार्थमिव** = भिक्षाटनवेपप्रदर्शनमात्र न तु भिक्षार्थमटनम्—अत एवेवमार्थक्यम् । **तथा** = यथा हिन्दूनामिति शेप । उक्तिवैचित्र्याथमनुक्ति । **गोपुराध्यक्षेण** = पुरद्वाराधिकारिणा ।

तीखी कृपाण छिपा रखी थी, उनके घुघुंराले बाल कमर तक लटक रहे थे और उनके मुख पर बनावटी (नकली) मूँछ और दाढी शोभित हो रही थी । वह एक हाथ से एक ऐसे वाद्यविशेष को जिसके वाद्यदण्ड मे कीले या खूटियाँ (शङ्कु) लगी थी, जिसमे विविध प्रकार की पतली ओर छोटी-छोटी जञ्जीरे या रस्सियाँ लटक रही थी, और जिससे झन्-झन् की मधुर ध्वनि आ रही थी—बजाते हुए, मानो भिक्षाटन के लिये, शिवाजी के पीछे-पीछे ही चल दिये । मुसलमान फकीरो की उतनी रोक-टोक नही थी (जितनी हिन्दुओ की) ।

दालप्यैवान्त प्रवेष्टुमाज्ञप्त सपदि प्रविश्य पारस्यभापया कानिचिच्छन्दासीवाऽऽम्रेडयन् ,कर्हिचित् प्रपद-पातित-दृष्टि , कदाचिद् गगनतल समीक्षमाण , निरपेक्ष इव, ब्रह्मानन्दनिमग्न इव च महादेव-पण्डित-वेप शिववीरमेव कदाचित् किञ्चिद् दूरतोऽनुगच्छन्, कर्हिचिद्धस्तग्राहमनुसरन्, स्वयमपि शास्तिखानाध्युषित-प्रासादस्य द्वार-पर्य्यन्तमायात । शिववीरे प्रासादान्त प्रविष्टे च स्वयमेव तत्रैव पर्य्यटन्, प्रासाद भू-भागादट्टालिका-पर्य्यन्त निपुण निरीक्षमाण , द्वार-पालाना रक्षकाणा च तानि तानि निवेशनानि समीक्षमाण , भवनमेतत् परित पूर्णतया दिदृक्षु परितो विस्तीर्णाया पुष्पवाटिकाया प्रविष्ट ।

किञ्चिदेवालप्येत्यन्वय । छन्दासि—"गजल" प्रभृतीनि । प्रपदे=पादाग्रे, "पादाग्र प्रपदमि"ति कोष । पातिता=स्थापिता दृष्टिर्येन स । निरपेक्षताव्यञ्जकमिदम् । सापेक्षा हि पथि गच्छतो महतो विचित्रया दृशा दयापूर्णया निभालयन्ति । हस्तग्राहम्=हस्तेन ग्रहीतु योग्यो यथा स्यात् तथा । स्वयमेव=आत्मनाऽपि । एवकारोऽप्यर्थे । अत एव न समानार्थकशब्दद्वयस्यैकवाक्यघटकत्वम् । द्वारपालानाम्=दौवारिकाणाम् । रक्षकाणाम्=प्रहरिणाम् । निवेशनानि=आवासकोष्ठकानि । समीक्षमाण =सम्यक् पश्यन् । परित =सर्वत । सदनमिति शेष । पुष्पवाटिकायाम्=गृहोपवने ।

इसलिये दरवान से थोडी सी ही बात करके, उससे अन्दर जाने की अनुमति पाकर, तुरन्त अन्दर प्रवेश कर, फारसी की कुछ गजले गुनगुनाता हुआ सा वह मुसलमान फकीर कभी पैरो के पञ्जो की ओर और कभी आकाश की ओर देखता हुआ, निरपेक्ष और ब्रह्मानन्दनिमग्न सा, महादेव पण्डित का वेप धारण किये हुए शिवाजी के कभी काफी पीछे और कभी हाथ-दो हाथ पीछे रहकर, उनका अनुसरण करता हुआ, स्वय भी उस महल के दरवाजे तक आ गया जिसमे शा`स्ता खाँ रह रहा था ।

प्रथमत सघन–हरित–लता–वेष्टित–द्रुमावलि , द्वितीयतस्तमो-बहुला तमी, तृतीयतश्च नील-निचोलोऽय जटिल —इति वीक्षमाणै-रप्यवीक्ष्यमाण , प्रासाद परिक्रम्येव, सर्वाणि स्वाभिमतगुप्तस्थानानि सम्यगवलोक्य सप्रसाद मनस्येवाचकथत् यत्––

"अहो ! न दुर्घटमाक्रमणमेतस्य शास्तिखान-वराकस्य । नगराद् बहिरेतस्य सेना, प्रासादरक्षका अपि च प्रासादादस्माद् दूरतो मन्दुरासु वसन्ति, यथासमय च पञ्चषा समागत्य द्वारि तिष्ठन्ति, प्रासादस्य

सघनाभि =ससान्द्राभि , **हरिताभि** =हरिद्वर्णमयीभि , अशुष्काभिरिति यावत् , **लताभि** =व्रततिभि , **वेष्टिता** = वलयिता, द्रुमाणाम् , **आवलि** = पङ्क्ति । **तमोबहुला** = अन्धकारप्रचुरा । **तमी** = तमिस्रा । **नीलनिचोल** = कृष्णप्रच्छद । **जटिल** = जटायुत । "लोमादि–पामादि–पिच्छादिभ्य शनेलच" । **वीक्षमाणै** =पश्यद्भि । **अवीक्ष्यमाण** = अनवलोक्यमान । **सप्रसादम्** = सप्रसन्नतम् । **अचकथत्** , लुङ् ।

मन्दुरासु = वाजिशालासु । प्रासादरक्षकाणा प्रासादस्थितिरपेक्षिता, सा नेति

जब शिवाजी महल के अन्दर चले गये तो वह वही टहलता हुआ, उसको जमीन से लेकर आखिरी मञ्जिल तक ध्यान पूर्वक देखता हुआ, द्वारपालो और प्रहरियो के आवासो का भली भाँति निरीक्षण करता हुआ, महल को चारो ओर से पूरी तौर से देख लेने की इच्छा से, उसके चारो ओर फैले उपवन मे प्रविष्ट हो गया ।

एक तो सघन और हरी लताओ से परिवेष्टित वृक्षो की पक्ति, दूसरे अँधेरी रात, और तीसरे इस जटाधारी फकीर ने नीला कञ्चुक पहन रखा था । अत देखने वालो द्वारा भी न देखा जाता हुआ वह, महल की प्रदक्षिणा सा करके, अपने काम के सारे गुप्त स्थानो को भली-भाँति देख कर प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगा

"इस बेचारे शाइस्ता खाँ पर आक्रमण करना असम्भव या कठिन नही है। इसकी सेना नगर से बाहर रहती है। महल की रक्षा करने वाले सैनिक भी महल से काफी दूर घुडसालो मे रहते है और उनमे से केवल पाच-छ अपने नियत

पृष्ठदेशे विशालमुद्यानम् । नात्र रात्रौ कोऽपि मनुष्यो विचरति । उद्यान परितस्तु लोह-दण्ड-प्रवार, यमुल्लङ्घ्य यतस्तत एव प्रविविक्षु प्रवेष्टुमर्हति, यत्राऽऽच्छन्नशरीराश्च परस्सहस्रा परैरलक्ष्यमाणा समस्ता रात्रिमतिवाहयितु पारयन्ति । प्रासादे च बहवो गवाक्षा ग्रीष्मकालेऽस्मिन्नुन्मुद्रिता एवोपेक्ष्यन्ते । "क समायाति ? परास्तो महाराष्ट्र-हतक"–इति विश्वसन्त प्रहरिणो रक्षकाश्च निर्निस्त्रिशा एव निश्चर्माण एव च सोपेक्ष परस्पर हसन्तो हासयन्तश्च स्वप्रहरमतिवाहयन्ति । प्रासादान्त स्थिताना चमूपते सहवासिना च पानैरेव शयनैरेव न तथा समयो व्यत्येति, यथा ते का प्राची ? का प्रतीची ? क परकीय ? क आत्मीय ? दिन वा ? रजनी वा ? शयामहे वा ?

सोपहारामुचित । पृष्ठदेशे = पाश्चात्यभागे । लोहदण्डप्रावार' = आयसदण्डवृति । आच्छन्नशरीरा' = प्रावृतदेहा । परै = शत्रुभि । अलक्ष्यमाणा = अज्ञायमाना । उन्मुद्रिता: = उद्घाटिता । उपेक्ष्यन्ते = निर्विचार त्यज्यन्ते । निर्निस्त्रिशा = खड्गशून्या । निश्चर्माण: = त्यक्तफलका, "फलकोऽस्त्री फल चर्म" त्यमर । सोपेक्षम् = उपेक्षया सहित यथा स्यात् तथा । स्वप्रहरम् = स्वयामम् । पानै. = मद्यगोष्ठीभि । शयनै = रतिपल्यङ्के स्वापे । व्यत्येति = व्यतिक्रामति । परस्याय परकीय = अनात्मीय । गहाद्यन्तर्गणसूत्रेण कुक् छश्च ।

समय पर आकर द्वार पर पहरा देते है। महल के पीछे बहुत बड़ा उद्यान है, जिसमे रात मे किसी आदमी का पहरा नही रहता । उद्यान के चारो ओर लोहे की सलाखो से बनी चहार दीवारी है। घुसना चाहने वाला जहां से भी घुसना चाहे उसे पार कर अन्दर घुस आ सकता है, और इस उद्यान मे हजारो नकाबपोश इस तरह सारी रात गुजार सकते है कि दुश्मन देख या जान न पाये। महल मे अनेक रोशनदान है जो इस गर्मी के मौसम मे खुले ही छोड़ दिये जाते है और जिनकी ओर कोई ध्यान ही नही देता है। 'बेचारा मराठा तो हार गया, अब कौन आयेगा, इस विश्वास से पहरेदार और प्रासादरक्षक सैनिक बिना ढाल-तलवार लिये ही, उपेक्षापूर्वक, परस्पर हँसते-हँसाते हुए, अपना समय

प्रथमत सघन–हरित–लता–वेष्टित–द्रुमावलि , द्वितीयतस्तमोवहुला तमी, तृतीयतश्च नील-निचोलोऽय जटिल —इति वीक्षमाणैरप्यवीक्ष्यमाण , प्रासाद परिक्रम्येव, सर्वाणि स्वाभिमतगुप्तस्थानानि मम्यगवलोक्य मप्रसाद मनस्येवाचकथत् यत्––

"अहो ! न दुर्घटमाक्रमणमेतस्य शास्तिखान-वराकस्य । नगराद् वहिरेतस्य सेना, प्रासादरक्षका अपि च प्रासादादस्माद् दूरतो मन्दुरासु वसन्ति, यथासमय च पञ्चषा समागत्य द्वारि तिष्ठन्ति, प्रासादस्य

सघनाभि = ससान्द्राभि , हरिताभि = हरिद्वर्णमयीभि , अशुष्काभिरिति यावत् , लताभि = व्रततिभि , वेष्टिता = वलयिता, द्रुमाणाम् , आवलि = पङ्क्ति । तमोवहुला = अन्धकारप्रचुरा । तमी = तमिस्रा । नीलनिचोल = कृष्णप्रच्छद । जटिल = जटायुत । "लोमादि–पामादि–पिच्छादिभ्य शनेलच" । वीक्षमाणै = पश्यद्भि । अवीक्ष्यमाण = अनवलोक्यमान । मप्रसादम् = मप्रसन्नतम् । अचकथत् , लुङ् ।

मन्दुरासु = वाजिशालासु । प्रासादरक्षकाणा प्रासादस्थितिरपेक्षिता, सा नेनि

जव शिवाजी महल के अन्दर चले गये तो वह वही टहलता हुआ, उमको जमीन मे लेकर आखिरी मञ्जिल तक ध्यान पूर्वक देखता हुआ, द्वारपालो और प्रहरियो के आवासो का भली भाँति निरीक्षण करता हुआ, महल को चारो ओर ने पूरी तौर से देख लेने को इच्छा से, उसके चारो ओर फैले उपवन मे प्रविष्ट हो गया ।

एक तो सघन और हरी लताओ से परिवेष्टित वृक्षो की पक्ति, दूसरे अँधेरी रात, और तीसरे इस जटाधारी फकीर ने नीला कञ्चुक पहन रखा था । अत देखने वालो द्वारा भी न देखा जाता हुआ वह, महल की प्रदक्षिणा सा करके, अपने काम के सारे गुप्त स्थानो को भली-भाँति देख कर प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगा

"इस वेचारे शाइस्ता खाँ पर आक्रमण करना असम्भव या कठिन नही है। इसकी सेना नगर से वाहर रहती है। महल की रक्षा करने वाले सैनिक भी महल से काफी दूर घुडसालो मे रहते है और उनमे से केवल पाच-छ अपने नियत

पृष्ठदेशे विशालमुद्यानम् । नात्र रात्रौ कोऽपि मनुष्यो विचरति । उद्यान परितस्तु लोह-दण्ड-प्रवार , यमुल्लङ्घ्य यतस्तत एव प्रविविक्षु प्रवेष्टुमर्हति, यत्राऽऽच्छन्नशरीराश्च परस्सहस्रा परैरलक्ष्यमाणा समस्ता रात्रिमतिवाहयितु पारयन्ति । प्रासादे च बहवो गवाक्षा ग्रीष्मकालेऽस्मिन्नुन्मुद्रिता एवोपेक्ष्यन्ते । "क समायाति ? परास्तो महाराष्ट्र-हतक "—इति विश्वसन्त प्रहरिणो रक्षकाश्च निर्निस्त्रिशा एव निश्चर्माण एव च सोपेक्ष परस्पर हसन्तो हासयन्तश्च स्वप्रहरमतिवाहयन्ति । प्रासादान्त स्थिताना चमूपते सहस्वामिना च पानैरेव शयनैरेव च तथा समयो व्यत्येति, यथा ते का प्राची ? का प्रतीची ? क परकीय ? क आत्मीय ? दिन वा ? रजनी वा ? शयामहे वा ?

सोपहासमुक्ति । पृष्ठदेशे = पाश्चात्यभागे । लोहदण्डप्रावार = आयसदण्ड-वृति । आच्छन्नशरीरा॰ = प्रावृतदेहा । परै = शत्रुभि । अलक्ष्यमाणा = अज्ञायमाना । उन्मुद्रिता॰ = उद्घाटिता । उपेक्ष्यन्ते = निर्विचार त्यज्यन्ते । निर्निस्त्रिशा = खड्गशून्या । निश्चर्माण॰ = त्यक्तफलका, "फलकोऽस्त्री फल चर्म" त्यमर । सोपेक्षम् = उपेक्षया सहित यथा स्यात् तथा । स्वप्रहरम् = स्वयामम् । पानै = मद्यगोष्ठीभि । शयनै = रतिफलकै स्वापै । व्यत्येति = व्यतिक्रामति । परस्याय परकीय = अनात्मीय । गहाद्यन्तर्गणसूत्रेण कुक् छश्च ।

समय पर आकर द्वार पर पहरा देते ह। महल के पीछे बहुत बडा उद्यान ह, जिसमे रात मे किसी आदमी का पहरा नही रहता। उद्यान के चारो ओर लोहे की सलाखो से बनी चहार दीवारी ह। घुसना चाहने वाला जहाँ से भी घुसना चाहे इसे पार कर अन्दर घुस आ सकता है, और इस उद्यान मे हजारो नकाबपोश इस तरह सारी रात गुजार सकते ह कि दुश्मन देख या जान न पाये। महल मे अनेक रोशनदान है जो इस गर्मी के मौसम मे खुले ही छोड दिये जाते है और जिनकी ओर कोई ध्यान ही नही देता हे। 'बेचारा मराठा तो हार गया, अब कौन आयेगा, इस विश्वास से पहरेदार और प्रासादरक्षक सैनिक बिना ढाल-तलवार लिये ही, उपेक्षापूर्वक, परस्पर हँसते-हँसाते हुए, अपना समय

उद्बुध्यामहे वा ? श्वेतो वा ? कृष्णो वा ? इत्यादि चिरेण विदन्ति" इति।

पुन परावृत्य प्रधानद्वारमागत्य तदधिकृतस्य प्रतीहारस्यैकस्य सम्मुखमागत्य वाम-हस्तेन वाद्य झणज्झणत्कुर्वन् तस्यैव मुखमण्डले दत्त दृष्टिरनिमेषपातमवलोकयन्नस्थात्।

स च "स्वामिन्! किं कथ्यते?" इति द्विस्त्रिश्चापृच्छत्। अस्मिश्चोत्तरमददत्येव तथैवावलोकयति, "स्वामिन्! अपि भोक्ष्यते किमपि?" इति सादरमुवाच।

स तु किञ्चित् मस्तक कम्पयन्, मौनेनैव प्रतिनिवृत्य, निवर्तन-

आत्मनोऽयमात्मीय। गहादित्वाच्छ। श्वेतो वा कृष्णो वा, लोकोक्तिरेषा। एतद्विवरणफलकान्येव पूर्वोक्तपदानि।

परावृत्य = यथागतमागत्य। अनिमेषपातम् = निमेपानप्यपातयित्वेत्यर्थ। क्रियाविशेषणम्। अस्थात् = निवृत्तगतिकोऽभूत्। स्थाधातोरत्रैवार्थे मुख्य प्रयोग। "तिष्ठतु भवानि"त्यागन्तुक प्रति पण्डितराजशिवकुमारमिश्रकथने "किमपराद्ध मये"ति तदागन्तुककथाऽत्रानुसन्धातव्या। स्वामिन्! = "साई" इति हिन्दी। यवनसाधो सम्बोध्यमानत्वात्।

स तु तूष्णीक समतिष्ठतेति सम्बन्ध। मस्तक कम्पयन्, न भोक्ष्यामीति

बिताते रहते है, और महल के अन्दर रहने वाले सेनापति के साथियो का समय तो शराब पीने और सोने मे ही इस तरह बीत जाता ह कि वे पूरब पश्चिम, अपना-पराया, दिन रात, सोना-जागना और स्याह-सफेद भी बडी देर मे जान पाते है।

फिर लौट कर, मुख्य द्वार पर आकर, वहाँ पर नियुक्त एक प्रतिहार के सामने आकर, बाँएँ हाथ से बाजे को झन-झन बजाता हुआ वह उसी प्रतीहार के मुँह की ओर निर्निमेष नेत्रो से देखता हुआ खडा हो गया। उस प्रतीहार ने दो तीन बार, 'महात्मन्! आप क्या कहते हैं' यह पूछा पर जब फकीर विना कुछ उत्तर दिये उसे उसी प्रकार देखता हुआ खडा रहा, तो उसने आदर पूवक कहा, 'महात्मन्! क्या आप कुछ खायेंगे ?'

वह फकीर थोडा सा सिर हिलाकर (मै कुछ न खाऊँगा, इस प्रकार का

मार्ग एव कतिपयानि पदानि गत्वा, घण्टापथस्य प्रान्तस्थायामेक-स्यामुन्नत-वेदिकाया पश्चिमाभिमुखम् उपविश्य पातितोभयजानु स्थित्वा वाद्य पुरस्तात् संस्थाप्य मुखमध.कृत्य तूष्णीक समतिष्ठत। तथा स्थितस्यैव तस्य हृदये विचाराकूपारस्य तरङ्गा इव वहुभङ्ग-माकलयन्, यद्—

"अहह! कथमिव समायातोऽस्य दुर्भाग्यमय समय कोङ्कण-देशस्य, यद् यत्र गरुडाङ्किता महाध्वजा समद्धननंगगनतलो-द्धूयमानपवनमपावयन्, तत्र भारताभिजनसघन-कलङ्का इव नील-

बोधनायेदम्। निवर्त्तनमार्ग एव = येन पथा निवृत्तस्तेनैव कियद् दूर गत्वेत्याशय। घण्टापथस्य = राजमार्गविशेषस्य। प्रान्तस्थायाम् = समीपवर्तिन्याम्। उन्नतवेदिकायाम् = उच्चाया परिष्कृतभूमौ। पातिते उभयजानुनी यस्या तदिति क्रियाविशेषणम्। विचाराकूपारस्य = भावनासागरस्य। वहुभङ्ग-मिव = आघातप्रतिघातमिव। आकलयन् = व्यधु। स विविधविचार कृत-वानित्यर्थ।

गरुडाङ्किता = गरुडचिह्निता। विष्णुमन्दिरवत्त्वात्। गगनतले = छायापथे। उद्धूयमानम् = सञ्चरन्तम्। पवनम् = समीरणम्, स्वयमपि पवित्रताहेतुमिति पवनशब्दव्यङ्ग्यम्। अपावयन् = पूतमकार्षु। भारताभि-जनस्य = भारतदेशस्य, सघना = सान्द्रीभूता, कलङ्का इव। स्वभावत एव

सकेत देकर) मौन धारण किये हुए ही लौट कर, उसी रास्ते पर कुछ कदम चलकर, सडक के पास ही बने एक ऊँचे चबूतरे पर पश्चिम की ओर मुँह कर के, दोनो घुटने जमीन पर टेक कर, बाजे को आगे रख कर, मुंह नीचा कर के चुपचाप बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उस फकीर के हृदय पर विचार सागर की तरङ्गो ने अनेक घातप्रतिघात किये। वह सोचने लगा—

"हा! कोकण देश का कैसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ गया है कि जहाँ गरुड-चिह्न से अङ्कित बडे-बडे ध्वज फहर-फहर कर आकाश मे सञ्चरण कर रही वायु

उद्बुध्यामहे वा ? श्वेतो वा ? कृष्णो वा ? इत्यादि चिरेण विदन्ति" इति।

पुन परावृत्य प्रधानद्वारमागत्य तदधिकृतस्य प्रतीहारस्यैकस्य सम्मुखमागत्य वाम-हस्तेन वाद्य झणज्झणत्कुर्वन् तस्यैव मुखमण्डले दत्त दृष्टिरनिमेषपातमवलोकयन्नस्थात्।

स च "स्वामिन्! कि कथ्यते?" इति द्विस्त्रिश्चापृच्छत्। अस्मिश्चोत्तरमददत्येव तथैवावलोकयति, "स्वामिन्! अपि भोक्ष्यते किमपि?" इति सादरमुवाच।

स तु किञ्चित् मस्तक कम्पयन्, मौनेनैव प्रतिनिवृत्य, निवर्तन-

आत्मनोऽयमात्मीय। गहादित्वाच्छ। श्वेतो वा कृष्णो वा, लोकोक्तिरेषा। एतद्विवरणफलकान्येव पूर्वोक्तपदानि।

परावृत्य = यथागतमागत्य। अनिमेषपातम् = निमेपानप्यपातयित्वेत्यर्थ। क्रियाविशेषणम्। अस्थात् = निवृत्तगतिकोऽभूत्। स्थाधातोरत्रैवार्थे मुख्य प्रयोग। "तिष्ठतु भवानि"त्यागन्तुक प्रति पण्डितराजशिवकुमारमिश्रकथने "किमपराद्ध मये"ति तदागन्तुककथाऽत्रानुसन्धातव्या। स्वामिन्! = "साईं" इति हिन्दी। यवनसाधो सम्बोध्यमानत्वात्।

स तु तूष्णीक समतिष्ठतेति सम्बन्ध। मस्तक कम्पयन्, न भोक्ष्यामीति

बिताते रहते हैं, और महल के अन्दर रहने वाले सेनापति के साथियो का समय तो शराब पीने और सोने मे ही इस तरह बीत जाता ह कि वे पूरब पश्चिम, अपना-पराया, दिन रात, सोना-जागना और स्याह-सफेद भी बडी देर मे जान पाते हे।

फिर लौट कर, मुख्य द्वार पर आकर, वहाँ पर नियुक्त एक प्रतिहार के सामने आकर, बाँएँ हाथ से बाजे को झन-झन बजाता हुआ वह उसी प्रतीहार के मुँह की ओर निर्निमेष नेत्रो से देखता हुआ खडा हो गया। उस प्रतीहार ने दो तीन बार, 'महात्मन्! आप क्या कहते है' यह पूछा पर जब फकीर बिना कुछ उत्तर दिये उसे उसी प्रकार देखता हुआ खडा रहा, तो उसने आदर पूवक कहा, 'महात्मन्! क्या आप कुछ खायेगे ?'

वह फकीर थोडा सा सिर हिलाकर (मैं कुछ न खाऊँगा, इस प्रकार का

मार्ग एव कतिपयानि पदानि गत्वा, घण्टापथस्य प्रान्तस्थायामेक-स्यामुन्नत-वेदिकाया पश्चिमाभिमुखम् उपविश्य पातितोभयजानु स्थित्वा वाद्य पुरस्तात् सस्थाप्य मुखमध कृत्य तूष्णीक समतिष्ठत। तथा स्थितस्यैव तस्य हृदये विचाराकूपारस्य तरङ्गा इव बहुभङ्ग-माकलयन्, यद्—

"अहह ! कथमिव समायातोऽय दुर्भाग्यमय समय कोङ्कण-देशस्य, यद् यत्र गरुडाङ्किता महाध्वजा समद्धूननंगगनतलो-द्धूयमानपवनमपावयन्, तत्र भारताभिजनसघन-कलङ्का इव नील-

---

बोधनायेदम्। निवर्त्तनमार्ग एव = येन पथा निवृत्तस्तेनैव कियद् दूर गत्वेत्या-शय। घण्टापथस्य = राजमार्गविशेषस्य। प्रान्तस्थायाम् = समीपवर्तिन्याम्। उन्नतवेदिकायाम् = उच्चाया परिष्कृतभूमौ। पातिते उभयजानुनी यस्या तदिति क्रियाविशेषणम्। विचाराकूपारस्य = भावनासागरस्य। बहुभङ्ग-मिव = आघातप्रतिघातमिव। आकलयन् = व्यधु। स विविधविचार कृत-वानित्यर्थ।

गरुडाङ्किता = गरुडचिह्निता। विष्णुमन्दिरवत्त्वात्। गगनतले = छायापथे। उद्धूयमानम् = सञ्चरन्तम्। पवनम् = समीरणम्, स्वयमपि पवित्रताहेतुमिति पवनशब्दव्यङ्ग्यम्। अपावयन् = पूतमकार्षु। भारताभि-जनस्य = भारतदेशस्य, सघना = सान्द्रीभूता, कलङ्का इव। स्वभावत एव

सकेत देकर) मौन धारण किये हुए ही लौट कर, उसी रास्ते पर कुछ कदम चलकर, सडक के पास ही बने एक ऊँचे चबूतरे पर पश्चिम की ओर मुंह कर के, दोनो घुटने जमीन पर टेक कर, बाजे को आगे रख कर, मुंह नीचा कर के चुपचाप बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उस फकीर के हृदय पर विचार सागर की तरङ्गो ने अनेक घातप्रतिघात किये। वह सोचने लगा—

"हा ! कोकण देश का कैसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ गया है कि जहाँ गरुड-चिह्न से अङ्कित बडे-बडे ध्वज फहर-फहर कर आकाश में सञ्चरण कर रही वायु

ध्वजा समुद्धूयन्ते, यत्र कोटि-जन्मार्जित-महापातक-दीर्घ-दाव-दावानल-ज्वाला-मालाभिरिव हरि-नाम-घोषणाभिर्व्यापूर्यत वसुधा, तत्र कर्ण-कषाया चीत्कारमया हरि-हर-निन्दा-नादा कर्णौ स्फोटयन्ति। यत्र कदा जन्माष्टमी ? कदा रामनवमी ? कदैकादशी ? कदा प्रदोष ?—इति पृच्छा समश्रूयत पण्डित-मण्डलेषु, तत्र हि कदा 'मोहरम ? कदा रामयानम् ?'—इत्यादिराकर्ण्यते

नीलध्वजपटस्य भारतीयसघनकलङ्कत्वेनोत्प्रेक्षणम्। नीलध्वजा = कृष्णपताका, सचन्द्रा हरिद्वर्णा यवनध्वजा भवन्ति। कोटिजन्मभि = असङ्ख्यातजननै, अर्जितानि = सञ्चितानि, यानि महापातकानि = ब्रह्महत्यादीनि—

"ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुवङ्गनागम।
महान्ति पातकान्याहु ससगश्चापि तै सह॥" इति

मानव शासनम्, तान्येव दीर्घदाव = महाकाननम्, तस्य दावानल = वनाग्नि-सदृश, रूपकम्। भस्मीकरण रूपणहेतु, तस्या ज्वालामालाभिरिव = अर्चिस्ततिभिरिवेत्युत्प्रेक्षा। हरिनामघोषणाभि = भगवन्नामोच्चारणै। नाम्नि दहनत्व तदुच्चारणे च ज्वालामालात्वमारोपितमिति ध्येयम्। व्यापूर्यत = पूरिता। कर्णकषाया = श्रोत्रवेधका। श्रवणानर्हा इति यावत्। चीत्कारमया = शब्दविशेषमया। अत्र "वाग" इति यावनप्रसिद्धे तात्पर्यम्। हरिहरनिन्दानादा = देवगर्हणाशब्दा। उपलक्षण हरिहरपद देवमात्रस्य। रमयतीति रम, मोहस्य रमो मोहरम इति सस्कृतशब्दता। "मुहरम"

को पवित्र किया करते थे वही, भारत देश (भारतीयो) के सघन कलङ्क के से काले झण्डे फहराते है, जहा अनेक जन्मो मे अर्जित महापातक रूप महावनो के लिये दावानल की लपटो के समान भगवान् के नामो के उच्चारण स पृथिवी मण्डल गूँजा करता था, वही कानो को वेधने वाले, चीत्कारपूण विष्णु और शिव आदि देवताओ की निन्दा के स्वर कानो को फोडे डाल रहे है, जहा पण्डित- मण्डली मे 'जन्माष्टमी कब है ? रामनवमी कब है ? एकादशी कब हे ? प्रदोप कब हे ?' इस प्रकार के प्रश्न सुनाई देते थे, वही अब मौलवियो के 'मोहर्रम कब हे ?' 'रमजान कब हे ?' इस प्रकार के अरबीभाषामय

आरव्य-भाषामयो मौलिवीना वचन—विन्यास । यत्र विपणिषु सर्वदा द्राक्षा रम्भा आम्राणि नारिकेलानि दाडिम्वानि बीजपूराणि जम्बीराणि लिकुचानि पनसानि च व्यक्रीयन्त, तत्राधुना वर्तिका तित्तिरा कुक्कुटा लावा कलविङ्का सारसा श्येना उलूका तत्त-दण्डानि च विक्रीयन्ते । यत्र विशालतिलका कलितरुद्राक्ष—तुलसी-कमलाक्ष-मालिका ऊर्णा—कौशेय—मात्र—वसना काष्ठ—पादुका-रोहिण भगवन्नामामृत-रस-रसन-रसिक-रसना विहित-तीर्थ-

इति लोके । एतद्दिन एव मोहमदो घातित । रामयानम् = "रमजान" इति लोके । नारिकेलानि = कूर्चशीर्षकाणि । "नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्च-शीर्षक" । दाडिम्वानि = लोहितपुष्पकाणि, "दाडिम करको दन्तबीजो लोहित-पुष्पक" । बीजपूराणि = मातुलुङ्गानि । "बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचक फल पूरक" । लिकुचानि = डहुफलानि । "लिकुचो लकुचो डहुरि" त्यमर । "वड-हर" इति हिन्दी । पनसानि = कण्टकिफलानि, "कटहर" इति हिन्दी । वर्तिका ='वटेर' इति हिन्दी । लावा = लघुर्वर्तिका । कलविङ्का = जल-पक्षिण । विशाल तिलक येषा ते । कलिता = धारिता, रुद्राक्षस्य तुलस्या कमलाक्षस्य च मालिका यैस्तै ऊर्णा = मेषादिलोम, कौशेयम् = कृमिजम्, तन्मात्राण्येव वसनानि = वासासि येषा ते । ऊर्णादिवस्त्राणा वातससर्गमात्रत शुद्धत्वविधानात् पूजाभोजनादिषु प्रायो व्यवहरन्ति तान्येव धार्मिका । काष्ठ-पादुकामारोढु शील येषा ते । काष्ठपादुका = "खडाऊ" इति हिन्दी । भगवन्नामैव अमृतरस = सुधारस, तस्य रसने = आस्वादने, रसिका =

वाक्य सुनाई देते है । जहाँ बाजारो मे सदा अगूर, केला, आम, नारियल, अनार, बीजपूर नीबू, बडहल और कटहल बिका करते थे, वही अब बटेर, तित्तिर, मुर्ग, लवा, गौरैया, सारस, बाज, उलूक पक्षी तथा उनके अण्डे बेचे जाते है । जहाँ लोग, विशाल तिलक लगाने वाले, रुद्राक्ष, तुलसी और कमलाक्ष की माला धारण करने वाले, केवल ऊनी और रेशमी (पवित्र) वस्त्र धारण, करने वाले लकडी की खडाऊँ पहनने वाले, भगवन्नाम रूप अमृत रस का रसास्वादन

सार्थ-सञ्चरण-चरणा स्वोचिताचाराचरण-मात्र—व्यसनिनो महात्मान सप्रश्रय सस्तव सपादस्पर्श च प्राणम्यन्त, तत्र त एवाधुना

सलग्ना, रसना =जिह्वा येपा ते । अनुप्रासोऽत्राग्रे च ।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति पापनिर्हरणे हरे ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातक पातकी जन ॥
साङ्केत्य पारिहास्य वा स्तोम हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेपाघहर विदु ॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकै ।
पुमान् विमुच्यते सद्य सिहत्रस्तमृगैरिव ॥"

इत्यादिविधायकवचनसमूहेन नामोच्चारणविधि प्रदर्शित इति ज्ञेयम् । नात्रत्यफलश्रुतेरर्थवादतेति **श्रीकरपात्रिचरणाना** सङ्कीर्त्तनमीमासाया स्फुटम् । विहित **तीर्थसार्थेषु**=वदरी-जगन्नाथ-रामेश्वर-द्वारिकादिपूततमस्थानसमूहेपु, **सञ्चरणम्**=भ्रमणम्, यैस्तादृशा, **चरणा** =पादा, येपा ते । तीथभ्रमणस्य स्वर्गापवर्गादिफल शतश पुराणेतिहासेपु निरूपितम् । **स्वोचितानाम्**=स्वस्ववर्णाश्रमादियोग्यानाम्, वेदशास्त्रविहितानाम् **आचाराणाम्**=शौचस्नानसन्ध्यावन्दनादिनित्यनैमित्तिककाम्यानुष्ठानानाम्, **आचरणमात्रम्**=पालनमेव, **व्यसनम्**=प्रतिदिवसकृत्यम्, येषा ते । यथा मद्यादिदुर्व्यसननिरता न कदाचिदपि परित्यजन्ति तानि तथा न कदाचिदपि नैत्यिकाद्यनुष्ठान नानुतिष्ठन्तीति भाव । व्यसनपदस्वारस्येन चैतदेवैक सत् व्यसन न तु मद्यपानादिव्यसनमिति ध्वनयति । **महान्**=सत्त्वातिशयसम्पन्न, **आत्मा**=जीवात्मा येपा ते । आत्मनि महत्त्व च निर्दूपणत्वम् । नित्यमुक्तस्वभावो हि जीव कर्मपाशबद्धोऽशुद्धाज्ञदद्ध इव लक्ष्यते, स्वस्ववर्णाश्रमोचितकर्त्तव्यव्रातसमनुष्ठानेन चाज्ञानहाने स्वस्वरूप परिचिनोति ।

करने मे रसिक रसना वाले, अनेक तीर्थो का भ्रमण कर चुके चरणो वाले अपने (वण और आश्रम के) अनुरूप आचरण के पालन मे तत्पर महात्माओ को विनयपूर्वक, स्तुतिपूर्वक और चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम किया करते थे, वहाँ आज उन्ही महात्माओ की, गलियो, सडको, सरोवर-तटो, उद्यानो,

वीथीषु, राजपथेषु, तडाग-तटेषु, उद्यानेषु, विपणिषु, समाजेषु च महामास-डक्कार-पूतिगन्ध-सम्बन्धान्धीकृत-पारिपार्श्विकै चिर-जलानवगाहनोद्भूत-महामलावलि-मलीमसै मद्यस्वेद-निष्ठ्यूत-कर्णकिट्ट—सिङ्घाण—दूषिकादि—विविध—मल—लिप्त—चिराक्षालित-मलिन-वसनै वारवधूच्छिष्ट-भोजिभि दुराचार-हतकैरवहेल्यन्ते,

तत्र कृतश्रमाश्च महात्मान इत्युच्यन्ते । अथवाऽऽनपदमन्त करणपरमाश्रित्य ऋजुबुद्धिमोदाय व्याख्येयम् । सप्रश्रयम् = मनम्रतम् । सस्तवम् = स्तुतिपूर्वकम । प्राणम्यन्त = समभिवाद्यन्त । कर्मणि प्रत्यय । वीथीषु = लघुपथेषु । "गल्ली" इति हिन्दी । समाजेषु = मानवसङ्घेषु । महामासस्य = गोमासस्य, डक्कारै = उद्गारै, "डकार" इति हिन्दी । य पूतिगन्ध = दुर्गन्ध, तत्सम्बन्धेन = तत्ससर्गेण, अन्धीकृता = व्यर्थचक्षुष्कीकृता, पारिपार्श्विका = समीपवर्त्तिन, यैस्तै । चिरजलानवगाहनेन = बहो कालाद् वारिनिमज्जनाभावेन, उद्भूतानाम् = सञ्जातानाम्, महामलानाम् = अतिमलिनतानाम्, आवलिभि = पङ्क्तिभि, मलीमसै = मलिनै । मद्यस्वेद = सुराघर्म । निष्ठ्यूतम् = थूत्कार । कर्णकिट्टम् = कर्णमलम् । सिङ्घाणम् = नासिकामलम् । दूषिका = नेत्रयोर्मलम् । परस्परमेतेषु द्वन्द्व । एतदादिभि । विविधै = नानाप्रकारै, मलै लिप्तानि = व्याप्तानि, चिरात् = बहो कालात्, अक्षालितानि = अधौतानि, अत एव च मलिनानि = अत्यधिकमलिनताभाञ्जि, वसनानि = वस्त्राणि, येषा तै । "दूषिकानेत्रयोर्मलम् । नासामल तु सिङ्घाणम्" इत्यमर । बीभत्सरस । वारवधूनाम् = वेश्यानाम्, उच्छिष्टानि = भुक्तावशिष्टानि, भोक्तु शील येषा तै । दुराचारहतकै = आचारविरहितै पापिभि ।

बाजारो और सभाओ मे, खाये हुए गोमास की डकार की दुर्गन्ध से समीपवर्ती लोगो को अन्धा बना देने वाले (लोगो मे जुगुप्सा उत्पन्न कर देने वाले), बहुत दिनो से स्नान न करने के कारण उत्पन्न मैल से गन्दे शरीर वाले, मदिरा, पसीना, थूक, नाक का मैल, आँख का मैल आदि नाना प्रकार की गन्दगियो से युक्त और अधिक दिनो से धोये न जाने के कारण मैले कपडो वाले,

सार्थ-सञ्चरण-चरणा स्वोचिताचाराचरण-मात्र—व्यसनिनो महा-
त्मान सप्रश्रय सस्तव सपादस्पर्श च प्राणम्यन्त, तत्र त एवाधुना

सलग्ना, रसना = जिह्वा येपा ते । अनुप्रासोऽत्राग्रे च ।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति पापनिहरणे हरे ।
तावत् कर्तु न शक्नोति पातक पातकी जन ॥
साङ्केत्य पारिहास्य वा स्तोभ हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेपाघहर विदु ॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकै ।
पुमान् विमुच्यते सद्य सिहत्रस्तमृगैरिव ॥"

इत्यादिविधायकवचनसमूहेन नामोच्चारणविधि प्रदर्शित इति ज्ञेयम् । नात्रत्यफलश्रुतेरर्थवादतेति **श्रीकरपात्रिचरणाना** सङ्कीर्तनमीमासाया स्फुटम् । विहित **तीर्थसार्थेषु** = बदरी-जगन्नाथ-रामेश्वर-द्वारिकादिपूततमस्थानसमूहेपु, **सञ्चरणम्** = भ्रमणम्, यैस्तादृशा, **चरणा** = पादा, येषा ते । तीथभ्रमणस्य स्वर्गापवर्गादिफल शतश पुराणेतिहासेपु निरूपितम् । **स्वोचितानाम्** = स्वस्व-वर्णाश्रमादियोग्यानाम्, वेदशास्त्रविहितानाम् **आचाराणाम्** = शोचस्नानसन्ध्या-वन्दनादिनित्यनैमित्तिककाम्यानुष्ठानानाम्, **आचरणमात्रम्** = पालनमेव, **व्यसनम्** = प्रतिदिवसकृत्यम्, येषा ते । यथा मद्यादिदुर्व्यसननिरता न कदाचिदपि परित्यजन्ति तानि तथा न कदाचिदपि नैत्यिकाद्यनुष्ठान नानुतिष्ठन्तीति भाव । व्यसनपदस्वारस्येन चैतदेवैक सत् व्यसन न तु मद्यपानादिव्यसनमिति ध्वनयति । **महान्** = सत्त्वातिशयसम्पन्न, **आत्मा** = जीवात्मा येपा ते । आत्मनि महत्त्व च निर्दूपणत्वम् । नित्यमुक्तस्वभावो हि जीव कर्मपाशबद्धोऽशुद्धाज्ञदद्ध इव लक्ष्यते, स्वस्ववर्णाश्रमोचितकर्त्तव्यव्रातसमनुष्ठानेन चाज्ञानहाने स्वस्वरूप परिचिनोति ।

करने मे रसिक रसना वाले, अनेक तीर्थों का भ्रमण कर चुके चरणो वाले अपने (वण और आश्रम के) अनुरूप आचरण के पालन मे तत्पर महात्माओ को विनयपूर्वक, स्तुतिपूर्वक और चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम किया करते थे, वहाँ आज उन्ही महात्माओ की, गलियो, सडको, सरोवर-तटो, उद्यानो,

वैकुण्ठ ! रमापते ! गौरीपते !" इत्यादीनि कलिमल-मथनानि अधरीकृत-सुधा-माधुर्याणि सवीणा-वाद नारदेन रसनीयानि भगवन्नामानि उच्चारयन्त , कलित-परम-पवित्र-वेषा , सहमाना अपि वाचाटानामरुन्तुदा वाच , कथ कथमपि स्वधर्म निर्वहन्ति ।

अहह ! धिगस्मान् ! ये दुराचाराणामीदृशमात्मधिक्कारमीक्षामहे, सहामहे, जीवामश्च । म्लेच्छा एव भारत-साम्राज्य-सिंहासन-

सीतया सहितो राम सीतारामस्तत्सम्बुद्धौ । मायाप्राबल्यबोधनाय सीताशब्दस्याधता । नारायण ="आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव । ता यदस्यायन पूर्व तेन नारायण स्मृत." इति निरुक्ति । वैकुण्ठ = विष्णो ! "वैकुण्ठो विष्टरश्रवा" इत्यमर । कले = तुरीययुगस्य, मलानाम् = पापानाम्, मथनानि = दूरीकरणानि । 'हरेर्नामैव नामैव नामैव गतिरुच्यते । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" इति वचनात् । अधरीकृतम् = निम्नीकृतम् , सुधाया माधुर्य यैस्तानि । नारदेन = ब्रह्मसूनुना परमभागवतेन । मनस एव नारदसंज्ञा पौराणिकै कृता, तस्य च चञ्चलत्वमभिलक्ष्यैकत्रास्थायित्व द्विघटीतोऽधिककाल शापादिना प्रतिपादितमिति पुराणमतदीपिकायामस्माभि स्पष्टीकृतम् । रसनीयानि = सरसास्वाद गेयानि । कलित-परमपवित्रवेषा = स्वीकृतातिपूतनेपथ्या । वाचाटानाम् = असद्बहुभाषिणाम्, "आलजाटचौ बहुभाषिणि" सू० "कुत्सित इति वक्तव्यमि"त्येतत्सूत्रस्य वार्त्तिकम् । सम्यग् यो बहु भाषते स तु वाग्मी । अरूषि तुदन्तीत्यरुन्तुदा = मर्मवेधका । "अरुन्तुद तु मर्मस्पृगि"त्यमर ।

दुष्टा आचारा येषा तेषा दुराचाराणाम् = सदाचारविरहितानाम । ईक्षामहे = पश्याम । दर्शकास्तूदासीना अपि भवन्तीति सहामहे । अथ किमपि

रमापति, गौरीपति आदि नामो का उच्चारण करते हुए, परम पवित्र वेश धारण किये हुए, बकवादियो के मर्मवेधी वचनो को सहन करते हुए, किसी तरह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं ।

हा ! हमे धिक्कार है कि हम दुराचारियो द्वारा किये गये इस प्रकार के अपमान को देखते हैं, सहते हैं और जीवित हैं (मर नहीं जाते) । म्लेच्छ

अवधीर्यन्ते, गालि-प्रदान-पुरःसरं तिरस्क्रियन्ते, क्वचन ताड्यन्ते, निःसार्यन्ते च।

अहह! सम्प्रति बहवः सरोदनं सकष्टं तिलकादिधारण-मर्य्यादां त्यक्तवन्तः, अपरे च व्याघ्र-वदनाघ्राण-साहस-सोदर्य-साहसोपबृंहिताः, कृपाण-धारास्विव धावन्तः प्राणानगणयन्तोऽधुनाऽपि "हरे! कृष्ण! दामोदर! महादेव! राघावर! सीताराम! नारायण! वामन!

अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते। अवधीर्यन्ते इत्यपि तदर्थकम्। तिरस्कारातिशय-द्योतनाय त्रितयप्रयोगः। ताड्यन्ते=प्रह्रियन्ते। निःसार्यन्ते = बहिः क्रियन्ते, गेहादिभ्यः स्थानशून्याः क्रियन्त इति यावत्।

व्याघ्रवदनाघ्राणम् = शार्दूलमुखचुम्बनम् एव साहसम् = बलकर्म तत्सोदर्यम् = तत्समानोदरे शयितम्, तुल्यमिति यावत्। यत् साहसम् = बल-कर्म तेन। उपबृंहिता = सवलिताः, व्याघ्रमुखनिपतनेऽपि भयशून्या इति यावत्। कृपाणधारासु = असिधारासु। धावन्तः = त्वरया गच्छन्तः। अतिशयोक्ति लोकोक्तिश्च। हरति पापानीति हरिस्तत्सम्बुद्धौ हे हरे! "हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः" इति पुराणम्। कृषतेर्नङि कृष्णः, पापानि कर्षतीति व्युत्पत्तिः। औपनिषदा अपि "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इति। दाम = रज्जुः, उदरे = कटौ, यस्य तत्सम्बुद्धौ। कृष्णो बद्धो गोपिकया यशोदयेति ब्रह्मवैवर्तादिषु स्फुटम्।

तथा वेश्याओं की जूठन खाने वाले दुराचारी अवहेलना करते हैं, अपमान करते हैं, गाली देकर तिरस्कार करते हैं, कहीं-कहीं (महात्माओं को) मारते हैं और निकाल भी देते हैं।

हा! अब तो बहुतों ने रोते हुए, कष्टपूर्वक तिलक आदि धारण करना भी छोड़ दिया है। व्याघ्र का मुख सूँघने के साहस के समान साहस वाले, मानो कृपाण की धारा पर दौड़ते हुए, और प्राणों की चिन्ता न करते हुए, कुछ दूसरे लोग अब भी कलियुग के पापों को दूर करने वाले, अमृत की मधुरिमा को भी पराजित करने वाले, नारद के द्वारा वीणा बजा कर गाये जाने योग्य, भगवान् के हरि, कृष्ण, दामोदर, महादेव, राघावर, सीताराम, नारायण, वामन, विष्णु

वैकुण्ठ ! रमापते ! गौरीपते !" इत्यादीनि कलिमल-मथनानि अधरी-कृत-सुधा-माधुर्याणि सवीणा-वाद नारदेन रसनीयानि भगवन्नामानि उच्चारयन्त, कलित-परम-पवित्र-वेषा, सहमाना अपि वाचाटाना-मरुन्तुदा वाच, कथ कथमपि स्वधर्म निर्वहन्ति।

अहह! धिगस्मान्! ये दुराचाराणामीदृशमात्मधिक्कारमीक्षा-महे, सहामहे, जीवामश्च। म्लेच्छा एव भारत-साम्राज्य-सिंहासन-

सीतया सहितो राम सीतारामस्तत्सम्बुद्धौ। मायाप्राबल्यबोधनाय सीताशब्द-स्याद्यता। नारायण ="आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव। ता यदस्यायन पूर्व तेन नारायण स्मृत." इति निरुक्ति। वैकुण्ठ = विष्णो! "वैकुण्ठो विष्टरश्रवा" इत्यमर। कले = तुरीययुगस्य, मलानाम् = पापानाम्, मथनानि=दूरीकरणानि। "हरेर्नामैव नामैव नामैव गति-रुच्यते। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" इति वचनात्। अधरीकृतम् =निम्नीकृतम्, सुधाया माधुर्यं यैस्तानि। नारदेन = ब्रह्मसूनुना परमभागवतेन। मनस एव नारदसंज्ञा पौराणिकै कृता, तस्य च चञ्चलत्वमभि-लक्ष्यैकत्रास्थायित्व द्विघटीतोऽधिककाल शापादिना प्रतिपादितमिति पुराणमत-दीपिकायामस्माभि स्पष्टीकृतम्। रसनीयानि = सरसास्वाद गेयानि। कलित-परमपवित्रवेषा = स्वीकृतातिपूतनेपथ्या। वाचाटानाम् = असद्बहुभाषिणाम्, "आलजाटचौ बहुभाषिणि" सू० "कुत्सित इति वक्तव्यमि"त्येतत्सूत्रस्य वार्तिकम्। सम्यग् यो बहु भाषते स तु वाग्मी। अरूषि तुदन्तीत्यरुन्तुदा = मर्मवेधका। "अरुतुद तु मर्मस्पृगि"त्यमर।

दुष्टा आचारा येषा तेषा दुराचाराणाम् = सदाचारविरहितानाम्। ईक्षामहे = पश्याम। दर्शकास्तूदासीना अपि भवन्तीति सहामहे। अथ किमपि

रमापति, गौरीपति आदि नामो का उच्चारण करते हुए, परम पवित्र वेश धारण किये हुए, बकवादियो के मर्मवेधी वचनो को सहन करते हुए, किसी तरह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं।

हा! हमे धिक्कार है कि हम दुराचारियो द्वारा किये गये इस प्रकार के अपमान को देखते हैं, सहते है और जीवित हैं (मर नही जाते)। म्लेच्छ

मधितिष्ठन्तु धर्मेण च शासनमूरीकुर्वन्तु। "नराणा च नराधिप "—इति मुद्रया स्वभाव-सिद्धाऽस्माक राजभक्तिरुद्रेक्ष्यति, किन्तु केय व्यर्थ प्रजा-हत्या, लुण्ठनम्, वलात्कारश्च। नहि लुण्ठकेपु कस्याऽपि प्रीतिर्भवति। (नि श्वस्य)

अहह! ग्रहा एव प्रतिकूला, विधिरेव वाम, समय एवाऽशुभमय, अदृष्टमेव निकृष्टम्, भवितव्यमेव निन्दितव्य भारतवर्षस्य। अन्यथा को वा भटम्मन्यो भारतीय-क्षत्रियाणा बालस्यापि क्रीडा-चन्द्रहास-चमत्कारमपि सोढुमलम्। परन्तु ऐक्यमेव न भवत्यस्मद्देशीयानाम्,

---

कर्तुमशक्नुवानै सोढव्यमेव तत्राह **जीवाम** इति। अशक्तैर्जीवन त्याज्यम्। "सता माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणमि"ति हि मनस्विगता प्रनीति। **म्लेच्छा** = अपशब्दभापिण। असस्कृतभापाभाषिण इति यावत। **धर्मेण** = मानवादि-प्रदर्शितशासनविधानेन। **ऊरीकुर्वन्तु** = अङ्गीकुवन्तु। **स्वभाव-सिद्धा** = प्राकृतिकी। भारतीया हि प्राय पकृत्या राजप्रवणा आसन्। यद्यपि समये समये दुप्टराजमारणमपि कृतमेव तै, यथा वेनेतिवृत्ते मनुनैव प्रदर्शिते स्पप्टम्। **उद्रेक्ष्यति** = एधिप्यते। **लुण्ठकेपु** = राजनामधारिपु चारेपु।

ग्रहा = शनैश्चरादय। **विधि** = देवम्, **अदृष्टम्**—भागधेयम्। नहि सर्वज्ञातिरिक्त कोऽपि द्रप्टु शक्नोति तत्। **भवितव्यम्** = अवश्यभावि। नीलकण्ठनग्नत्वादिना तदवार्यता स्फुटा। आत्मान भट मन्यत इति **भटम्मन्य** = "आत्म माने खश्च"। **क्रीडाचन्द्रहासचमत्कारम्** = लीलाखड्गसञ्चालन-

---

लोग ही भारत-साम्राज्य के सिहासन पर बैठ जाये और धमपूर्वक शासन करे, राजा प्रजा का देवता ह, ऐसा मानने वाले हम लोग स्वभावत राजभक्त होते है अत म्लेच्छ शासको के प्रति भी हममे राजभक्ति आ ही जायेगी, परन्तु प्रजा की यह अकारण हत्या, यह लूट, यह वलात्कार कैसा ? लुटेरो से तो कोई प्रेम नही करता! (नि श्वास लेकर)

हा! भारतवर्ष के ग्रह ही प्रतिकूल है, विधि ही वाम हे, दिन ही वुरे है, भाग्य ही खराव हे, भविप्य ही वुरा (निन्दा के योग्य) है, अन्यथा अपने को वीर मानने वाला कौन व्यक्ति भारतीय क्षत्रियो के वच्चे के तलवार के खेल

यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजन-वीर-वरा सहयुञ्जेरन् तद् वय क्षणेन पारावारमपि मरूकुर्म , बन्धुभिरपि कृत-वैरस्य महानीचस्य एतस्य मर्दन तु को नाम कठिनो व्यापार ? परन्तु राजपुत्र-देशीय-महाराजानामन्यतम प्रधान-वीरोऽय महाराजो मरु-धराधीश्वरो यवनानामेव पार्श्वग्रहतामङ्गीकृत्य अस्माभिरेव सह योद्ध ध्वजानुद्धूय, पुण्यनगरनेदीयस्येव प्रकाण्डभूभागे शिबिराण्यधितिष्ठति । राजपुत्र-गण-शिरोमणिरामेर-देशाधीशश्च दिल्लीश्वरस्यैव पृष्ठ-पोषक । अयोध्याप्रान्तस्था क्षत्रियकेसरिणश्च पूर्णतया परवन्त सवृत्ता -इति श्रूयते । कोङ्कणदेशे तु विजयपुरादीना प्रधानतम-स्थानाना यवना एवाऽध्यक्षा , वङ्गदेशे तु प्राय क्षत्रिया एव न सन्ति, सन्तोऽपि च युद्ध-विद्या न जानन्ति । केवलमेक आयुष्माञ्छिववीर एव धर्मे बलात्कारमेत-

कौतुकम् । मरूकुर्म =शुष्कतामापादयाम । पार्श्वग्रहताम् = पक्षपातिताम् । प्रकाण्डभूभागे = विशालप्रदेशे, नात्र प्रशसावाच्यय प्रकाण्डशब्द , येन परनिपात सम्भाव्येत । आमेरदेशाधीश = अम्बराधिपति । क्षत्रियकेसरिण = सिहसदृशा राजान , परवन्त = पराधीना ।

का चमत्कार सह सकने मे भी समर्थ ह ? परन्तु हमारे देशवालो मे तो एकता ही नही होती । यदि भारतवर्ष के सभी वीर पुरुष सगठित हो जाये, तो हम क्षण भर मे ही समुद्र को भी मरुस्थल मे परिणत कर दे, अपने बन्धु बान्धवो से भी वैर करने वाले इस महानीच को समाप्त करना कौन कठिन काम है ? किन्तु राजस्थान के राजाओ मे अन्यतम, प्रमुख वीर, मरुदेश के महाराज, यवनो का ही पक्ष ग्रहण कर के, हम लोगो से ही लडने के लिये, झण्डा फहरा कर, पूना नगर के पास ही एक बडे भूभाग मे पडाव डाले पडे है । राजपूतो के शिरोमणि, आमेरनरेश भी दिल्ली के सुल्तान के ही पक्ष के समर्थक है । अयोध्या-प्रान्त के क्षत्रिय, सुनते हैं, पूर्णतया पराधीन हो गये ह । कोकण देश मे बीजापुर आदि प्रमुख स्थानो पर यवन ही राज्य कर रहे है । बङ्गाल मे तो प्राय क्षत्रिय भी नही ह, जो है, भी वे युद्ध करना नही जानते । केवल अकेले आयुष्मान्

मसहमान सर्वदा यवनैर्युद्धाय सज्जति, न चैतस्य ऋते परमात्मन कोऽपि साहाय्य विदधाति ।

हा भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे ? हा वसुन्धरे ! किं दीनप्रजाना रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ? हा मन्दिर-वृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा साङ्गवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? अहह !! धिग् धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्व रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि !

हन्त भगवन् ! "महति दुराचारे प्रवृत्तेऽवतरामि" इति प्रतिज्ञातवानसि, तत् किमितोऽप्यधिक दुराचारमपेक्षसे ? अहह !! परस्कोटया मूर्त्तयो भज्यन्ते, असङ्ख्यानि मन्दिराणि भूमिसात् क्रियन्ते, राशीकृतानि वेदादि-पुस्तकानि ज्वालाजालैर्ज्वाल्यन्ते, कुलीनानामपि कन्यका

अवतरामि = मानवे लोके गृहीतदेहो भवामि ।
'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मान सृजाम्यहम् ॥'

शिवाजी ही, धर्म का अपमान सहन न करते हुए यवनो से युद्ध करने के लिये सदैव सन्नद्ध रहते है, और भगवान् के सिवा अन्य कोई भी इनकी सहायता नही करता ।

हा भारतवर्ष ! क्या लुटेरे ही तुम्हारा उपभोग करेंगे ? हा वसुन्धरे ! क्या दीन-दुखी प्रजा (सन्तान) के रक्त से ही नहाओगी ? हा सनातनधर्म ! क्या विलीन ही हो जाओगे ? हा वर्णव्यवस्थे ! (ब्राह्मणादि चारो वर्णो !) क्या तुम्हारी सिर्फ कहानी ही रह जायेगी ? हा मन्दिरसमूह ! क्या धूल मे ही मिल जाओगे ? हा ! छ अङ्गो सहित वेद ! क्या समाप्त ही हो जाओगे ? हा ! धिक्कार हे ! रे कलियुग, तूने रक्षको को ही भक्षक बना दिया है ।

हा भगवन् ! आपने दुराचार बढ जाने पर अवतार लेने की प्रतिज्ञा की हे, तो क्या आपको इससे भी अधिक दुराचार की अपेक्षा है ? हा ! करोडो मूर्तियाँ तोडी जा रही है, असङ्ख्य मन्दिर मिट्टी मे मिलाये जा रहे है, ढेर के ढेर वेदादि ग्रन्थ अग्नि की लपटो के समूह मे जलाये जा रहे हैं, कुलीन लोगो की

कदर्य्यहतकै. कुत्सिताभिप्रायेण वलादाच्छिद्यन्ते । शिरश्छेदानाम् नयनोत्पाटनानाम्, करकर्तनानाम्, जिह्वा-कर्षणानाम्, उदर-विदारणानाम्, शूलारोपणाना च क्रीडा इव क्रियन्ते । या प्रजा पूर्वं राजभिरौरस-प्रजा इव प्राणाधिक-प्रेम्णा समपाल्यन्त, ता अधुना निरथं निर्दय लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, घात्यन्ते, ज्वाल्यन्ते च । अहह ! नाधुनाऽपि तव हृदये दया सञ्चरति ? भगवन् ! किमिति दीनवन्धु-पदेन सम्बोध्यसे ? यासा भारतीय-प्रजाना दीनतामवलोक्य ग्रावा-णोऽपि रुदन्ति, तासामुपरि करुणामयी दृष्टिमपि न क्षिपसि ? हन्त ! कियच्छयिष्यसे ? अहह ! अस्माक महाक्रन्दनकोलाहलैरपि न विद्राव्यते तव निद्रा ? हा ! तवापि कथ व्यामोह ? गरल तु धूर्जटिना पीतम्, मधु च दानवैरास्वादि, किन्तु चित्र यद्, एष

इति हि भगवदीया प्रतिज्ञा । कदर्य्यहतकै =पापात्मभि । कुत्सिता-भिप्रायेण = वलात्काकरणाभिलाषेण । उरसो जाता औरस्य, ताश्च ता प्रजा औरसप्रजा = स्वोत्पन्नसन्तानानि । "हृदयादभिजायते" इति श्रुति । इवेनो-पमा । ग्रावाणोऽपि रुदन्ति अतिशयोक्ति । गरलम् = विषम् । धूर्जटिना = शम्भुना । मधु = मद्यम् । आस्वादि = कवलीकृतम् । व्यामोह = मदातिरेक-

---

भी कन्याएँ पापियो द्वारा बुरे इरादो से (वलात्कार के अभिप्राय से) वल-पूर्वक छीनी जा रही हैं । सिर काटने, आँख निकालने, हाथ काट देने, जवान खीच (काट) लेने, और भालो पर उछालने के खेल-से किये जा रहे है । जिस प्रजा का पहले, राजा लोग अपनी औरस सन्तान की भाँति प्रेम-पूर्वक-प्राणो से भी अधिक मानते हुए पालन करते थे, वही प्रजा आज अकारण निर्द-यतापूर्वक लूटी जाती हे, मारी जाती है, और जलाई जाती है । हा ! तुम्हारे हृदय मे अब भी दया का सञ्चार नही होता ! भगवन् ! तुम्हे दीनबन्धु कह कर क्यो सम्बोधित किया जाता हे ? जिस भारतीय प्रजा की दीनदशा देखकर पत्थर भी रो देते हैं, उस पर तुम अपनी करुणामयी दृष्टि भी नही डालते ? हा ! कितना (कब तक) सोओगे ? हमारे भीषण रुदन की चीख-पुकार से भी तुम्हारी नीद नही टूटती ? हा ! तुम्हे भी कैसा व्यामोह हो गया है ? विष तो शङ्कर ने पिया था और मद्यपान देवताओ ने किया था पर

विलक्षणस्त्वयि दृश्यते व्यामोह । त्व हि राजत-प्रासादो वा क्षीर-सागरो वा दन्ति-दन्त-पर्यङ्को वा कुण्डलितानन्तभोगाऽऽभोगो वा इति किमपि न वेवेक्षि । अगणित-फणावलि-फूत्कृतैरिव वीज्यमानो विमल-कमलोदर-सोदर-सौन्दर्याभ्या कमल-कोमल-कमला-करतलाभ्या पादयो पीड्यमानो नि शङ्क तस्मिन्नेव कोमलतमवेषे शेषे शेषे ।

जन्या विचारशून्यता । कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वादसङ्गतिरलङ्कार । रजतस्य विकारो राजत, स चासौ प्रासाद =हर्म्यम् । क्षीरस्य सागर । दन्ति-दन्तस्य = करिकरस्य, पर्यङ्क = पल्यङ्क । कुण्डलितः = कुण्डलाकृतिमुपगत, अनन्तभोग =शेषदेह, स एव आभोग =अधिष्ठानम् । वेवेक्षि = पृथक् पृथग् विचारयसि । "विजिर् पृथग्भावे" इतिना निपातेनाभिहितत्वान्न राजत-प्रासादादिशब्देषु द्वितीया । एष टीकाकृता बहुव्रीहिप्रदर्शन किमर्थकमिति बुद्धि-मद्भिरवधारणीयम् । अगणितै =असङ्ख्यातै, फणावलीना फूत्कृतै = फूत्कारशब्दै । वीज्यमान इव = आसेव्यमान इव । उत्प्रेक्षा । विमलस्य = निर्मलस्य, कमलस्य = पद्मस्य, उदरसोदरम् = मध्यतुल्यम्, सौन्दर्यम् = सुषमा, ययोस्ताभ्याम् । कमलवत् कोमलाभ्या कमलाया =लक्ष्म्या, करतला-भ्याम् । निश्शङ्कम्, अनेन फणावलिवायुसहनक्षमता ध्वनिता । कोमलतम = नितान्तमृदु, वेष = नेपथ्य, यस्य तस्मिन् । वेषमात्र कोमल कृत्य त्वकोमल-मिति ध्वनि । शेषे = अनन्ते, शेषे = स्वपिषि । अगणितैरित्यारभ्यानुप्रास शब्दालङ्कार । विमलकमलोदर-सोदरसौन्दर्याभ्यामित्यनेन कमलाकरतलयो-र्लालित्यमीषद्रक्तवर्णत्व च व्यञ्जितम्, कमलाकोमलेत्यनेन च मृदुत्वम्, कोमल-

---

आश्चर्य है कि नशा तुम्हे चढा है । एक विलक्षण व्यामोह तुममे दिखाई दे रहा है । तुम यह भी नही समझ पाते कि यह चाँदी का महल है या क्षीर-सागर, हाथीदाँत का पलँग है या कुण्डलित शेषनाग के फनो की शय्या । शेषनाग के अगणित फनो की फुफकार तुम्हे पँखा सा झल रही है, लक्ष्मी के निर्मल कमल के मध्यभाग के समान सुन्दर कमल के समान कोमल हस्तयुगल तुम्हारे चरणो की सेवा कर रहे है, और तुम नि शङ्क होकर उसी कोमलतम वेष

तत् किं जगत शेषे तव निद्रया भङ्क्ष्यते ? अथवा तस्यैव महागरलस्य महामद्यस्य च भगिन्या कनकाङ्गिन्या समालिङ्गित इति पन्नग-कुल-मूलस्य शेष-नागस्य गरलावलीढैर्निश्वासै प्रतिरोम-कुहर रञ्जित इति च कलयति काञ्चन मूर्च्छाम्, मत्तता च। कथमन्यथा क्षीरधि-वेष्टित एव क्षीरधि-कन्यया रमेथा ? किं तु मैवम्, क्षमस्वैना-मनल्प-जल्प-कल्पनाम्। सर्वत्रैवासि, सर्वान् पश्यसि, सर्वं वेत्सि,

---

तम्गाभ्यामपि ताभ्या सम्पर्के भगवच्चरणयो पीडैव सञ्जायते नितान्तकोमलत्वा-दिति। जगत ससारस्य। शेषे = समाप्तौ। भङ्क्ष्यते = नङ्क्ष्यते। "भञ्जो आमर्दने" भावे तङ्। तस्यैव = पुराणादिषु सुप्रसिद्धस्यैव। महागरलस्य = सागरोत्थस्य हालाहलस्य। महामद्यस्य = वारुण्या। भगिन्या = सहोदरया। समुद्रमन्थने हालाहलादिभि साक लक्ष्मीरपि नि सृतेति पुराणेषु स्फुटम्। कनकाङ्गिन्या = सुवर्णशरीरया। अतिगौरवर्णयेति यावत्। "धत्तूर कनका-ह्वय "इति धत्तूरवाची कनकशब्द। धत्तूरवद्विषमिश्रिताङ्गयेति ध्वन्यमानोऽर्थ। इति = हेतो मूर्च्छा मत्तता च कलयसीत्यनेन सम्बन्ध। इतरथा हेतुमाश्रयति-पन्नगकुलमूलस्य = सर्पान्वयप्रसूते। शेषनागस्य = अनन्तस्य। गरला-वलीढै = विषमिश्रै। प्रतिरोमकुहरम् = सर्वेषु लोमच्छिद्रेषु। रञ्जित = व्याप्त। काञ्चन = अनिर्वाच्याम्। केवलानुभवैकशरणाम्। पित्रा समुद्रेण वलयितस्य हरे तत्कन्यकया रमण मत्तताकृत्यान्नातिरिच्यते। अनल्पजल्पकल्प-नाम् = बहुविधभाषणरचनाम्। सर्वत्रैवासि, विभुत्वात्। सर्वान् पश्यसि =

वाले शेषनाग पर सो रहे हो, तो क्या ससार के समाप्त हो जाने पर ही तुम्हारी नींद टूटेगी ? अथवा उसी हालाहल (विष) और महामद्य (वारुणी) की बहिन कनकाङ्गिनी (१ सोने के से अगो वाली अर्थात् गौरवर्ण की और २ धतूरे के समान विषपूर्ण अगोवाली) लक्ष्मी से आलिङ्गित होने के कारण, और सर्पकुल के मूल शेषनाग के विषपूर्ण निश्वासो से सारे रोमकूपो के व्याप्त हो जाने के कारण तुम्हे मूर्च्छा आ गई है, और तुम मतवाले हो गये हो, अन्यथा चारो ओर समुद्र से घिरे होते हुए भी समुद्र की कन्या के साथ (उसके पिता के सामने) रमण कैसे करते ? लेकिन नही ऐसा नही है। मेरी, बढ चढ कर की गई बकवाद की कल्पना को क्षमा करो। तुम सभी जगह हो सभी

सर्वेषा दयसे इति सन्त्यत्र परस्सहस्राणा प्रामाणिकाना वचनानि। येषु विश्वस्य तव सत्ताऽङ्गीक्रियते, कथ तेष्वेव विश्वस्य तवेदृग्गुणिता नाङ्गीकरिष्यते ? परमहह ! पश्यन्नपि विदन्नपि न दयसे। हन्त ! कि कथ्यते, जगदीश्वरोऽसि ! तत् किं गजोद्धार-धावन-स्थगितोऽसि ? यन्न धावसि। विप्र-रावण-हनन-वनवास-व्रीडितोऽसि ? यन्नावतरसि। कसच्छेदनायास-स्मरणेन वा तूष्णीकोऽसि ? चिरन्तन इति वली-

सर्वद्रष्टृत्वात्। सर्व वेत्सि, सर्वज्ञत्वात्। सर्वेषा दयसे, "अधीगर्थदयेषाम्" इति षष्ठी। अत्र = विभुत्वसर्वज्ञत्वादिगुणगणनिलयस्य भगवत सत्तायाम्। प्रामाणिकानाम् = वेदादीनाम्। नाङ्गीकरिष्यते, यदि वेदादिनिवेद्यमाना तदीया सत्ता सती, तर्हि तन्निवेद्यमानास्तदीया गुणा अपि सन्त्येवेति तात्पर्यम्। जगदीश्वरोऽसि = महाप्रभुरसि। महाप्रभुत्वादेव स्वतन्त्रोऽसीत्यत एव वचनानर्होऽसीति व्यङ्ग्यपरम्परा।

पाणिनेन नदी गङ्गा यमुना न स्थली नदी।
प्रभु प्रभुत्वमापन्न स्वातन्त्र्यमवलम्बते॥

इत्यादिष्वयमर्था व्यक्तीकृत। गजोद्धारे = हस्तिरक्षायाम्। धावनेन = शीघ्रगत्या, स्थगित = खिन्न। विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, रावणस्य = पौलस्त्यस्य, हननेन वनवासेन च व्रीडित = लज्जित। ब्रह्महत्या हि पर व्रीटा-

को देखते हो, सब कुछ जानते हो, और सभी पर दया करते हो, यह सिद्ध करने के लिये हजारो आप्त वाक्य (वेदादि) मिलते है। जिन आप्त वाक्यो मे विश्वास कर के तुम्हारी सत्ता स्वीकार की जाती है, उन्ही मे विश्वास कर के तुम्हारे ये गुण भी कैसे न स्वीकार किये जाये ? किन्तु हा ! देखते हुए भी, जानते हुए भी, दया नही करते। क्या कहे, सारे ससार के ईश्वर हो। (महाप्रभु और समर्थ स्वामी हो इसलिये कुछ कहा नही जाता) दौडते क्यो नही ? क्या गज का उद्धार करने के लिये दोडने से थक गये हो ? अवतार क्यो नही लेते ? क्या रावण को मारने (ब्रह्महत्या) और वनवास से लज्जित हो ? क्या कस को मारने मे हुए परिश्रम का स्मरण हो जाने से चुप हो गये हो ?

पलित-विग्रहो वा सम्पन्नोऽसि, न ज्ञायते तत्त्वम् । यादृश तादृशमेव त्वा वय नमस्कुर्म ।

हा विश्वम्भर ! काश्या विश्वनाथ-मन्दिर धूलीकृतमेतै । हा माधव ! तत्रैव बिन्दुमाधव-मन्दिरस्य बिन्दुमात्रमपि चिह्न न प्राप्यते ! हा गोविन्द ! तव विहार-भूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्द-देव-मन्दिरस्यापि इष्टकावृन्द स्वच्छन्द भषकैराक्रम्यते । प्रभो ! दयस्व, दयस्व, कदा तव कौमोदकी मोद जनयिष्यति ? कदा तव चापस्ताप विलय यापयिष्यति ? कदा तव नन्दको नन्दयिष्यति ? कदा तव च...

जनिका । **चिरन्तन** =पुरातन । **वलीपलितविग्रह** =जराजायमान-स्वैत्योपलक्षितदेह । न ज्ञायते तत्त्वम्, अतिदुरूहत्वाद् भगवन्मायाया ।

इष्टका =अश्मविशेषा । "ईंट" इति भाषायाम् । क्षिपकादिगणपाठादि-त्वाभाव । **भषकै** =कुक्कुरतुल्यैर्म्लेच्छै । **कौमोदकी**=भगवद्गदा । **चाप** = शार्ङ्गम् । **नन्दक** =भगवत्खड्ग । **चक्रम्**=सहस्रार सुदर्शन । **दुष्टचक्रम्**= दुष्टसमूहम् । अत्र "अहह कथमिव समायात" इत्यारभ्य करुणरसप्रवाह । भग्नमन्दिरप्रजादय आलम्बनविभावा धर्मध्वसन-मूर्तिखण्डन-भारतीयपीडनादय

या पुराण पुरुष होने के कारण वृद्धावस्था के कारण तुम्हारे बाल पक कर सफेद हो गये है ? तुम्हारा तत्त्व समझ मे नही आता । तुम जैसे भी हो, उसी रूप मे हम तुम्हे प्रणाम करते है ।

हा विश्वम्भर ! काशी के विश्वनाथ मन्दिर को इन म्लेच्छो ने धूल मे मिला दिया, हा माधव ! वही (काशी) के बिन्दुमाधव मन्दिर का अब बिन्दुमात्र चिह्न भी नही मिलता, हा गोविन्द ! तुम्हारी क्रीडास्थली वृन्दावन के गोविन्द देव मन्दिर की ईंटो पर स्वतन्त्रतापूर्वक कुत्ते विचरण कर रहे है, प्रभो ! दया करो, दया करो । तुम्हारी कौमोदकी नामक गदा हमे कब मुदित करेगी ? तुम्हारा शार्ङ्ग नामक धनुष हमारे तापो को कब समाप्त करेगा ? तुम्हारा नन्दक नामक खड्ग हमे कब आनन्दित करेगा ? तुम्हारा सुदर्शन चक्र

दुष्टचक्र चङ्क्रमिष्यते ? मा स्मास्मदपराधान् स्मार्षी, पाहि, पाहि, भगवन् ! पाहि"

एव भावयत एव तस्यान्तर्दु खमिव जलरूपेण द्रावयन्ती, कपोल क्षालयन्ती, श्मश्वग्राद् बिन्दूभूय कूर्चं सिञ्चन्ती, भूतलमाविल चकाराश्रु-जल-धारा।

त तथा ध्याननिष्ठमिव यवन-यतिं मन्यमाना बहवोऽध्वन्या परितोऽवातिष्ठन्त। एक ऊचे—महानेष महात्मा, अपर उवाच-अत एव भगवत्स्मरणेन पुलकितोऽस्ति, अन्योऽभाषत—ईदृश एव विचित्रो भवत्यानन्द परमात्मस्मरणत . तथेतरोऽब्रूत—तर्हि सर्वैस्तूष्णीकैरेव

उद्दीपनविभावा। दैवोपालम्भनि श्वासवैवर्ण्यादयोऽनुभावा। निर्वेदग्लान्यादयो व्यङ्ग्यतया स्थिता व्यभिचारिण। एतैरभिव्यक्तोऽसौ चर्वणता गत।

तदास्वादनिरतदशा दर्शयति—एव भावयत इति। भावयत = भावनया चित्तगोचरता नयत। कूर्चम् = दाढिका।

ध्याननिष्ठम्=समाधिनिरतम्। अध्वन्या =पथिका। परितोऽवातिष्ठन्त = परिवारितवन्त। "समवप्रवि" इत्यात्मनेपदम्। पुलकित = रोमाञ्चित।

दुष्टो के समूह का सहार कब करेगा ? हमारे अपराधो को याद न करो, हमारी गलतियाँ भूल जाओ, रक्षा करो, रक्षा करो, भगवन् ! रक्षा करो।"

इस प्रकार की भावना करते हुए ही उस (माल्यश्रीक) के आँसुओ की धारा ने मानो उसके आन्तरिक दु ख को जल के रूप मे बहाते हुए, उसके कपोलो को धोते हुए, मूछो के अग्रभाग से बिन्दुरूप मे परिणत हो कर, उसकी दाढी को भिगोते हुए, पृथिवी को गीला कर दिया।

इस प्रकार ध्यानमग्न से माल्यश्रीक को, मुसलमान फकीर समझकर, अनेक राहगीरो ने घेर लिया। उनमे से एक ने कहा, 'यह कोई बहुत बडा महात्मा है,' दूसरा बोला, 'इसीलिये भगवान् का स्मरण करके पुलकित हो गया है,' अन्य ने कहा, 'भगवान् का स्मरण करने से इसी प्रकार से अद्भुत आनन्द की

स्थेय न स्याद् यथा ध्यानभङ्ग एतस्य"—इति मन्दस्वरेणाऽऽलपता-मेवैतेषां तस्य ध्यानभङ्गो जात । नेत्रे उन्मील्य च भावना-सहस्रैर्येषु वर्धित-महामर्ष-ज्वाला-जटाल आसीत्, तानेवापश्यत् लशुन-गन्धै श्वास-प्रश्वासैर्वमिमुत्तेजयत परिपन्थिपथिकान् । ततो द्विगुणितकोपो ज्वलदङ्गार-प्रतिम-नयनो वाद्यमुत्तोल्य सहुङ्कार ताडयितुमिवो-दस्थात् । तेषु चेतस्तत पलायन-परेषु शास्तिखान-भवनान्निवृत्तो महादेव-पण्डितोऽप्यकस्मादुपस्थाय "किमिव स्वामिन् ! किमिति कुपितोऽसि" इति पर्यप्राक्षीत् । स तु तमेव ताडयितुमिव वाद्यमुदनू-

भावनासहस्रै =बहुविधविचारणाभि । येषु =यवनेषु । वर्द्धितस्य =वृद्धि प्रापितस्य, महामर्षस्य =महाक्रोधस्य, ज्वालाभि =अर्चिभि, जटाल = सवलित । लशुनस्य =रसोनस्य गन्धो येषु तै । वमिम् =उद्गीर्णिम् । उत्ते-जयत =उद्दीपयत । परिपन्थि-पथिकान् =सपत्नाध्वनीनान् । ज्वलता = दीप्यता, अङ्गारेण प्रतिमा =सादृश्यम् ययोस्तादृशे । उत्तोल्य =उत्थाप्य । सहुङ्कारम् =हुशब्द-सहितम् । ताडयितुम् =प्रहर्तुम् । अकस्मात् =सहसा । उपस्थाय =समीपमागत्य । पर्य्यप्राक्षीत् =पृष्टवान् । तमेव =महादेव-

अनुभूति होती,' और किसी दूसरे ने कहा, 'तो सब लोग शान्त रहो, जिससे इनका ध्यान न भङ्ग होने पाये' । ये लोग आपस मे धीरे धीरे यही बात कर रहे थे कि माल्यश्रीक का ध्यानभङ्ग हो गया । आँखें खोलने पर, उन्होने, सामने उन्ही शत्रुओ को देखा जिनके सम्बन्ध मे हजारो प्रकार की बाते सोचकर, जिनको लक्ष्य बना कर, उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, और जो लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध से युक्त श्वास–प्रश्वासो से वमन को उत्तेजित कर रहे थे (अर्थात्-जिनके श्वास–प्रश्वास से लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध आ रही थी कि समीपस्थ व्यक्ति को उबकाई आने लगे और वमन हो जाये), उन्हे देखकर माल्यश्रीक का क्रोध दूना हो गया और आँखे जलते हुए अङ्गारो की तरह लाल हो गई । वह बाजा उठाकर, हुकारता हुआ, इस प्रकार उठा मानो मारने को उठा हो । राहगीरो के इधर-उधर भाग जाने पर, शाइस्ता खाँ के महल से लौटे महादेव पण्डित ने भी एकाएक आकर, 'क्या है बाबा, क्यो नाराज हो रहे हो ?' यह

तुलत् । महादेवस्तु भीत इव पलायित काञ्चन महान्धकारावृत-वीथि प्रविष्ट, तत्पश्चादेव चायमपि तस्मिन्नेवान्धकारसमुद्रे निमग्न ।

प्रधान-मार्गमपहाय ध्वान्त-मार्गेण सानुसन्धान प्रतिनिवर्त्तनमेव महादेवस्याभीष्टमासीत्, तदेव च मुद्रयाऽनयाऽनायासेन सम्पन्नम् ।

ततस्तु वीथिकातो वीथिकाम्, मार्गान्मार्गमुल्लङ्घमान सपद्येव दूरमायात । अथ महादेव स्थित्वा कञ्चित् काल यवनयतिमपेक्षाञ्चकार । तस्मिन्ननागच्छति चान्धकारे 'मार्गभ्रष्टोऽयमन्यतो गत ' इति निश्चित्य, "आस्ता तावत् , सङ्केतितस्थले तेन सह योक्ष्यामि"

पण्डितमेव । अन्योन्यानभिज्ञानबोधनायेदम्, भीत इव, इदमपि प्रदर्शनफलकम् । **महता** = प्रबलेन, **अन्धकारेण** = तमसा, **आवृताम्** = सञ्छन्नाम् **वीथिम्** = मार्गम् । "वीथि पङ्क्तौ गृहाङ्गे च रूपकान्तरवर्त्मनोरिति" मेदिनी ।

प्रधानमार्गम् = राजपथम् । **ध्वान्तमार्गेण** = अन्धकाराच्छन्नेन पथा । **सानुसन्धानम्** = गम्भीरावलोकनपुरस्सरम् । **मुद्रयाऽनया** = अनेन प्रकारेण व्याजात्मना । **अनायासेन** = निष्परिश्रमम् ।

यवनयतिम् = म्लेच्छभिक्षुवेष माल्यश्रीकम् । **अनागच्छति** = अप्राप्नुवति । शत्रन्तम् । **योक्ष्यामि** = युक्तो भविष्यामि ।

पूछा । उस फकीर ने बाजा कुछ इस प्रकार उठाया मानो महादेव को ही मारना चाहता हो । महादेव डरा हुआ सा भागा और किसी घने अँधेरे से ढकी गली मे घुस गया । वह फकीर भी उसके पीछे ही उसी अँधेरे के समुद्र मे डूब गया ।

महादेव मुख्य सडक छोडकर अँधेरे रास्ते से रास्ते को खूब अच्छी तरह देखता हुआ लौटना चाहता था, और उसकी यह इच्छा, फकीर की मुद्रा को देखकर भागने के बहाने से अनायास ही पूरी हो गई ।

उसके बाद एक गली से दूसरी गली, एक रास्ते से दूसरे रास्ते होता हुआ यवनभिक्षु (माल्यश्रीक) दूर निकल आया । महादेव ने रुक कर कुछ देर मुसलमान–फकीर (का वेष धारण करने वाले माल्यश्रीक) की प्रतीक्षा की और जब वह नही आया तो उन्होने यह समझा कि वह निश्चय ही रास्ता भूल कर किसी दूसरी ओर निकल गया है । महादेव मन मे 'अच्छा, अब उससे पूर्व-निश्चित

इति मनस्येवावधार्य, निर्भयोऽन्धकार एव नगरस्य वर्त्तमानदशामवलोकयन्निव प्रचलित ।"

अस्मिन् समये प्रायश एतद्वीथि-वासिन सर्वेऽपि सुप्ता, द्वारो रुद्धा, स्थाने स्थाने विचरन्त प्रहरिणो वा तदुच्चाह्वानोद्बुद्धा अट्टालिकासु पिञ्जरावलम्बिता शुकसारिकादयो वा क्वचित् क्वचित् शब्दायन्ते। सर्वत सरणिषु ससणत्कार समीरण सरति।

गाढोऽयमन्धकार कज्जलस्य रेणु-पटलमिव सर्वत उड्डीयते। गगन मसीमिव वर्षति। महादेवस्तु परिचित-सकल-पुण्यनगर-मार्गजाल, वीथिकान्तर प्रविष्ट । पूर्वं पूर्णतया पर्य्यटितचरमिद नगरमिति अन्धतमसेऽपि सुखेन पर्य्यटितुमशक्नत्। तत्रैकस्मिन् गृहे, गवाक्षे दीप एको मन्द मन्द ज्वलति। तस्मिन्नन्धतमसे तत एव गच्छन्,

द्वार = द्वाराणि। तेषाम् = प्रहरिणाम्, उच्चैन = तारेण, आह्वानेन = आकारणेन, उद्बुद्धा = जागृता । सरणिषु = मार्गेषु। ससणत्कारम् = सणदित्यनुक्रियमाणशब्देन सह। समीरण = वायु । सरति = गच्छति।

कज्जलस्य = अञ्जनस्य। रेणुपटलम् = धूलिनिकर । इवेत्युत्प्रेक्षा। मसीमिवेत्यत्रापि। परिचितम् = पूर्वज्ञातम्, सकलम् = समस्तम्, पुण्यनगरस्य मार्गजालम् = वर्त्मसमूहो येन स । अन्धतमसे = गाढान्धकारे। पर्य्यटितुमशकत् = भ्रमितु समर्थोऽभूत्। गवाक्षे = वातायने। ज्वलति स्मेत्यध्याहृत्यदृशेषु स्थलेषु व्याख्येयम्। तात्कालिकी वर्तमानतामाश्रित्य वा

सङ्केतित स्थान पर ही मिलूँगा' यह सोचकर, निर्भय होकर, अँधेरे मे ही, नगर की वर्तमान दशा देखते हुए से चल दिये।

इस समय इस गली के प्राय सभी निवासी सोये हुए है, दरवाजे बन्द है, कही कही पहरा दे रहे पहरेदारो, या उनकी तेज आवाज सुनकर जग जाने वाले, अट्टालिकाओ मे पिजडो पर टँगे शुक-सारिकादि पक्षियो के स्वर कभी-कभी सुनाई पड जाते है। सभी ओर गलियो मे सन-सन करती हवा चल रही है।

घना अन्धकार सब ओर काजल की धूल सी उडा रहा है। आकाश स्याही की वर्षा सी कर रहा है। पूनानगर के [illegible]रे गली-कूचो मे सुपरिचित महादेव एक दूसरी गली मे प्रविष्ट हुए। वे इस नगर को पहले ही कई बार खूब अच्छी त[illegible]ह घूम कर देख चुके थे। अत घने अँधेरे मे भी आसानी से घूमते रहे। इस गली के ए[illegible] मकान मे झरोखे (खिडकी) पर रखा एक दीपक मन्द-मन्द जल

तद्द्वार-सम्मुख-द्वार-वेदिकाया पुञ्जीभूतमन्धकारमिव, मूर्छित भल्लूकमिव, सुप्त वायस-समूहमिव, राशीकृत कृष्ण-मर्प-मङ्घातमिव, आकुञ्च्य स्थापित कृष्ण-कम्बलमिव च किमपि श्यामश्याममद्राक्षीत्। निकट आगत्य निपुण निरीक्षमाणश्च दृष्टवान्, यदेक प्रहरी स्वपिति, दिल्लीश-नामाङ्कित-रजतपट्टिका-भूषित तस्योष्णीपमेकतोऽर्द्धस्खलित विशीर्यते। खड्ग शिरस समीपे दूरत एव स्थापितोऽस्ति, उपानदेका वेदिका-प्रान्त-लम्बित-पाद-च्युता अध पतिता। मुख-निर्गताभिर्लालाभि सिक्तो बाहु, धूलि-धूसरितानि

प्रयोग। एवमन्यत्रापि। यथा पञ्चतन्त्रे "अस्ति गोदावरीतीरे विशाल शाल्मलीतरुरि' त्यादौ। अस्तीत्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकस्याव्ययस्य सर्वकालप्रयोगविषयस्य सत्त्वे तु तत्र निर्वाहेऽप्यत्र प्रकृतोक्तरीत्यैव कार्यमिति वेदितव्यम्। तस्मिन्नवतमसे किमपि श्यामश्याममद्राक्षीदिति सम्बन्ध। **अवतमसे** = क्षीणान्धकारे, दीपप्रकाशात्। उत्प्रेक्षते—**पुञ्जीभूतमन्धकारमिव**। **मूर्च्छितम्** = विसज्ञम्। **आकुञ्च्य** = मोटयित्वा। दिल्लीशनाम्नाऽङ्किता रजतनिर्मिता। **पट्टिका** = "पेटी" इति भाषा, तया भूपितम्। **एकत** = एकस्मिन् पार्श्वे। सार्वविभक्तिकस्तसि। **अर्धस्खलितम्** = अर्धभ्रष्टम्। **विशीर्यते** = विकीर्यते। शिथिलबन्धन भवतीति यावत्। **उपानत्** = पादुका। "अथ पादुका। पादूरुपानत् स्त्री"त्यमर। **वेदिकाया** = उपवेशस्थानस्य, **प्रान्ते**=निम्नभागे, लम्बितात्। **पादात्**=अङ्घ्रे, **च्युता**। = **पतिता**। **लालाभि** =सृणिकाभि। "सृणिका

रहा था। उस हल्के अँधेरे मे, उधर से ही जाते हुए महादेव ने उस दरवाजे के सामने चबूतरे पर पुञ्जीभूत अन्धकारसी, मूच्छित रीछसी, सोए हुए कौओ के झुण्डसी, काले सर्पो के एकत्रीकृत समूहसी और मोडकर रखे हुए काले कम्बलसी कोई काली चीज देखी। महादेव ने निकट जाकर ध्यान देने पर देखा कि एक प्रहरी सो रहा है और उसकी अधखुली पगडी एक ओर पडी है। पगडी पर जो रजत-पट्टिका लगी थी, उस पर दिल्ली के सुल्तान का नाम अङ्कित था। तलवार सिर के पास ही अलग रखी थी। उसका एक पैर चबूतरे के बाहर लटक रहा था और उस पैरका जता नीचे गिर गया था। उसके मुंह से निकली

नील-वसनानि च स्वेदैराक्लिद्यन्ते। तदालोक्य किञ्चिद्धसन्निव महादेवो-"मूर्खोऽय यातैक-यामायामेव यामिन्या सुप्त'—इति मनस्येवोक्त्वा शनैस्तस्योष्णीष खड्ग चापजहार।

ततश्च दक्षिणतो वणिग्वीथी प्रविश्य यावत् किञ्चित् प्रयाति, तावत् पृष्ठत ममश्रावि कश्चित् पादध्वनि। दत्तकर्णोऽवधार्य च मशयितवान् यत् 'किमेतदपहरन्त मा कोऽप्यद्राक्षीत्?'

अथ दिल्लीश-नामाङ्कित-रजत-पट्टिकामादाय कक्ष-गुटिकाया सस्थाप्य, उष्णीषिकामेतामेकस्या गवाक्षिकायामुत्क्षिप्य खड्ग कोषान्निस्सार्य स्वयमेकस्मिन् निविडान्धकारे कोणे परिपन्थिन पन्थान-

---

स्यन्दिनी लाले"त्यमर। धूलिधूसरितानि = रजोमिश्राणि। स्वेदै = घमजलै। आक्लिद्यन्ते = आर्द्रीक्रियन्ते। यातैकयामायाम् = व्यतीतैकप्रहरायाम्।

वणिग्वीथी = वणिजामावासमार्गे। दत्तकर्ण = अवहितश्रोत्र। अपहरन्तम् = मुष्णन्तम्। अद्राक्षीत् = दृष्टवान्।

कक्षगुटिकायाम् = बाहुमूलस्थापितलघुपोटलिकायाम्। गवाक्षिकायाम् = वातायनिकायाम्। कोषात् = असिबन्धात्। निविडोऽन्धकारो यस्मिन् तादृशे = घनतमसि। कोणे = गृहैकदेशे, अवेक्षमाण = प्रतीक्षा कुर्वन्।

लार से उसका हाथ गीला हो रहा था और उसके धूलधूसरित गन्दे काले कपडे पसीने से गीले हो रहे थे। उसे देखकर कुछ हँसते हुए से महादेव ने मन ही मन 'यह मूर्ख एक पहर रात बीतते ही सो गया' कह कर, धीरे से उसकी पगडी और तलवार उठा ली।

उसके बाद दाहिनी ओर की वणिको की गली मे प्रवेश करके कुछ दूर चलते ही महादेव को पीछे से किसी की पदचाप सुनाइ दी। कान लगा कर ध्यान देकर, उन्होने सदेह किया कि 'इसकी पगडी और तलवार चराते हुए मुझे किसी ने देखा तो नही हे।'

तदनन्तर वे उस रजतपट्टिका को, जिस पर दिल्ली सुल्तान का नाम अङ्कित था, लेकर काँख (बगल) मे दबी पोटली मे रख कर, उस पगडी को एक खिडकी मे फेक कर, म्यान से तलवार खीच कर, उस घने अन्धकार मे, एक कोने मे, दुश्मन के आने की राह देखते हुए खडे हो गये

तद्द्वार-सम्मुख-द्वार-वेदिकाया पुञ्जीभूतमन्धकारमिव, मूर्छित भल्लूकमिव, सुप्त वायस-समूहमिव, राशीकृत कृष्ण-सर्प-सङ्घातमिव, आकुञ्च्य स्थापित कृष्ण-कम्बलमिव च किमपि श्यामश्याममद्राक्षीत्। निकट आगत्य निपुण निरीक्षमाणश्च दृष्टवान्, यदेक प्रहरी स्वपिति, दिल्लीश-नामाङ्कित-रजतपट्टिका-भूषित तस्योष्णीषमेकतोऽर्द्धस्खलित विशीर्यते। खड्ग शिरस समीपे दूरत एव स्थापितोऽस्ति, उपानदेका वेदिका-प्रान्त-लम्बित-पाद-च्युता अध पतिता। मुख-निर्गताभिर्लालाभि सिक्तो बाहु, धूलि-धूसरितानि

प्रयोग। एवमन्यत्रापि। यथा पञ्चतन्त्रे "अस्ति गोदावरीतीरे विशाल शाल्मलीतरुरि' त्यादौ। अस्तीत्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकस्याव्ययस्य सर्वकालप्रयोगविषयस्य सत्त्वे तु तत्र निर्वाहेऽप्यत्र प्रकृतोक्तरीत्यैव कार्यमिति वेदितव्यम्। तस्मिन्नवतमसे किमपि श्यामश्याममद्राक्षीदिति सम्बन्ध। **अवतमसे** = क्षीणान्धकारे, दीपप्रकाशात्। उत्प्रेक्षते—**पुञ्जीभूतमन्धकारमिव**। **मूर्च्छितम्** = विसज्ञम्। **आकुञ्च्य** = मोटयित्वा। दिल्लीशनाम्नाऽङ्किता रजतनिर्मिता। **पट्टिका** = "पेटी" इति भाषा, तया भूषितम्। **एकत** = एकस्मिन् पार्श्वे। सार्वविभक्तिकस्तसि। **अर्धस्खलितम्** = अर्धभ्रष्टम्। **विशीर्यते** = विकीयते। शिथिलबन्धन भवतीति यावत्। **उपानत्** = पादुका। "अथ पादुका। पादूरुपानत् स्त्री"त्यमर। **वेदिकाया** = उपवेशस्थानस्य, **प्रान्ते**=निम्नभागे, **लम्बितात्**। **पादात्**=अङ्घ्रे, **च्युता**। = **पतिता**। **लालाभि** =सृणिकाभि। "सृणिका

रहा था। उस हल्के अँधेरे मे, उधर से ही जाते हुए महादेव ने उस दरवाजे के सामने चबूतरे पर पुञ्जीभूत अन्धकारसी, मूर्च्छित रीछसी, सोए हुए कौओ के झुण्डसी, काले सर्पो के एकत्रीकृत समूहसी और मोडकर रखे हुए काले कम्बलसी कोई काली चीज देखी। महादेव ने निकट जाकर ध्यान देने पर देखा कि एक प्रहरी सो रहा है और उसकी अधखुली पगडी एक ओर पडी है। पगडी पर जो रजत-पट्टिका लगी थी, उस पर दिल्ली के सुल्तान का नाम अङ्कित था। तलवार सिर के पास ही अलग रखी थी। उसका एक पैर चबूतरे के बाहर लटक रहा था और उस पैरका जूता नीचे गिर गया था। उसके मुंह से निकली

नील-वसनानि च स्वेदैराक्लिद्यन्ते। तदालोक्य किञ्चिद्धसन्निव महादेवो—"मूर्खोऽय यातैक-यामायामेव यामिन्या सुप्त'—इति मनस्येवोक्त्वा शनैस्तस्योष्णीष खड्ग चापजहार।

ततश्च दक्षिणतो वणिग्वीथी प्रविश्य यावत् किञ्चित् प्रयाति, तावत् पृष्ठत समश्रावि कश्चित् पादध्वनि। दत्तकर्णोऽवधार्य च सशयितवान् यत् 'किमेतदपहरन्त मा कोऽप्यद्राक्षीत्?'

अथ दिल्लीश-नामाङ्कित-रजत-पट्टिकामादाय कक्ष-गुटिकाया सस्थाप्य, उष्णीषिकामेतामेकस्या गवाक्षिकायामुत्क्षिप्य खड्ग कोषान्निस्सार्य स्वयमेकस्मिन् निविडान्धकारे कोणे परिपन्थिन पन्थान-

---

स्यन्दिनी लाले"त्यमर। धूलिधूसरितानि = रजोमिश्राणि। स्वेदै = घर्मजलै। आक्लिद्यन्ते = आर्द्रीक्रियन्ते। यातैकयामायाम् = व्यतीतैकप्रहरायाम्।

वणिग्वीथी = वणिजामावासमार्गे। दत्तकर्ण = अवहितश्रोत्र। अपहरन्तम् = मुष्णन्तम्। अद्राक्षीत् = दृष्टवान्।

कक्षगुटिकायाम् = बाहुमूलस्थापितलघुपोटलिकायाम्। गवाक्षिकायाम् = वातायनिकायाम्। कोषात् = असिबन्धात्। निविडोऽन्धकारो यस्मिन् तादृशे = घनतमसि। कोणे = गृहैकदेशे, अवेक्षमाण = प्रतीक्षा कुर्वन्।

लार मे उसका हाथ गीला हो रहा था और उसके धूलधूसरित गन्दे काले कपडे पसीने से गीले हो रहे थे। उसे देखकर कुछ हँसते हुए से महादेव ने मन ही मन 'यह मूर्ख एक पहर रात बीतते ही सो गया' कह कर, धीरे से उसकी पगडी और तलवार उठा ली।

उसके बाद दाहिनी ओर की वणिको की गली मे प्रवेश करके कुछ दूर चलते ही महादेव को पीछे से किसी की पदचाप सुनाइ दी। कान लगा कर ध्यान देकर, उन्होने सदेह किया कि 'इसकी पगडी और तलवार चराते हुए मुझे किसी ने देखा तो नही है।'

तदनन्तर वे उस रजतपट्टिका को, जिस पर दिल्ली सुल्तान का नाम अङ्कित था, लेकर काँख (बगल) मे दबी पोटली मे रख कर, उस पगडी को एक खिडकी मे फेंक कर, म्यान से तलवार खींच कर, उस घने अन्धकार मे, एक कोने मे, दुश्मन के आने की राह देखते हुए खडे हो गये

मवेक्षमाण समस्थित। ततो मुहूर्त्त यावन्नाश्रूयत कोऽपि ध्वनि, निपुण निरीक्षमाणेनापि च नाऽऽलोकि कश्चन जन।

ततस्तु नैज एव भ्रम इति विभाव्य पुनरग्रे प्रातिष्ठत, न्यविशत च वीथिकातो वीथिकाम्। तावदकस्माद् वामत उपवीथिकायामेव कस्यचन जागरूकस्य, 'जाग्रत! भो जाग्रत! सन्तमसमिद निबिडम्'' इत्याद्याम्रेड्य वदतस्तारध्वनिमश्रौषीत्। मा स्म मामीक्षिष्टेति च दक्षत एकामुपवीथिका प्राविक्षत्, किन्तु दैवाद् यामिकोऽप्येष घुणाक्षर-न्यायेन तामेव प्रविष्ट।

महादेवस्तु, अग्रे रुद्धो मार्ग, पश्चाच्चोच्चैश्चीत्कुर्वन् यामिकहतक समायातीति कान्दिशीक, मार्गान्तरमलभमान, उच्चामेका

समस्थित = स्थितोऽभूत्। नैज = स्वीय। भ्रम = भ्रान्ति। न्यविशत = प्रविष्ट। उपवीथिकायाम् = उपपदव्याम्। जागरूकस्य = जागरणशीलस्य। आम्रेड्य = द्विस्त्रिरुद्घुष्य। तारध्वनिम् = उच्चै शब्दम्। मा स्म मामीक्षिष्ट = मा स्म मामवलोकयत्, "माङि लुङ्"। दैवात् = अदृष्टात्।
चीत्कुर्वन् = चीत्कार कुर्वन्। कान्दिशीक = भयद्रुत। मार्गान्तरम् =

जब थोडी देर तक कोई आवाज नही सुनाई दी और ध्यान से देखने पर भी कोई आदमी नही दिखाई दिया तो मुझे ही भ्रम हो गया था' यह सोचकर वे आगे बढ गये और एक गली से दूसरी गली मे प्रविष्ट हो गये। इसी बीच मे एकाएक बाई ओर की गली से 'जागते रहो, बडा घना अँधेरा है' इत्यादि पदसमूह को बार-बार दुहराने वाले पहरेदार का उच्च स्वर सुनाई दिया। महादेव उस आवाज को सुनकर, इस आशङ्का से कि वह पहरेदार उन्हे देख न ले, दाहिनी ओर की एक गली मे प्रविष्ट हो गये, किन्तु सयोग से वह पहरेदार भी घुणाक्षर न्याय से उसी गली मे आ गया।

महादेव ने यह देखकर कि (यह गली आगे जाकर समाप्त हो जाती है अर्थात्) आगे रास्ता नही है और पीछे से यह पहरेदार जोर-जोर चिल्लाता हुआ चला आ रहा है, भागना चाहा, पर कोई दूसरा रास्ता न मिलने पर वे

वेदिकामारुह्य, निष्कोष-निस्त्रिंश-हस्त सतर्क समतिष्ठत। तावत् प्रहरी तु तथैवाऽऽम्रेडमाम्रेड तार-स्वरेण रटन्, पार्श्वस्थ-गृहिणा च कपट-क्षुत-डक्कार-च्छिक्का शृण्वन्, कर-कलित-काच-मञ्जूषाऽन्त स्थ-दीप-प्रकाशेन पादाग्रस्थ-हस्त-चतुष्टयमात्रपरिमाणामिव भुव पश्यन् अलसनयन, "कदेय होरा समाप्नुयात्? कदा वा गत्वा शयीय?"—इतीव चिन्तयन् महादेवाध्युषित-वेदिकाया दूरादेव निवृत्त। महादेवस्तु 'नैतस्य जीवनमधुना समाप्तम्, चिरायुरेष' इति मनस्येव निर्धारयन्, पुनर्मार्गान्तर प्रविश्य, झटिति आकुलाभ्या-

---

अन्य पन्थानम्। निष्कोषनिस्त्रिंशहस्त = नग्नखड्गकर। सतर्क = सावधान। पार्श्वस्थगृहिणाम् = समीपस्थगृहस्थानाम्। कपटेन = व्याजेन, क्षुतादय -क्षुतम् = कास। "खासना" इति हिन्दी। छिक्का = "छीक" इति भाषायाम्। करे = हस्ते, कलिता = धारिता, या काचमञ्जूषा = रक्तवर्त्तिका, तदन्त स्थितस्य = तदन्तराल-वर्तमानस्य दीपस्य, प्रकाशेन। पादाग्रस्थम् = पुरो विद्यमानम्, हस्तचतुष्टयमात्रपरिमाण यस्यास्तादृशीम् = चतुर्हस्तमिताम्। अलसे = निद्रातुरे, नयने यस्य स। होरा = घण्टा। निर्दिष्टकाल इत्यर्थ। समाप्नुयात् = समाप्ति गच्छेत्, शयीय = स्वाप कुर्याम्। न

एक ऊँचे चबूतरे पर चढकर, हाथ मे नगी तलवार लेकर सावधान होकर खडे हो गये। उसी प्रकार बार-बार उच्चस्वर से पुकारता हुआ, समीप के घरो मे रहने वाले लोगो की खाँसने, डकारने और छीकने की बनावटी आवाजे (जिन आवाजो के बहाने वे उस पहरेदार को अपने जागते रहने की प्रतीति कराते थे) सुनता हुआ, हाथ मे ली हुई काचमञ्जूषा (लालटेन) के अन्दर जल रहे दीपक के प्रकाश मे अपने पैरो के पास की केवल चार हाथ भूमि को देखता हुआ, उनीदे नेत्रो वाला, 'कब घण्टा बीते (मेरी ड्यूटी समाप्त हो) और मै जाकर सोऊँ' यह सोचता हुआ सा वह पहरेदार भी जिस चबूतरे पर महादेव खडे थे, उसके पास न जाकर, दूर से ही लौट गया।

महादेव मन ही मन "इसका जीवन अभी समाप्त नही हुआ है, यह दीर्घायु है" ऐसा सोचते हुए, फिर दूसरे रास्ते मे प्रविष्ट होकर, तत्क्षण,

मिव पद्भ्या गच्छस्तडागमेकमाससाद। यत्र चोच्चावचाया भुवि भग्न-मन्दिरेष्वेक शिवमन्दिरमिव प्रविश्य, "अस्ति कश्चिदत्र सन्यासी ?" इत्यपृच्छत्। ततस्तु तस्मादेक स एव यवन-भिक्षु, अपरौ च द्वौ सन्यासिनौ निर्गतौ। तैश्च सह तत्रैवैकस्मिन् पाषाणे उपविश्य बहुश आलप्य एकेनैव समालपत्—

महा०—उद्वाह कदा भविता ?

सन्या०—श्व।

महा०—अथ वरयात्रा-समय क ?

सन्या०—यातैक-यामाया यामिन्याम्।

महा०—कति सहचरा अनुमता नगराधिकारिभि ?

सन्या०—वादकाद्यतिरिक्तास्त्रिशत्।

समाप्तम्, अन्यथा समीपमागमिष्यत्। तडागम्=जलाशयम्। उच्चावचायाम्=निम्नोन्नतायाम्। शिवमन्दिरमिव, कतिपयचिह्नानुमेयशिवमन्दिरत्वम्। अत एवेवकारसार्थक्यम्। एकेन, साकमिति शेष। विनाऽपि सहार्थश दयोग तृतीयेति 'वृद्धो यूना' निर्देशवेद्यम्।

घबराये हुए से, लडखडाते पैरो से चलते हुए, एक तालाब के पास पहुँचे। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि मे, अनेक टूटे मन्दिरो मे से शिव मन्दिर के समान प्रतीत होने वाले एक मन्दिर मे जाकर उन्होने "यहाँ कोई सन्यासी है ?" ऐसा पूछा। उसके बाद उस मन्दिर से एक तो वही मुसलमान फकीर और दो अन्य सन्यासी निकले। महादेव ने उनके साथ वही एक शिला पर बैठकर उन दोनो सन्यासियो मे से एक से इस प्रकार बातचीत की।

महादेव—शादी कब होगी ?

सन्यासी—कल।

महादेव—बारात जाने का समय क्या है ?

सन्यासी—रात का एक पहर बीत जाने पर।

महादेव—कोतवाल ने कितने लोगो को साथ जाने की अनुमति दी है ?

सन्यासी—बाजा बजाने वालो को छोडकर तीस व्यक्तियो को।

महा०—भद्रम्, वयमपि सह योक्ष्याम ।

तावदकस्मात्, महादेवस्य कण्ठमिव लक्ष्यीकृत्य क्षिप्त किञ्चिदेव लक्ष्यभ्रष्ट, कश्चिद् भयानक-भल्ल स्कन्धे निपपात वाण एक । स्कन्धस्थोत्तरीयवस्त्रे ओत-प्रोतमिवैनमालोक्य यावत् सर्वे मचकितमुत्तिष्ठन्ति, तावच्छक्तिरप्येका महादेव-वक्षस्थल चुचुम्ब । ताञ्च कञ्चुकान्त स्थित-वर्म्माघातेन सझणत्कार परत पतितामालक्ष्य यावन् ते पश्यन्ति, तावद् घृतखड्गमेक प्राशु पिचण्डिल यवनमपश्यन ।

स च—"तिष्ठ रे महाराष्ट्र-कुल-लाञ्छन ! कपट-दूत ! सर्वां शृणोमि ते दुर्वृत्त-वार्त्ताम् । किन्तु चान्द्रखाने जीवति न त्वादृशा

योक्ष्याम = सम्मिलिता भविष्याम । भयानकभल्ल = तीक्ष्णाग्रभाग । वहुव्रीहि । स्कन्धे तिष्ठतीति स्कन्धस्थ तादृश चोत्तरीयवस्त्रम् = उपरि धारणीय प्रावरणम्, तस्मिन् । ओतप्रोतम् = विद्धानुविद्धम् ।

सचकितम् = साश्चर्यम् । शक्ति = "नेजा" इति, "वरछी" "इति वा भाषा । कञ्चुकान्त स्थितम् = चोलकान्तर्निहितम्, यद् वर्म = कवचम्, तदाघातेन सझणत्कारम् = झणत्कारशब्दसहित यथा स्यात् तथा घृतखड्गम् = गृहीतासिम् । प्राशुम् = प्रोन्नतम् । पिचण्डिलम् = तुन्दिलम् । "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी वृहत्कुक्षि पिचण्डिल" इत्यमर ।

दुर्वृत्तवार्त्तान् = दुर्व्यवहारवृत्तान्तम् । 'दुर्वृत्त' इति पृथक् सम्वोधन

महादेव—हम लोग भी साथ हो लेंगे ।

तव तक अकस्मात्, मानो महादेव के गले को निशाना बनाकर फेंका गया एक तीखी नोक वाला भयानक वाण थोडा सा लक्ष्य भ्रष्ट होकर अर्थात् निशाने से थोडा सा हटकर महादेव के कन्धे के ऊपर गिरा । कन्धे पर डाले गये दुपट्टे से उलझ या फँस मे गये उस वाण को देखकर, आश्चर्य चकित होकर, सभी लोग उठ ही रहे थे कि एक वरछी भी महादेव के वक्षस्थल मे आ लगी । वह कुर्त्ते के अन्दर पहने गये कवच से टकराकर झन्-झन् शब्द करती हुई दूसरी ओर जा गिरी । वे लोग उसे देख ही रहे थे कि हाथ मे तलवार लिये हुये एक लम्बा तुन्दिल (वडे पेट वाला) मुसलमान दिखाई पडा और उसने, "ठहर रे ! महाराष्ट्र कुल के कलङ्क ! कपट पूर्वक दूत का वेष धारण करने वाले ! मै तेरी सारी कुचेष्टाओ की वातो को सुन चुका

मिव पद्भ्या गच्छस्तडागमेकमाससाद। यत्र चोच्चावचाया भुवि भग्न-मन्दिरेष्वेक शिवमन्दिरमिव प्रविश्य, "अस्ति कश्चिदत्र सन्यासी ?" इत्यपृच्छत्। ततस्तु तस्मादेक स एव यवन--भिक्षु, अपरौ च द्वौ सन्यासिनौ निर्गतौ। तैश्च सह तत्रैवैकस्मिन् पाषाणे उपविश्य बहुश आलप्य एकेनैव समालपत्-

महा०—उद्वाह कदा भविता ?

सन्या०—श्व ।

महा०—अथ वरयात्रा-समय क ?

सन्या०—यातैक-यामाया यामिन्याम् ।

महा०—कति सहचरा अनुमता नगराधिकारिभि ?

सन्या०—वादकाद्यतिरिक्तास्त्रिशत् ।

समाप्तम्, अन्यथा समीपमागमिष्यत्। तडागम् = जलाशयम्। उच्चावचायाम् = निम्नोन्नतायाम्। शिवमन्दिरमिव, कतिपयचिह्नानुमेयशिवमन्दिरत्वम्। अत एवेवकारसार्थक्यम्। एकेन, साकमिति शेष। विनाऽपि सहार्थश दयोग तृतीयेति 'वृद्धो यूना' निर्देशवेद्यम्।

घबराये हुए से, लडखडाते पैरो से चलते हुए, एक तालाब के पास पहुँचे। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि मे, अनेक टूटे मदिरो मे से शिव मन्दिर के समान प्रतीत होने वाले एक मन्दिर मे जाकर उन्होने "यहाँ कोई सन्यासी है ?" ऐसा पूछा। उसके बाद उस मन्दिर से एक तो वही मुसलमान फकीर और दो अन्य सन्यासी निकले। महादेव ने उनके साथ वही एक शिला पर बैठकर उन दोनो सन्यासियो मे से एक से इस प्रकार बातचीत की।

महादेव—शादी कब होगी ?

सन्यासी—कल।

महादेव—बारात जाने का समय क्या है ?

सन्यासी—रात का एक पहर बीत जाने पर।

महादेव—कोतवाल ने कितने लोगो को साथ जाने की अनुमति दी है ?

सन्यासी—बाजा बजाने वालो को छोडकर तीस व्यक्तियो को।

महा०—भद्रम्, वयमपि सह योक्ष्याम ।

तावदकस्मात्, महादेवस्य कण्ठमिव लक्ष्यीकृत्य क्षिप्त किञ्चिदेव लक्ष्यभ्रष्ट, कश्चिद् भयानक-भल्ल स्कन्धे निपपात वाण एक । स्कन्धस्थोत्तरीयवस्त्रे ओत-प्रोतमिवैनमालोक्य यावत् सर्वे सचकितमुत्तिष्ठन्ति, तावच्छक्तिरप्येका महादेव-वक्षस्थल चुचुम्ब । ताञ्च कञ्चुकान्त स्थित-वर्म्माघातेन सझणत्कार परत पतितामालक्ष्य यावत् ते पश्यन्ति, तावद् घृतखड्गमेक प्राशु पिचण्डिल यवनमपश्यन ।

स च—"तिष्ठ रे महाराष्ट्र-कुल-लाञ्छन ! कपट-दूत ! सर्वां श्रृणोमि ते दुर्वृत्त-वार्त्ताम् । किन्तु चान्द्रखाने जीवति न त्वादृशा

योक्ष्याम = सम्मिलिता भविष्याम । भयानकभल्ल = तीक्ष्णाग्रभाग । वहुव्रीहि । स्कन्धे तिष्ठतीति स्कन्धस्थ तादृश चोत्तरीयवस्त्रम् = उपरि धारणीय प्रावरणम्, तस्मिन् । ओतप्रोतम् = विद्धानुविद्धम् ।

सचकितम् = साश्चर्यम् । शक्ति = "नेजा" इति, "वरछी" "इति वा भाषा । कञ्चुकान्त स्थितम् = चोलकान्तर्निहितम्, यद् वर्म = कवचम्, तदाघातेन सझणत्कारम् = झणत्कारशब्दसहित यथा स्यात् तथा घृतखड्गम् = गृहीतासिम् । प्राशुम् = प्रोन्नतम् । पिचण्डिलम् = तुन्दिलम् । "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी वृहत्कुक्षि पिचण्डिल" इत्यमर ।

दुर्वृत्तवार्त्ताम् = दुर्व्यवहारवृत्तान्तम् । 'दुर्वृत्त' इति पृथक् सम्वोधन

महादेव—हम लोग भी साथ हो लेगे ।

तव तक अकस्मात्, मानो महादेव के गले को निशाना वनाकर फेका गया एक तीखी नोक वाला भयानक वाण थोडा सा लक्ष्य भ्रष्ट होकर अर्थात् निशाने से थोडा सा हटकर महादेव के कन्धे के ऊपर गिरा । कन्धे पर डाले गये दुपट्टे से उलझ या फँस से गये उस वाण को देखकर, आश्चर्य चकित होकर, सभी लोग उठ ही रहे थे कि एक वरछी भी महादेव के वक्षस्थल मे आ लगी । वह कुर्त्ते के अन्दर पहने गये कवच से टकराकर झन्-झन् शब्द करती हुई दूसरी ओर जा गिरी । वे लोग उसे देख ही रहे थे कि हाथ मे तलवार लिये हुये एक लम्वा तुन्दिल (वडे पेट वाला) मुसलमान दिखाई पडा और उसने, "ठहर रे ! महाराष्ट्र कुल के कलङ्क ! कपट पूर्वक दूत का वेष धारण करने वाले ! मै तेरी सारी कुचेष्टाओ की वातो को सुन चुका

जम्बूक-वराका कृतकार्या भवन्ति" इत्याश्वेड्य सचन्द्रहास श्येन इवाभिपत्य खड्ग तद्वाम-बाहौ प्राक्षिपत् ।

पर महादेवस्तु न 'टिड्ढाणञ्' पण्डित, किन्तु युद्ध-पण्डित, खड्ग-विद्याया च तथा निष्णातोऽस्ति, यथा महाराष्ट्र-देशे एतस्य परस्सहस्रा शिष्या अपि निज-निस्त्रिंश-बलेन रिपूणा शतेन सह योद्धुमभिमन्यन्ते । यद्यपि पाञ्चाला सैन्धवा मारवा राजपुत्र-देशीया अपि च असि-चालन-विद्याया जगत्प्रसिद्धा सन्ति, तथा च

वा । जम्बूकवराका =दयनीयशृगालसदृशा । भवन्ति–"वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा" । सचन्द्रहास =सासि । श्येन इव=शशादन इव । "अथ शशादन । श्येन पत्री"त्यमर । उपमालङ्कार ।

टिड्ढाणञ्पण्डित = "टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठञ्कञ्क्वरप" इति समग्र सूत्र ङीब्विधायक दु खोच्चारणम् । ईदृक्सूत्रमात्ररटनपटु पण्डितो-मन्यतेऽद्यत्वे, अय न तादृशशुष्कपण्डित इत्याकूतम् । युद्धपण्डित =सङ्ग्राम-विद्याभिज्ञ । निष्णात =कुशल, "निनदीभ्या स्नाते कौशले" । रिपूणा शतेन सह, एकाकीति शेष । अन्यथा परस्सहस्राणा रिपुशतेन युद्धकरण किं वैशिष्ट्यमाश्रयेत् । अभिमन्यन्ते=अभिमान वास्तविक कुर्वन्ति । पाञ्चाला -पञ्चालदेशराजा । सैन्धवा =सिन्धुदेशीया । मारवा =मरुदेशीया ।

हूँ, किन्तु चाँद खाँ के जीवित रहते हुये तुम्हारे समान क्षुद्र सियार अपने कार्य मे सफल नही होगे," यह कहकर, गरज कर, तलवार लेकर, बाज पक्षी की तरह झपट कर महादेव की बाई भुजा पर तलवार चला दी ।

किन्तु महादेव 'टिड्ढाणञ्' के पण्डित नही अपि तु युद्ध के पण्डित है । वे तलवार चलाने की विद्या मे इतने निपुण है कि महाराष्ट्र देश मे उनके हजारो शिष्य भी अपने को, केवल अपनी तलवार से अकेले ही सैकडो शत्रुओ से युद्ध कर सकने मे समर्थ मानते है । यद्यपि पाञ्चाल, सिन्धु, मारव और राजपूताना के वीर भी तलवार चलाने की कला मे ससार भर मे प्रसिद्ध है,

निपतन्ति तेषा प्रबला असय यथा सुबहून् कदलीस्तम्भान् क्रमेलक-पादास्थीनि, किमधिक लोह-दण्डानपि च ते सकृदसिक्षेपणेन निकृन्तन्ति, पर झटितिकारितेय महाराष्ट्राणामेव। येऽतिसत्वरतया चन्द्र हास-चालनपरा हैहया इव वहुवाहव समालोक्यन्ते। सर्वश्चैष महा-राष्ट्र-देशीय वीरता-महिमा शिववीरकृत एवेति सोऽय चञ्चल-चपला-चमत्कारमिव चपलस्वरु-सारेणेव सृष्ट कल्पान्त-सप्तजिह्वस्येवैक

सुबहून् = अत्यधिकमङ्ख्याकान्। क्रमेलकपादास्थीनि=उष्ट्र-चरणकीकसानि। सकृदसिक्षेपणेन = एकवार खड्गप्रहारेण। निकृन्तन्ति=खण्डयन्ति। झटिति-कारिता = शीघ्रकरणम्। अतिसत्वरतया = नितान्तशीघ्रतया। हैहया इव = कार्त्तवीर्या इवेत्युपमा। सहस्र वाहवो हि कार्तवीर्यस्याऽऽसन्। वहु-बाहव = अनेकभुजा। महाराष्ट्रदेशीयाना वीरताया महिमा = महत्त्वम्। चञ्चलचपलाचमत्कारमिव = चपलविद्युद्विच्छुरणमिव। चपलश्चासौ स्वरु = वज्रम्, "शतकोटि स्वरुरि"त्यमर, तस्य सारेण = तत्त्वाशेन। सप्त जिह्वा यस्य स सप्तजिह्व = दहन, ताश्च—

'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलिह्यमाना इति सप्त जिह्वा ॥"

इति मुण्डके प्रसिद्धा। कल्पान्ते सप्तजिह्वस्येति विग्रह। कल्पान्तविशेषणेन

और उनकी प्रवल तलवारे इस प्रकार चलती है कि अनेक कदलीस्तम्भो, ऊँटो के पैरो की हड्डियो, अधिक क्या कहा जाये, लोहे की छडो को भी वे एक ही बार मे काट डालते है, टुकडे टुकडे कर देते है, किन्तु क्षिप्रकारिता (तेजी से-तलवार चलाने की निपुणता) तो महाराष्ट्र के वीरो की ही विशेषता है, जो अत्यन्त शीघ्रता से खड्ग चलाने के कारण कार्तवीर्य की भाँति सहस्रवाहु दिखाई देते है। महाराष्ट्र देश की इस सारी वीरता की महिमा का श्रेय शिवाजी को ही है।

महादेव पण्डित ने अपने हाथ मे ली हुई चञ्चल बिजली की चमक के समान, मानो चपल वज्र के सार भाग से निर्मित, प्रलय-कालीन अग्नि की

जिह्वा-विशेष निज-कर-कलित महाचन्द्रहास तथा प्राहिणोद्, यथा चान्द्रखानस्यासिं कन्धरां च एकेनैवाऽऽघातेन द्विरकरोत्। उक्तवांश्च यद्-"अरे रे शास्तिखान! मिथ्या तिरस्कारेणैवाद्य यवन-वीर-श्मश्रूपममेत चान्द्रखान धर्मराजाध्वन्यध्वनीन कारितवानसि। एक एवाऽऽसीदेष त्वत्पार्श्वे विचार्यकारी नीतिज्ञश्च। तदस्मिन् मदसि-विलीढे को नाम कठिनो वारवधू-कर-शराव-चुम्बन-चञ्चुरस्य तव विजय?"—इति।

तदालोक्य च चकितेनेव यवन-भिक्षुणा कथितम्-"परमेष विघ्न इव

भीषणताऽऽधिक्य प्रतिपादितम्। एकम्=अद्वितीयम्। जिह्वाविशेषमिवेत्युपमा। निजकरकलितम्=स्वहस्तधारितम्। प्राहिणोत्=अक्षिपत्। असिम्=चन्द्रहासम्। कन्धराम्=ग्रीवाम्। उत्थितहस्तस्थितासिना साकं ग्रीवाकर्तनेन सुमहद् वैलक्षण्यमसिचालने प्रदर्शितम्। द्विरकरोत्=खण्डद्वयमकार्षीत्। अरे रे शास्तिखान! बुद्धया सन्निधापितस्य तस्य सम्बोद्धयमानता। यवनवीराणाम्=यवनभटानाम्, श्मश्रूपमम्=ओष्ठस्थलोमतुल्यम्। अतिप्रधानमित्यर्थः। "यवन-वीरो की मूँछ के समान" इति हिन्दी। धर्मराजाध्वनि=यममार्गे। अध्वनीनम्=पान्थम्। विचार्य करोतीति तथाभूत। मदसिना=मत्खड्गेन, विलीढे=आस्वादिते। मारित इति यावत्। वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, करस्थितानां शरावाणाम्=मद्यभाण्डानाम्। चुम्बने=आस्वादने, चञ्चुरस्य=चपलस्य। वेश्याभिः सम मद्यपानाऽऽसक्तस्येति यावत्।

(सात जिह्वाओ मे से एक) जिह्वा के समान भीषण तलवार इस प्रकार चलाई कि एक ही प्रहार मे चाँद खाँ की तल्वार और गर्दन के दो टुकडे कर दिये। फिर महादेव बोले—'अरे रे शाइस्ता खाँ! तूने मिथ्या तिरस्कार करके ही आज यवन वीरो की मूँछ के समान इस चाँद खाँ को यमराज के पथ का पथिक बनवा दिया। इसके मेरी तलवार द्वारा चाट लिये जाने पर, वेश्याओ के हाथो के प्याले को चूमने मे चपल तुझ को जीतने मे अब कठिनाई ही क्या है'?

यह देखकर चकित से यवन भिक्षु ने कहा—'परन्तु यह तो हम लोगो के

विभात्यस्मद्विवाहोत्सवस्य, यत प्रमुखोऽय राजसभायाम्, श्व एवै-तद्विषये घण्टाघोषो भविष्यति।"

श्रुत्वैतद् महादेव उवाच—"मा स्म भूद् विचिकित्सा काऽपि। अद्याय राजसभायामनादृत कानिचिद् दिनान्यगच्छत्यप्यस्मिन् न कोऽपि सन्धेक्ष्यति एतस्य जीवन-विषये। तत्सत्त्वरमेष आसन्नेऽस्मिन् शुष्ककूपे निक्षेपणीय, उपरिष्टाच्चास्य पाषाण-कर्पर-मृत्पिण्ड-खण्डान् निपात्य, तथाऽऽच्छादनीयो यथा निपुण निरीक्षणेनापि न स्याच्छक्योऽवलोकयितुम्।"

तदाकर्ण्य च सपद्येव ते तथा विदधिरे। महादेवश्च शनै शनै पुनरप्यालप्य, कतिभिश्चिच्छोणित-शोण-बिन्दुभिरङ्कित दक्षिणबाहु-

---

विचिकित्सा = सशय। अनादृत = तिरस्कृत। सन्धेक्ष्यति = सन्देह करिष्यति। आसन्ने = समीपस्थे। पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, कर्पराणाम् = शकलितमृद्भाण्डानाम्। मृत्पिण्डानाम् = लोष्टानाम्, खण्डान्।

शोणितशोणबिन्दुभि —रक्त-रक्त (वर्ण) पृषतै। अङ्कितम् = चिह्नितम्।

विवाहोत्सव मे विघ्न सा प्रतीत होता है, क्योकि यह (चाँद खाँ) राज-सभा का प्रमुख सभासद था और कल ही इसके विषय मे डोंडी (डुग्गी) पिटेगी।

यह सुनकर महादेव बोला—

'आप किसी प्रकार का सन्देह न करे। आज यह राजसभा मे अपमानित किया गया है, अत यदि यह कुछ दिनो तक राजसभा मे नही भी पहुँचेगा, तो भी कोई इसके जीवित होने के विषय मे सन्देह नही करेगा। इसे शीघ्र ही इस समीपस्थ सूखे कुएँ मे फेक देना चाहिये और इसके ऊपर पत्थर, खपटे और मिट्टी के ढेले डाल कर इसे इस प्रकार ढक देना चाहिये कि अच्छी तरह से देखने पर भी इसे देखा न जा सके।'

यह सुनकर कर उन सब ने तत्क्षण वैसा ही किया। तदनन्तर महादेव (उन सब से) पुन धीरे-धीरे बातचीत कर के, अपने दाहिने कन्धे को, जिस पर खून की कुछ लाल बूँदो के धब्बे पडे थे, उत्तरीय से ढक कर, पुन

मूलमुत्तरीयेणाऽऽवृत्य पुनर्मार्गाद् मार्गान्तर प्रविशन्, घण्टापथमासाद्य, गोपुराभिमुख प्रचलन्, केनचित् सन्दिह्यमानश्च शास्तिखान-हस्ताक्षराङ्कित पत्र दर्शयन्, कुशलेन गोपुराद् वहिराजगाम। अग्र एव कुटपटलीषु निलीयमान एव घनच्छायस्यैकस्य वट-वृक्षस्य तले मर्मर-श्रवण-स्तब्ध-कर्णम् अनिमेष-नयनाभ्या सम्मुखमवलोकयन्तम् अश्वमेकमारूढ वीरमेषमात्मान प्रतीक्षमाण गौरसिंहमद्राक्षीत्। तत्समीपे च दासेरकेणैकेन गृहीत-वल्गमपरमपि निजार्थमानीतमाजानेयमपश्यत्। ततस्तेन किञ्चिदालप्य, अविगणितपरिश्रम स्नातोत्थित इव स्फूर्ति-स्फुरित-गात्रोऽनूनोत्साह स्मय-

उत्तरीयेण = प्रावरणेन। आवृत्य = आच्छाद्य। घण्टापथम् = राजमार्गविशेषम्। गोपुराभिमुखम् = अनुपुरद्वारम्। कुटपटलीषु = वृक्षसमूहेषु। घना = निविडा, छाया यस्य तस्य। मर्मरस्य = शुष्कपर्णध्वने, श्रवणेन = आकर्णनेन, स्तब्धौ = शङ्कूभतौ, कर्णा यस्य तम्। अनिमेषनयनाभ्याम् = निमेषपतनोत्पतनशून्यनेत्राभ्याम्। आत्मानम् = महादेवपण्डितरूप शिववीरम्। प्रतीक्षमाणम् = प्रतिपालयन्तम्। दासेरकेण = दास्या अपत्य पुमान् दासेरकस्तेन भृत्येन। गृहीतवल्गम् = धारितकविकम्। आजानेयम् = कुलीनमश्वम्। अविगणितपरिश्रम = अज्ञातखेद। पूर्व स्नात पश्चादुत्थित इति स्नातोत्थित। "पूर्वकालैकसवजरत्पुराणनवकेवला समानाधिकरणेने"ति

एक रास्ते से दूसरे रास्ते मे प्रविष्ट होते हुए, राजमार्ग पर आकर, बहिर्द्वार की ओर चलते हुए, किसी के द्वारा शङ्का किये जाने (टोके जाने पर) शाइस्ता खाँ के हस्ताक्षरो से युक्त पत्र दिखाते हुए, सकुशल गोपुर के बाहर आ गए। वृक्षो के झुरमुट मे घुसते ही आगे ही, एक घनी छाया वाले वटवृक्ष के नीचे पत्तो की मर्मरध्वनि सुनने के कारण चौकन्ने होकर निर्निमेष नेत्रो से सामने देख रहे, एक घोडे पर चढे हुए, वीरवेष धारण किये हुए गौरसिह को अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा। उन्ही (गौरसिह) के समीप, अपने (अर्थात् महादेव के) लिये लाये गये एक दूसरे घोडे को देखा, जिसकी लगाम एक नौकर ने पकड रखी थी। तदनन्तर गौरसिंह से कुछ बात करके, थकान की

मानमुखो वामहस्तेन रश्मि संयम्य दक्षेणाश्वग्रीवामास्पृश्याऽविलक्षितोत्पतन सपदि तत्पृष्ठमारूढ । 'रात्रौ कश्चनास्मत्पण्डित समायास्यतीति पत्रद्वारा प्राप्तास्मत्सन्देश शिविरस्थो यशस्विसिंहमहाराज पण्डित प्रतीक्षते" इति कुशल-प्रश्नाद्यनन्तर गौरेणोक्तश्च, तेन सह मन्द मन्दमालपन् कृतायासोऽप्यनायस्त तामेव दिश प्रातिष्ठत ।

\+ \+ \+

समास । स इवेत्युपमा । स्फूर्त्या = स्नानादिजन्यलाघवविशेषेण, स्फुरितम् = चञ्चलता गतम्, शीघ्रकार्यकरणशीलता प्राप्तम्, गात्रम् = शरीर यस्य स । अनून = अधिक, उत्साहो यस्य स । स्मयमानमुख = ईषद्धास्यमयानन । रश्मिम् = वल्गाम् । सयम्य=सम्तम्य । आस्पृश्य=स्पर्श कृत्वा । अविलक्षितम = अनवलोकितम्, उत्पतनम् = अश्वपृष्ठोत्पतनम्, यस्य स । यशस्विसिंहमहाराज = "जसवन्तसिह" इति लोके ख्यातो योधपुर-शासक । कृतायासोऽपि = विहितपरिश्रमोऽपि । अनायस्त = श्रमशून्य । तामेव दिशम् = यशस्विसिंहाध्युषित-हरितमेव ।

परवाह न करते हुए, स्नान करके उठे हुए से, स्फूर्ति से फड़कते हुए अङ्गो वाले, उत्साह से परिपूर्ण महादेव, मुस्कराते हुये, बाये हाथ से लगाम को सँभाल कर, दाहिने हाथ से घोडे की गर्दन थपथपाकर, इस प्रकार कूद कर उसकी पीठ पर झट सवार हो गये कि कोई देख भी न पाया ।

कुशल आदि पूछने के बाद, गौरसिंह के यह कहने पर कि "पत्र द्वारा हमारा यह सन्देश पाकर कि रात्रि मे हमारे एक पण्डित जी आपसे मिलने आयेंगे, महाराज जसवन्त सिंह हमारे पण्डित जी की शिविर मे प्रतीक्षा कर रहे है", उसके (गौरसिंह के) साथ धीरे-धीरे बातचीत करते हुए, परिश्रम कर चुकने के बावजूद भी, बिना थकान का अनुभव किये हुए, उसी (शिविर की) दिशा मे चल दिये ।

तत्र राजपुत्र-राजो यशस्विसिह शिविरान्त पट-भवने-ष्वन्यतमे कलितोपबर्हाश्रय, केनचिद् भृत्येन मन्द मन्द वीज्यमान, उपधान-स्थापित-बाहुमूले कमल-दल इव दक्ष-कर-तले, ईषदरुण-पाण्डुर सायसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव वदन सस्थाप्य, पुर -स्थित-खड्गमालोकमालोक वामहस्ततर्ज्जन्यङ्गुष्ठाभ्या च वामश्मश्वग्र परिमृजन्नेवमचिन्तयत्—

राजपुत्रराज = "राजपूताना" नाम्ना प्रसिद्धस्य देशस्य नरेश । शिविरस्य = सेनानिवेशस्य, अन्त = मध्ये, यानि पटभवनानि = उपकार्या, तेषु । कलितोपबर्हाश्रय = कृतोपधानावलम्ब । वीज्यमान = व्यजन-वायुना सेव्यमान । उपधाने स्थापित बाहुमूल यस्य तस्मिन् । कमलदल इव = पद्मपलाश इव, सप्तम्यन्तम् । दक्षकरतले = दक्षिणहस्ततले । ईषदरुण-पाण्डुरम् = किञ्चिद् रक्तपीतम् । सायकालिक शशाङ्क उभाभ्यामपि वर्णाभ्या भूषितो भवत्येव । मुख च क्रोधेन रक्तम्, खेदेन च पीतम् । सायसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव = सूर्यास्तवेलोदितचन्द्रबिम्बमिव । वदनम् = आननम् । आलोकमालोकम् = दर्श दर्शम् । णमुलन्तम् । "नित्यवीप्सयोरि"ति द्वित्वम् । तर्जनी चाङ्गुष्ठश्चेति द्वन्द्व । वामहस्तस्य तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम् । यद्यपि "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानामि"त्येकवद्भाव समपेक्षितस्तथाऽपि सर्व-द्वन्द्वस्थलीयैकवद्भावस्य वैकल्पिकत्वमतमनुसृत्येदमभिहितमिति न च्युतसस्कृ-तिदोषोद्भावन युक्तम् । परिमृजन्नित्यनेन सम्बन्ध । वामश्मश्वग्रम् = वामभागीयमुखकेशप्रान्तम् । आतत यथा स्यात् तथा अयितु शीलमेषामित्याततायिन = वधोद्यता, "सन्नद्धे त्वाततायी वधोद्यते" इत्यमर ।

उधर शिबिर मे एक तम्बू मे मसनद का सहारा लेकर बैठे हुए राज-पूताना-नरेश जसवन्त सिह, जिन्हे एक नोकर धीरे-धीरे पखा झल रहा था, (दाहिने) कन्धे को मसनद पर टिकाए हुए, दाहिने हाथ की कमल पत्र के समान हथेली पर, कुछ अरुणिमा लिये हुए पीले, सन्ध्याकालीन चन्द्रमण्डल के समान मुख को रखे हुए, सामने रखी हुई तलवार को देख-देख कर बायें हाथ की तर्जनी और अँगूठे से बाई मूँछ के अग्रभाग को स्पर्श करते (मूँछ पर ताव देते) हुए इस प्रकार सोच रहे थे—

"समायात घोर कलियुगम्, नात्र सशय । यैराततायिहतकै-र्दृशाऽप्यवलोकितमन्नादि अस्मत्पूर्वजै शुनकेभ्यो वितीर्णम्, तेऽधुना साञ्जलि जयजयध्वनिपुरस्सरमभिवाद्यन्ते । येभ्यश्चर्मकार-मण्ड-लेष्वस्माभिर्वासभूमिरदीयत, तेषा विजय-पताका अधुना वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु, मैथिलेषु, काशीषु, कोशलेषु, कान्य-कुब्जेषु, चोलेषु, पाञ्चालेषु काञ्चीषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु, सौराष्ट्रेषु च दोधूयन्ते । येऽस्मदिष्टदेव-निन्दका सजिह्वाच्छेदमस्माभी राज्याद् निरवासिषत, तेऽद्य जीवतामेव चास्माक काश्यादिषु मन्दिराणि

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिधनापह ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिन ॥' इति स्मरणात् ।

दृशाऽप्यवलोकितम् = नेत्रेणापि दृष्टम् । स्पर्शादिस्तु कथैव का ? शुन-केभ्य = कुक्कुरेभ्य, वितीर्णम् = दत्तम् । चाण्डालादिदृष्टान्नपानादिपरित्या-गस्यापि मानवाद्यभिहितत्वेन, "न नीचो यवनात् पर" इति स्मृत्या सर्वथा गर्हि-तैर्यवनैर्दृष्टानामन्नादीना सर्वथा भोजनाभाव एव युक्त इति विवेक । अभि-वाद्यन्ते = नमस्क्रियन्ते । चर्मकारमण्डलेषु = पादूकृत्समुदायेषु । 'पादूकृ-च्चर्मकार स्यादि'त्यमर । वासभूमि = निवासस्थानम् । इष्टदेवनिन्दका = इन्द्राग्न्यादिनिन्दारता । सजिह्वाच्छेदम् = सरसनोत्कर्तनम् । न येन पुन-रेवमविनय कुर्यु । निरवासिषत = निस्सारिता । आपानभूमीकुर्वन्ति =

"घोर कलियुग आ गया है, इसमे सन्देह नही । जिन गये गुजरे आत-तायियो की आँखो से देखे (मात्र) गये अन्नादि तक को भी हमारे पूर्वज कुत्तो को दे दिया करते थे, उन्ही का अब हाथ जोडकर जय-जय की ध्वनि के साथ अभिवादन किया जाता है, जिन्हे हम लोग रहने के लिये चमारो की बस्ती मे जमीन दिया करते थे, उन्ही की विजयपताकाएँ अब वङ्ग, कलिङ्ग, अङ्ग, मगध, मत्स्य, मिथिला, काशी, कोसल, कान्यकुब्ज, चोल, पाञ्चाल, काञ्ची, शूरसेन, सिन्धु और सौराष्ट्र (देशो या राज्यो) मे फहरा रही हैं। अपने इष्टदेव के जिन निन्दको को हमने जुबान कटवा कर राज्य से निर्वासित कर दिया था। वे ही अब, हमारे जीवित रहते हुए भी, काशी आदि स्थानो मे मन्दिरो को तोड रहे है और तीर्थों को मदिरालय बना रहे है, लक्ष्मी के समान

मर्दयन्ति, तीर्थान्यापानभूमीकुर्वन्ति । कमला इव विमलाचारा कुलीन-कन्या कदर्थयन्ति । सगात्र-कम्प साश्रुपात सकरुण "त्रायस्व, त्रायस्वे"ति आम्रेडन-पराणा परम-पूज्यपाद-वेद-विदुषामपि शोणितैर्भुव शोणयन्ति । अहह ! धिगस्मादृशान् क्षत्रिय-कुलकलङ्कान्, ये तेषा मानवाकाराणा क्रव्यादाना रुधिरैर्देवान् पितश्च न तर्पयाम, अपितु तत्साहाय्य-दानेन स्वधर्म-रक्षण-परान् स्वबन्धूनेव चिक्लेशयि-

---

सुरापानशालीकुर्वन्ति । कमला इव श्रिय इवेत्युपमा । विमलाचारा = सदाचारिणी । कुलीनानाम् = सद्वंशजातानाम्, कन्या = अविवाहिता बालिका । (प्रायो यवना अविवाहिता एवागृह्णन् बालिका इत्यत एव "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" इत्यादिवचासि धमशास्त्रे सम्मेल्य तदानीन्तना बुद्धिमन्तो बालविवाह प्रचारितवन्त इति वेदितव्यम् ।) सगात्रकम्पम् = सशरीरवेपनम् । क्रियाविशेषणम् । आम्रेडनपराणाम् = वार वार कथयताम् । परमपूज्यपादाश्च ते वेदविद्वासस्तेषाम् = नमस्करणीयचरणश्रोत्रियाणाम् । भुवम् = धराम् । शोणयन्ति = रक्ता कुर्वन्ति । मानवाकाराणाम् = मनुष्यशरीरधारिणाम् । क्रव्यादानाम् = आममासभक्षणतत्पराणाम्, रक्षसाम् । रुधिरैर्देवान् पितृश्च न तर्पयाम, एतेषा हननेन देवाना च पितृणा च महती तृप्ति स्यादित्येवमुक्ति । तत्र दोषलेशाभावसूचनाय तु तर्पयाम इत्यभिहितम् । एव कृते पुण्यमेव भवेदिति वास्तव तत्त्वम् । स्वधर्मरक्षणपरान् = हिन्दूधर्मरक्षा-

---

निर्मल आचरण वाली कुलीन कन्याओ को भ्रष्ट कर रहे है, काँपते हुए शरीर और अश्रुधार बहाते हुए नेत्रो वाले, करुण स्वर मे, रक्षा करो, रक्षा करो" की रट लगाने वाले, परमपूज्य वेद के विद्वानो के भी रक्त से पृथ्वी को रक्तिम बना रहे है । हा ! धिक्कार है । मेरे समान क्षत्रियकुल के कलङ्कभूत राजाओ को, जो उन मनुष्याकृति राक्षसो (यवनो) के रक्त से देवो और पितरो का तर्पण नही करते, प्रत्युत उन्ही को सहायता प्रदान कर, अपने धर्म की रक्षा मे तत्पर अपने ही बन्धुओ को कष्ट देना चाहते है । हा ! हमारा सारा देश

पाम । हा ! सर्वोऽप्यस्मद्देश परतन्त्र एव संवृत्त । केवल महाराष्ट्र-देशे स्वातन्त्र्यस्य उद्यान विकसितमवलोक्यते । अहह ! तदप्येतेऽनुदारा भूदारा इव उल्लुलूषन्ति, परन्तु न्यक्कार-विषया वयमेव, ये तुच्छानामेषामुच्छ्लता म्लेच्छ-हतकाना चाटुकारा इव, किमिदमित्य-विगणय्य, प्राप्त-सङ्केता एव स्वबन्धु-सर्वस्वमेव कृत्रिम-कोप-ज्वालाभि-र्दिधक्षाम । अथवा कि कुर्म ? पूर्वजचरणा एवास्माक महा-महिम-मर्यादामुल्ललङ्घिरे । आसीदेष आमेराधीशो वीरवरो महामानो मान-सिह एव यो बहूना पैतृकी पारम्परीणा प्राणाधिक-मूल्या सर्वस्व-हाने-

---

निर्गतान् शिवराजप्रभृतीन् । स्वबन्धून् = देशभ्रातॄन् । एव = केवलम् । चिक्लेशयिषाम = क्लेशयितुमिच्छाम । परतन्त्र = पराधीन । उद्यानम् = वाटिका । विकसितम् = कुसुमितम् । अनुदारा = उदारताशून्या । भूदारा इव = वराहा इव । "क्रोडो भूदार" इत्यमर । उल्लुलूषन्ति = उल्लवितु-मिच्छन्ति । न्यक्कारविषया = तिरस्कारपात्राणि । तुच्छानाम् = अतिनीचानाम् । उच्छ्लताम् = उच्छृङ्खलानाम् । चाटुकारा इव = मिथ्या-श्लाघका इव । प्राप्तसङ्केता एव = आदेशप्राप्तिसमकालमेव । कृत्रिम-कोप-ज्वालाभि , वास्तविकक्रोधकारणाभावादिति भाव । दिधक्षाम = दग्धुमिच्छाम । महा-महिम्नाम् = अतितेजस्विनाम्, मर्यादाम् = सीमाम् । उल्ललङ्घिरे = अति-चक्रमु । आमेराधीश = अम्बराधिपति । पारम्परीणाम् = परम्पराप्राप्ताम्,

---

गुलाम ही हो गया है । केवल महाराष्ट्र देश मे (ही) स्वतन्त्रता का उद्यान फल-फूल रहा है (विकसित दिखाई दे रहा है) । आह ! उसे भी क्रूर यवन सूअरो की भाँति नष्ट कर देना चाहते है । परन्तु धिक्कार के विषय तो हम लोग ही है, जो इन तुच्छ, उच्छृङ्खल यवनापसदो के खुशामदियो की भाँति, 'हम यह क्या करने जा रहे हैं' यह विचार किये विना ही, उनका सङ्केत मात्र पाकर, अपने ही बन्धुओ के सर्वस्व को ही बनावटी क्रोध (रूपी अग्नि) की ज्वाला से जला देना चाहते है । अथवा हम लोग ही क्या करे ? हमारे पूज्य-पाद पूर्वजो ने ही हमारी महामहिमशालिनी मर्यादा का उल्लघन किया है ।

यह आमेर नरेश (जयपुर के महाराज) वीरवर महामानी मानसिह ही तो थे, जो अनेक भारतीयो की पैतृक परम्परा प्राप्त, प्राणो से भी अधिक

नापि रक्षणीया धमार्थकाममूलभूता स्वतन्त्रतासम्पत्ति बलादाच्छिद्य खड्गधारासारैरखिलान् आत्मान चान्धीकृत्येव दुराचार-यवनराजहस्ते समर्पयति स्म। अथवा कस्तस्य दोष ? क्रूरतमोऽय कलि, अभद्राणि भाग्यानि, अभव्य भाव्यम्, पतनोन्मुखी सम्पत्ति, विधूतप्रायो धर्म, ध्वस्ता धीरता, चञ्चला चक्रवर्त्तिता, स्रस्ता च स्वतन्त्रता, तद् महता विनिन्दनेन व्यर्थोऽय वदन-मलिनीकार" इत्यादि बहुशश्चिन्तयत एव तस्य कतिभिश्चिदश्रुविन्दुभि श्मश्रुमूलमसिच्यत। यावच्चैष उपधान परित्यज्य, जानुद्वय सम्पात्योपविश्य, करपृष्ठाभ्या नेत्रे सम्मृज्यो-

मूलपुरुषक्रमायातामिति यावत्। **प्राणाधिकमूल्याम्**=जीवनतुल्याम्, आधार-भूतामिति यावत्। **सर्वस्वहानेनापि**=निखिलत्यागेनापि। **रक्षणीयाम्**=पालनीयाम्। **स्वतन्त्रतासम्पत्तिम्**=स्वातन्त्र्यलक्ष्मीम्। **बलात्**=प्रसह्य। **आच्छिद्य**=सङ्खण्डय। **खड्गधारासारै**=असिपतनवर्षे। **अन्धीकृत्येव**=विचारविरहितीकृत्येव। **अभद्राणि**=अमङ्गलानि। **अभव्यम्**=अशोभनम्। **भाव्यम्**=भवितव्यम्। **पतनोन्मुखी**=विनाशप्रवणा। **विधूतप्राय**=विध्वस्तकल्प। **चक्रवर्त्तिता**=साम्राज्यम्। "चक्रवर्ती सार्वभौम" इत्यमर। **स्रस्ता**=पतिता। **वदनमलिनीकार**=मुखकालिमानयनम्।

श्मश्रुमूलम्=कूर्चिकाग्रम्। **असिच्यत**=सिक्तमक्रियत। शोकादश्रुपतन-

मूल्य वाली, सर्वस्व खोकर भी रक्षा करने योग्य, धर्म, अर्थ और काम की मूल आधार, स्वतन्त्रता रूप सम्पत्ति को, उनसे बलपूर्वक छीनकर, तलवार की धार की मूसलाधार वर्षा से, सभी को तथा स्वय को भी, अन्धा सा करके, दुराचारी यवन सम्राट् के हाथो मे समर्पित कर देते थे। अथवा, उनका भी क्या दोष है ? यह कलियुग महाक्रूर है, हम लोगो का भाग्य अच्छा नही है, भविष्य खराब है, हमारी सम्पत्ति पतनोन्मुख है, हमारा धर्म प्राय नष्ट हो चुका है, धैर्य ध्वस्त हो चुका है, चक्रवर्तित्व चञ्चल हो गया है और स्वातन्त्र्य समाप्त हो गया है, अत अपने महान् पूर्वजो की निन्दा करके अपना मुख मलिन करना निरर्थक है।"

इसी प्रकार अनेक बाते सोचते-सोचते उनकी (जसवन्त सिंह की) मूंछो

त्तरीयाञ्चलेन बाष्पमपाकृत्य सम्मुखमवलोकयति, तावदन्यतम प्रतीहार प्रविश्य, सजयध्वनि करौ सम्पुटीकृत्य प्रावोचद्—"देव ! शिववीर-प्रेषितो महादेव-पण्डितो दिदृक्षतेऽत्रभवत ।" तदूरीकृत्य च 'ओम् ! प्रवेशय' इत्युक्तवति महाराजे प्रतीहारोऽपि तथाऽकरोत् । तत प्रतीहारेण सह प्रविष्टमात्रे महादेव-पण्डिते, यशस्विसिंह प्रणम्य आसन्न-स्थानमुपवेशार्थं दक्षकरेण निर्दिष्टवान् । त च स्वेदात् क्लिन्नवदनमवलोक्य सम्यगुपवीजयितु व्यजनिनमिङ्गितवान् ।

मारब्धमिति यावत् । अथ शोकावस्था दर्शयति—यावच्चैष इति । अन्यतम =अनेकेष्वेक । सजयध्वनि = जय-शब्दपुरस्सरम्, क्रियावि० । सम्पुटीकृत्य = सयोज्य । अत्रभवत = पूजनीयान् । ऊरीकृत्य = स्वीकृत्य । आसन्न-स्थानम् = समीपवर्तिदेशम् । "समीपे निकटासन्नावि"त्यमर । दक्ष-करेण = दक्षिणहस्तेन । स्वेदात् = घर्मजलात् । क्लिन्नवदनम् = आर्द्राननम् । उपवीजयितुम् = व्यजनेन सेवितुम् । व्यजनिनम् = व्यजनचालकम् ।

का मूल भाग आँसुओ की बूँदो से सिंच गया (उनकी मूछे अश्रुसिक्त हो गई) ।

महाराज जसवन्त सिंह ने मसनद छोडकर, दोनो घुटनो को टेक कर, बैठ कर, हाथो के पृष्ठ भाग से नेत्रो को पोछ कर, उत्तरीय के आँचल से आसुओ को पोछ कर, सामने देखा ही था, कि प्रतीहार ने प्रवेश करके, 'जय–जय' कहते हुए हाथ जोडकर निवेदन किया—'देव ! शिवाजी के द्वारा भेजे गये महादेव पण्डित आपका दर्शन करना चाहते है ।' प्रतीहार की बात स्वीकार करके, महा-राज जसवन्त सिंह के, 'हाँ, ले आओ' यह कहने पर, प्रतीहार ने भी वैसा ही किया ।

तदनन्तर प्रतीहार के साथ महादेव पण्डित के प्रविष्ट होते ही, जसवन्त सिंह ने, प्रणाम कर, दाहिने हाथ से सङ्केत करके बैठने के लिये समीपस्थ स्थान की ओर निर्देश किया, तथा महादेव पण्डित के मुख को पसीने से

तेन वीज्यमानमपगत-परिश्रम च कुशलादिकमपृच्छत् । स च यथो-चितमालप्य विशेष-वार्ता आलपितु राजप्रश्न प्रतीक्षमाण इव तस्थौ ।

ततस्तयोरेवमभूदालाप ।

यशस्विसिह —पण्डितवर ! महाराष्ट्र-राजस्य पत्र तु प्राप्तवानेवास्मि । तत्र तेन यद् यदलेखि तत् तत् पठितवानस्मि । तदधिक भवन कि प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम् ।

महादेवपण्डित –मरुराज ! नाह तत्रभवता किमपि प्रस्तोतु प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोक प्रकाशयितुम् ।

यश०–तत् कि पुण्यनगरेण सह प्रधानचिक्कनदुर्गोऽपि हारित इति शोक ?

इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान् । अपृच्छत् = पृच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्

भीगा हुआ देखकर पखा झलने वाले को ठीक से पखा झलने के लिये इशारा किया ।

उसके बाद जसवन्तसिंह ने, महादेव पण्डित, जिनको पखा झलने वाला पखा झल रहा था और जिनका परिश्रम दूर हो गया था, से कुशल वृत्तान्त पूछा ।

महादेव पण्डित यथोचित बातचीत करके विशेष बाते करने के लिये, महाराज जसवन्तसिंह के प्रश्न की प्रतीक्षा करते हुये बैठे रहे । उसके बाद उन दोनो व्यक्तियो मे इस प्रकार की बातचीत हुई ।

जसवन्त सिंह—पण्डितप्रवर ! महाराष्ट्रराज शिवाजी का पत्र तो मुझे मिल ही गया है, उसमे उन्होने जो कुछ लिखा है, वह मैंने पढ लिया है, उससे अधिक (आगे) आप जो कुछ कहना चाहते हो, कहिये ।

महादेव पण्डित—मरुराज ! महाराज शिवाजी ने मुझे आप के पास कुछ कहने के लिये नही, अपितु शोक प्रकट करने के लिये भेजा है ।

जसवन्त सिंह—क्या उन्हे पूना नगर के साथ ही मुख्य चाकन दुर्ग के भी हार जाने का शोक है ?

महा०—तस्य हस्ते बहवो दुर्गा सन्ति-इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०—अथ किं भारत-चक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते—इति शोक ?

महा०—क्षत्रियराज! विपत्समये धीरतात्याग शिवेन नाभ्यस्त।

यश०—तत् किमिति शोक ?

महा०—[उच्चैर्निरश्वसत्]

यश०—कथ्यताम् कथ्यताम्, किमिति शोक ?

महा०—भगवन्! य क्षत्रियता-धूर्धर, येन राजन्वतीय भू, योऽस्मादृशानामभिमान-भाजनम्, यस्मिन् धर्म-धुरन्धरा आग्रह-

---

परिश्रम कुशलादिकमित्यत्र च द्वितीया। प्रस्तोतव्यम्=वक्तव्यम्। क्षत्रियराज=क्षत्रिय एव केवल न, राजाऽपि। किमिति=कस्माद्धेतो।
उच्चैर्निरश्वसत्, महान् शोको यो वाचामगोचर इति दर्शयितु किमप्यनभिधाय निश्वासग्रहणम्। क्षत्रियताया =क्षात्रस्य निखिलविपन्नरक्षणरूपस्य,

---

महादेव पण्डित—शिवाजी के हाथ (अधिकार) मे अनेक दुर्ग है। अत वे दुर्ग के लिये खिन्न नही है।

जसवन्त सिंह—तो क्या उन्हे इस बात का शोक है कि भारतचक्रवर्ती दिल्लीश्वर के साथ युद्धरूप महाविपत्ति उपस्थित हो गई है ?

महादेव पण्डित—क्षत्रियराज! विपत्ति के समय मे धैर्य छोड देने का अभ्यास शिवाजी ने नही किया है।

जसवन्त सिंह—तो फिर वे शोकग्रस्त क्यो है ?

[महादेव पण्डित ने ऊँची (लम्बी) निश्वास ली।]

जसवन्त सिंह—कहिये, कहिये, उन्हे किस बात का शोक है ?

महादेव पण्डित—"भगवन्! जो क्षत्रियत्व की धुरा को धारण करते है, जिनकी उपस्थिति के कारण यह पृथिवी राजन्वती (अच्छे राजा वाली) कही जाती है, जिन पर हम जैसे लोगो को अभिमान है, धर्मधुरन्धर (धर्मात्मा)

तेन वीज्यमानमपगत-परिश्रम च कुशलादिकमपृच्छत् । स च यथोचितमालप्य विशेष-वार्ता आलपितु राजप्रश्न प्रतीक्षमाण इव तस्थौ ।

ततस्तयोरेवमभूदालाप ।

यशस्विसिह —पण्डितवर ! महाराष्ट्र-राजस्य पत्र तु प्राप्तवानेवास्मि । तत्र तेन यद् यदलेखि तत् तत् पठितवानस्मि । तदधिक भवत कि प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम् ।

महादेवपण्डित –मरुराज ! नाह तत्रभवता किमपि प्रस्तोत् प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोक प्रकाशयितुम् ।

यश०–तत् कि पुण्यनगरेण सह प्रधानचिक्कनदुर्गोऽपि हारित इति शोक ?

इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान् । अपृच्छत् = पृच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्

भीगा हुआ देखकर पखा झलने वाले को ठीक से पखा झलने के लिये इशारा किया ।

उसके बाद जसवन्तसिह ने, महादेव पण्डित, जिनको पखा झलने वाला पखा झल रहा था और जिनका परिश्रम दूर हो गया था, से कुशल वृत्तान्त पूछा ।

महादेव पण्डित यथोचित बातचीत करके विशेष बाते करने के लिये, महाराज जसवन्तसिह के प्रश्न की प्रतीक्षा करते हुये बैठे रहे । उसके बाद उन दोनो व्यक्तियो मे इस प्रकार की बातचीत हुई ।

जसवन्त सिह—पण्डितप्रवर ! महाराष्ट्राज शिवाजी का पत्र तो मुझे मिल ही गया है, उसमे उन्होने जो कुछ लिखा है, वह मैने पढ लिया है, उससे अधिक (आगे) आप जो कुछ कहना चाहते हो, कहिये ।

महादेव पण्डित—मरुराज ! महाराज शिवाजी ने मुझे आप के पास कुछ कहने के लिये नही, अपितु शोक प्रकट करने के लिये भेजा है ।

जसवन्त सिह—क्या उन्हे पूना नगर के साथ ही मुख्य चाकन दुर्ग के भी हार जाने का शोक है ?

महा०—तस्य हस्ते बहवो दुर्गा सन्ति-इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०-अथ किं भारत-चक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते—इति शोक ?

महा०-क्षत्रियराज ! विपत्समये धीरतात्याग शिवेन नाभ्यस्त ।

यश०—तत् किमिति शोक ?

महा०—[उच्चैर्निरश्वसत्]

यश०—कथ्यताम् कथ्यताम्, किमिति शोक ?

महा०-भगवन् ! य क्षत्रियता-धूर्धर, येन राजन्वतीय भू, योऽस्मादृशानामभिमान-भाजनम्, यस्मिन् धर्म-धुरन्धरा आग्रह-

---

परिश्रम कुशलादिकमित्यत्र च द्वितीया। प्रस्तोतव्यम्=वक्तव्यम्। क्षत्रिय-राज=क्षत्रिय एव केवल न, राजाऽपि। किमिति=कस्माद्धेतो।

उच्चैर्निरश्वसत्, महान् शोको यो वाचामगोचर इति दर्शयितु किमप्यनभिधाय निश्वासग्रहणम्। क्षत्रियताया =क्षात्रस्य निखिलविपन्नरक्षणरूपस्य,

---

महादेव पण्डित—शिवाजी के हाथ (अधिकार) मे अनेक दुर्ग हैं। अत वे दुर्ग के लिये खिन्न नही हैं।

जसवन्त सिंह—तो क्या उन्हे इस बात का शोक है कि भारतचक्रवर्ती दिल्लीश्वर के साथ युद्धरूप महाविपत्ति उपस्थित हो गई है ?

महादेव पण्डित—क्षत्रियराज ! विपत्ति के समय मे धैर्य छोड देने का अभ्यास शिवाजी ने नही किया है।

जसवन्त सिंह—तो फिर वे शोकग्रस्त क्यो हैं ?

[महादेव पण्डित ने ऊँची (लम्बी) निश्वास ली।]

जसवन्त सिंह—कहिये, कहिये, उन्हे किस बात का शोक है ?

महादेव पण्डित—"भगवन् ! जो क्षत्रियत्व की धुरा को धारण करते हैं, जिनकी उपस्थिति के कारण यह पृथिवी राजन्वती (अच्छे राजा वाली) कही जाती है, जिन पर हम जैसे लोगो को अभिमान है, धर्मधुरन्धर (धर्मात्मा)

ग्रहिला, य पीयूष-पूरमिव चक्षुश्चषकैश्चिराय पिपासामहे, य सनातन-धर्मरक्षाया एकमात्र शरणम्, यश्च भारतीय-वीरकुल-मुकुटमणि, तमेवाद्य कदर्य्य हतकाना पाटच्चराणा जाल्माना धर्म-ध्वसिनामेतेषा दासपदलाञ्छनमालोक्य शोकाकुलो महाराष्ट्र-राज ।

ततो यशस्विसिहस्तु स्फुटमेष मा धिक्करोतीति किञ्चित् कुपित, सता न्यक्करणीयमेव भारत-विद्रोहि-यवन-वशवर्त्तिताकार्यं करोमीति ग्लान, विचित्रेयमुत्थानिकैतत्प्रस्तावस्येति चकित मामेष निरुत्तर-

धुरम् = भार धरतीत्येवम्भूत, अनित्यत्वात् 'ऋकपूरब्धूरि'त्यादिना समासान्ताभाव। राजन्वती = सुराजवती, "राजन्वान् सौराज्ये"। "सुराज्ञि देशे राजन्वानि"त्यमर। अभिमानभाजनम् = अभिमानकारणीभूत। यस्मिन्, सति। भावसप्तमी। धर्मधुरन्धरा = धार्मिका। आग्रहग्रहिला = धर्मपक्षपातिन। पीयूषपूरम् = अमृतप्रवाहम्। चक्षुश्चषकै = पानपात्राभेदता गतैनयनै। एकमात्रम् = अद्वितीयम्। भारतीयवीरकुलस्य = हैन्दवीयशूरसमूहस्य, मुकुटमणि = मस्तकरत्नम्। पाटच्चराणाम् = चौराणाम्। जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणा धूर्त्तानाम्। दासपदलाञ्छनम् = भृत्यशब्दचिह्नितम्। एतादृशापवादगोचरतामुपगतमिति यावत्। सता न्यक्करणीयम् = सद्भिस्तिरस्करणीयम्। "कृत्याना कर्त्तरि वे"ति वैकल्पिकषष्ठी। भारतविद्रोहि-

व्यक्ति जिनके अत्यधिक आग्रही या पक्षपाती है, जिन (आसेचनक दर्शन महाराज) को हम नेत्र रूपी प्यालो से पीयूषप्रवाह की भाँति देर तक पीते रहना चाहते है, जो सनातन धर्म के एकमात्र रक्षक और शरणस्थल है, जो भारतीय वीरो के कुल के मुकुटमणि है, उन्ही को आज इन कायर, चोर, जालिम धर्मध्वसक यवनो के दासपद से लाञ्छित हुए देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी शोकाकुल है।"

यह सुनकर जसवन्त सिंह ने, 'यह मुझे साफ साफ धिक्कार रहा है', यह सोचकर कुछ क्रुद्ध हो कर, 'मै भारत के द्रोही यवनो की दासता का ऐसा कार्य ही करता हूँ, जो सज्जनो द्वारा निन्दनीय है', यह सोचकर, ग्लान

यतीति ह्रीण, किमितोऽपि कथयेदिति च सकुतूहल, स्वेदापसारण-च्छलेन विविध-भाव-भङ्ग-तरङ्गितमानन पटान्तेन साच्छादन प्रोञ्छन् उपधान क्रोडे मस्थाप्य, तदुपरि च स्थापित-कफोणि, यावत् पुर पश्यति, तावत् पुनरारभत तथैव वक्तु महादेव —

"महाराज! दिक्करि-कर - दोधूय्यमान-यश पुञ्ज - पुण्डरीकस्य स्वातन्त्र्य-पोतकर्णधारस्य क्षत्रिय-कुल-कमल-दिनेशस्य उदयपुराधीश-

णाम् = आर्यावर्तघातिना यवनानाम्, वशवर्तिता = अधीनतास्वीकारणम्, मंत्र कार्यम्। ग्लान = क्षीणहर्ष। "ग्लै हर्षक्षये" इत्यस्माद् "गत्यर्थाकमके' ति कर्तरि क्त, "सयोगादेरातो धातोर्यण्वत" इति नत्वम्। उत्थानिका = भूमिका। चकित = भीत। निरुत्तरयति = उत्तरशून्य करोति। ह्रीण = लज्जित। इतोऽपि, अधिकमिति शेष। स्वेदापसारणच्छलेन = घर्मजलदूरीकरण-व्याजेन। विविधानाम् = अनेकेषाम्, भावानाम् = शोकग्लान्यादीनाम्, भङ्गै = आविर्भावतिरोभावै, तरङ्गितम् = समुत्पन्नलहरिम्, आकुलीभूतमिति यावत्। साच्छादनम् = सगोपनम्, प्रोञ्छन् = "पोछते हुए" इति हिन्दी। क्रोडे = भुजाभ्यन्तरे। स्थापितकफोणि = धृतकूर्पर। "स्यात् कफोणिस्तु कूर्पर" इत्यमर। दिक्करिणाम् = दिङ्मातङ्गानाम्। करै = शुण्डादण्डै, दोधूय्यमानम् = वार वार सञ्चाल्यमानम्, यद्यश पुञ्ज एव = यस्य कीर्तिव्रात

होकर, इन पण्डित जी की अपनी बात को कहने की यह प्रस्तावना विचित्र ही है', यह सोचकर, चकित होकर, 'यह मुझे निरुत्तर किये दे रहे हैं', यह सोचकर, लज्जित होकर, 'अब आगे और क्या कहेंगे', यह सोचकर, कुतूहला-क्रान्त हो कर, पसीना पोछने के बहाने, अपने नाना-प्रकार के विचारो से तरङ्गित मुख को, वस्त्र के छोर से छिपाते और पोछते हुए मसनद को गोद मे रखकर, उस पर हाथ की कुहनी टेककर ज्योही सामने देखा कि महादेव पण्डित ने पुन उसी प्रकार कहना प्रारम्भ कर दिया—

"महाराज! जिनका यश पुञ्ज रूपी कमल दिग्गजो की सूंड से वार-वार हिलाया जाता है (अर्थात् जिनका यश दिगदिगन्त तक व्याप्त है), जो स्वन-

श्रीप्रतापसिंहस्य कुल-प्रसूत स्त्री-रत्न यस्यार्द्धाङ्गम्, विद्युद्विनिन्दक-कृपाणकरै, घनश्मश्रु-कूर्च-समाच्छन्न-कन्धरै, वाम-पाद-कलित-राजतैककटकै, दक्षकर-कलित-कनकवलय-द्वयै, पीतरक्त-श्यामारुणार्जुन-

---

एव, पुण्डरीकम्=सिताम्भोजम् यस्य तादृशस्य। समस्तभूखण्डव्यापियशस इति वाच्योऽर्थ। स्वातन्त्र्यमेव=स्वतन्त्रतैव, पोत=नौ, तत्कर्णधारस्य=तन्नाविकस्य। क्षत्रियकुलमेव=क्षात्रान्वय एव, कमलम्=पद्म, तद्दिनेशस्य=तदुदयकारणस्य खेचराधिनायकस्य। उदयपुराधीशश्चासौ श्रीप्रतापसिंहस्तस्य श्रीप्रताप सुप्रताप सूर्यवंश्य क्षत्रिय आसीदकबर-साम्राज्यकाले। तत्पितृव्यजन्य श्रीमानसिंहस्य भगिनी "जोधाबाई" अकबर (अकबर) पट्टमहिष्यभूदिति श्रीप्रतापदेवो मानसिंहमपमानितवान्। कदाचिदसहभोजनेनेति सुमहान् सङ्ग्रामो हल्दीघट्टे सञ्जात इत्यादि सुप्रसिद्धमेव भारतीयेतिवृत्तेषु। स्त्रीरत्नम्=स्त्रीषु श्रेष्ठा। "रत्न स्वजातिश्रेष्ठेऽपी"ति नानार्थेऽमर। अर्द्धाङ्गम्=अर्द्धदेह, स्त्रीत्यर्थ। विद्युद्विनिन्दकानि=चपला-जुगुप्सा-करणानि, कृपाणानि=असय, करे येषा तै। घनेन=सान्द्रेण, श्मश्रुणा=दाढिकया, कूर्चेन=उत्तरोष्ठस्थकेशेन च समाच्छन्ना=व्याप्ता,=कन्धरा येषा तै। वामपादे=दक्षिणेतरचरणे, कलित=धारित, राजत=रजतनिर्मित, एक=अद्वितीय, कटको यैस्तै, इय तत्रत्यप्रथेति भाति। दक्षकरे=दक्षिणहस्ते, कलित कनकवलय-द्वयम्=हिरण्यकङ्कणयुगलम्, यैस्तै। पीतादिभिश्चित्राण्युष्णीषाणि येषा तै पीतादीनि चित्राणि उष्णीषाणि येषा तैरिति वा। अरुणम्=ईषद् रक्तम्,

---

न्त्रता रूपी जलयान के कर्णधार और क्षत्रियकुलरूपी कमलो के सूर्य है, उदयपुर-नरेश श्रीप्रतापसिंह के कुल मे उत्पन्न महिलारत्न जिनको धर्मपत्नी है, जो ऐसे सैकडो वीरो द्वारा 'जय-जय' ध्वनिपूर्वक वरण किये गये मरुदेश के राजसिंहासन को पदाक्रान्त (चरणाधिष्ठित) कर विराजमान है, जिनके (जिन वीरो के) हाथो मे बिजली को भी मात करने वाली कृपाणे है, जिनकी गर्दने घनी मूँछ-दाढी मे ढकी है जो बाये पैरो मे चाँदी के एक-एक कडे को पहने हुए है तथा

कर्बुर-पाण्डुर-धूसर-पाटल-चित्र-विचित्रोष्णीषै ,विविध-मणिमयहाटक-माला-सङ्घट्ट-किरणाङ्किताधिक--विकट-वक्ष स्थलै , रणाङ्गण-विपोथित-प्रत्यर्थि-सार्थ-मुकुट-मौक्तिक-मण्डलारचित-कुण्डलै , सिहसहनने , मधुनयनै , परश्शत-वीरवरै सजयजयध्वनि ध्रियमाण मरुदेश-राज-सिहासन पदा समाक्रम्य यो विराजते, यत्कथोपकथनै राजपुत्र-देश-कामिन्यो बालकान् शाययन्ति, एप दिल्लीकलङ्कोज्वरङ्गजीवोऽपि

अर्जुनम् = धवलम् । "वलक्षो धवलोऽर्जुन" इत्यमर । कर्बुरम् = चित्रम् , अनेकवर्णमिश्रणरूप न तु स्वतन्त्रम् । पाण्डुरम् = ईषत् पीत श्वेताभम्, धूसरम् = मृण्मिश्रश्वेतम् , "भूरा" इति हिन्दी । पाटलम् = पाटलपुष्पवर्णम् । गुलाबी' इति हिन्दी । विविधानाम् = अनेकप्रकाराणाम्' मणिमयहाटकमालानाम् = हीरकादिजटितसुवर्णस्रजाम्,सङ्घट्टस्य = व्रातस्य,किरणै = मयूखै ,अङ्कितम् = लाञ्छितम्, अत एव अधिकम् = बहु, विकटम् = निम्नोन्नतम्, वक्ष स्थलम् = उर स्थल येषा तै । रणाङ्गणे = सङ्ग्रामभूमौ, विपोथितानाम् = विनाशितानाम् , प्रत्यर्थिनाम् = शत्रूणाम् , सार्थस्य = व्रजस्य, मुकुटानाम् = उष्णीषाणाम्, मौक्तिकमण्डलै = मुक्ताप्रकरै , अरचितानि = निर्मितानि, कुण्डलानि येषा तै । सिहसहननै = वराङ्गरूपोपेतै । 'वराङ्गरूपोपेतो य सिहसहननो हि स" इत्यमर । अतीव सुन्दरैरित्यर्थ । मधुनयनै = मत्तनेत्रै । परश्शतै = अगणनीयै , वीरवरै = श्रेष्ठैर्बलिभि , ध्रियमाणम् = स्वीक्रियमाणम् । यत्कथानाम् = यच्चरितानाम्, उपकथनै = वर्णनै । बालकान्

दाहिने हाथो मे सोने के दो-दो कडे धारण किए हुए है, जिनकी पगडिया पीली, लाल, काली, अरुण, सफेद, चितकबरी, हल्की पीली, मटमैली, गुलाबी आदि विभिन्न रगो की है, जिनके वक्ष स्थल विविध प्रकार की मणियो से युक्त सोने की मालाओ की किरणो से अङ्कित होने के कारण और अधिक भयङ्कर प्रतीत होते है, जिन्होने युद्ध-भूमि मे मारे गये शत्रुसमूह के मुकुटो के मोतियो से कुण्डल बना लिये है, जिनका शरीर सिह के समान है और जिनकी आखे नशीली है, जिन (महाराज जसवन्त सिंह) की कहानियाँ सुना-सुनाकर

सिप्रातीरे यद्बाहुविक्रममवलोक्य, क्षणमनिमेषो विस्मृतात्मदेहो विस्मितस्तस्थौ, सदैव यतो बिभेति, साहाय्य च समपेक्षते, अस्मिन् विश्वस्मिन्नपि भारते वर्षे, नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च यस्य क्षेमाय विजयाय बलवृद्ध्यै राजसमृद्ध्यै विपुल-सम्पत्त्यै रिपुनिकर-हत्यै च द्विजवरा हस्तावुन्नमय्य, सनाम-सङ्कीर्त्तन-माशीराशीनुच्चारयन्ति, 'अस्मास्वपि केचन वीरा ऊर्जस्वलयशसस्ते महापुरुषा सन्ति' इति य वार वार स्मार स्मार वय सर्वेऽप्यभिमन्यामहे, स एव महावीर, स एव भारत-रत्नम्, स एव राजकुल-भूषणम्, स एव च धर्मधारिधौरेय अद्य यवनाना पक्षमवलम्ब्य स्वकीयानामेव

शाययन्ति=स्वापयन्ति, तच्चरितक्रूरता निशम्य भीता वाला स्वपन्तीति तत्त्वम् । सिप्रातीरे=सिप्रातटे । उज्जयिनीभूषणायिता मालवविहारिणी सिप्रा नदी । विस्मृतात्मदेह =अविगणितस्वशरीर । विस्मित =विलक्ष । विश्वस्मिन्नपि=सम्पूर्णेऽपि । क्षेमम्=कल्याणम्, लब्धसरक्षणरूपम् । रिपुनिकरस्य=शत्रुव्रजस्य, हति =मारणम्, तस्यै । हत्यै, इत्यत्र "अनजि चे"ति वैकल्पिक द्वित्वम् । ऊर्जस्वलयशस =विपुलकीर्त्तय । धर्मधारिधौरेय =धार्मिकाग्रेसर । स्वकीयानामेव=स्वदेशीयाना स्वगो-

---

राजपूताने की महिलाये बच्चो को सुलाया करती है, शिप्रा नदी के किनारे जिनके भुजपराक्रम को देखकर दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब भी थोडी देर के लिये निर्निमेष, आत्मविस्मृत और विस्मित हो गया था, और वह जिनसे सदैव डरता रहता है, तथा जिनकी सहायता की अपेक्षा करता है, इस सम्पूर्ण भारतवर्ष मे नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, घर-घर और मन्दिर-मन्दिर मे जिनके कल्याण, विजय, बल-वृद्धि, राज्यसमृद्धि, विपुल सम्पत्ति की प्राप्ति और शत्रुसमूह के नाश के लिये, श्रेष्ठ ब्राह्मण, दोनो हाथ उठाकर, नाम लेकर, आशीर्वाद उच्चारण करते है, जिनको हम लोगो मे भी कुछ 'वीर और महिमाशाली महापुरुष है', इस प्रकार बार-बार स्मरण कर, हम सब लोग अभिमान (स्वाभिमान का अनुभव) करते है, उन्ही महावीर, भारतरत्न, राजकुलभूषण, धार्मिको मे श्रेष्ठ महाराज

शिरास्युच्छेत्तु चतुरङ्गिणी सेना सज्जितवानस्तीत्यवलोक्य क्षुभित महाराष्ट्र-राजस्य हृदयम् ।"

यशस्विसिह किञ्चिल्लज्जया तिर्यग्वदन विमनायमानमिवावलोक्य पुन —

"वीरवर ! साधारणोऽह दूत , महाराजै सह कथमालपनीयमिति भाषण-परिपाटीमपि न जानामि-इति भाषण-भङ्गीवैधुर्य-प्रयुक्तोऽपराधो भवेच्चेत् क्षन्तव्य , किन्तु निरीक्ष्यताम् किमर्थेय रणसज्जा ? किमर्थ एष महोपकार्या–सन्निवेश ? किमिति भयानकभल्ला भासन्ते ? किमिति चञ्चलाश्चन्द्रहासाश्चमत्कुर्वन्ति ? कमश्वयितुमेते सादिन ? क च भस्मसात्कर्तु ज्वालाजटिल एष भव-

त्राणा च । उच्छेत्तुम् = कर्तितुम् । क्षुभितम् = आविलम्, व्याकुलमित्यर्थ । तिर्यग्वदनम् = साचीकृतमुखम् । भाषणपरिपाटीम् = कथनशैलीम् । भाषण-भङ्गीवैधुर्य-प्रयुक्त = कथन-प्रकार-शून्यताजन्य । किमर्था = किम्प्रयोजनिका । महोपकार्यासन्निवेश = महाशिबिरविन्यास । अश्वयितुम् = अश्वैराक्रमितुम् । सादिन = अश्वारोहा । भस्मसात्कर्तुम् = दग्धुम् । ज्वाला-

ने आज यवनो का पक्ष लेकर अपने ही लोगो का सिर काटने के लिये चतुरङ्गिणी सेना सजाई है, यह देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी का हृदय क्षुब्ध हो रहा है।"

जसवन्तसिह कुछ लज्जित से होकर, मुँह घुमाकर, अनमने से हो गये। उन्हे इस प्रकार अन्यमनस्क सा देखकर महादेव पण्डित पुन कहने लगे—

"वीरवर ! मै सामान्य दूत हूँ। महाराजाओ के साथ किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, यह (वार्तालाप का ढग) भी मै नहीं जानता हूँ, अत यदि, अपनी बात को ठीक तरह से कह सकने की कला न जानने के कारण, वार्तालाप मे कोई अशिष्टता या अपराध हो गया हो, तो क्षमा कीजिये। किन्तु यह देखिये कि युद्ध की यह तैयारी किस लिये है ? ये भीषण भाले क्यो चमक रहे है ? ये चञ्चल तलवारे क्यो चमचमा रही है ? तथा आपकी यह

त्कोप-दावानल ? किं ये भवन्तमाशिषो ब्रुवन्ति, तेषामेव रक्तै रेणुकाराशिमरुणयितुम् ? ये भवन्माहात्म्य-समाकर्णनेन मोदन्ते, तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम् ? ये भवन्तं निजकुलावतंसं मन्यन्ते, तेषामेव वंशं ध्वंसयितुम् ? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीन-कन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णैः प्रजानां मस्तकैर्नयनैश्च चिक्रीडन्ति, तानेव वैदिक-मर्य्यादा-विलोपन-व्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम् ? महाराज ! यथा श्येनो वज्र-निष्पेष-निष्ठुरैर्निज-चञ्चु-चरणाघातैर्दीनान् भयविह्वलान् पतत्रिणो निहत्य व्याधाय समर्पयति, स्वयं च वधमात्रफलभाग् भवति,

जटिल =ज्वालावर्द्धित, ब्रूमो दुह्यादित्वेन भवन्तमाशिष इत्युभयस्यापि कमत्व बोध्यम् । रेणुकाराशिम्=धूलिव्रातम् । अरुणयितुम्=रक्तयितुम् । मेदोभि =विस्रैः । "मेदस्तु पलतेज स्तलोद्भवम् । विस्रमस्थिकरस्नेहवर गातममित्यपी'ति वैजयन्ती । मेदिनीम्=धरणीम् । मेदस्विनीम्=विस्रमयीम् । निर्मातुम्=कर्त्तुम् । निजकुलावतंसम्=स्वान्वयसम्भूतम् । निरर्थम् निष्प्रयोजनम् । लुण्ठन्ति=चोरयन्ति । सद्योवृक्णैः =तत्काल-कृत्तैः । चिक्रीडन्ति=वार वार क्रीडा कुर्वन्ति । वैदिकमर्यादाया =आर्यपद्धते, विलोपनम्=विनाशनमेव, व्रत तद् येषामस्तीति तान् । "अत इनिठनौ" । वर्द्धयितुम्=वृद्धयितुम् । श्येन =पक्षिघाती पक्षी । वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः =कुलिश-पतन-कठोरैः । निजचञ्चु-चरणाऽऽघातैः =स्वत्रोटिपादमारणैः । भयविह्वलान्=

उद्दीप्त क्रोधाग्नि किसको भस्मसात करना चाहती है ? क्या जो आपको आशीर्वाद देते हैं, उन्ही के रक्त से धूलि को रञ्जित करने के लिये ? जो आपको अपने कुल का भूषण समझते हैं, उन्ही के वंश का विध्वंस करने के लिये ? जो अकारण ही असहायों को लूटते है, मन्दिरो को ध्वस्त करते है, तत्काल काटे गये प्रजा के मुण्डो और नेत्रो से बार-बार खेलते हैं, उन्ही वेद की मर्यादा को लुप्त कर देने का व्रत धारण करने वाले नीच शत्रुओ को बढावा देने के लिये ? महा ज ! बाज पक्षी अपनी चोच और चगुल के वज्रपात के समान

तथाभूत व्रत न शोभते श्रीमति, यन्निरर्थं स्वतन्त्रा अपि प्रजा विजित्य, केवलमविचार–व्यभिचार–प्रचाराय धूर्तानामेषां यवनानां हस्ते समर्प्यन्ते। क्षत्रिय-व्याघ्र! किमहं कथयामि? स्वयमेव विवेच्योऽयं विषय।"

अथ काश्चित् क्षणान् शिर कण्डूयनैरेव यापयित्वा किञ्चिद्व्रीणोऽपि त्रपां संवृण्वन्निव शनैरवादीद् मरुराज।

यशस्वि०—दूतवर! साधु, तव भाषण–भङ्गीमत्यन्त प्रशंसे। न तव भाषणे गौरवमवगूर्य्यते, पदवैधुर्यं ध्रियते, प्रसादो निरस्यते, मशयापादक—पद—प्रचयो वा प्रचीयते। विलक्षणं तव पाटव-

भीतिकातरान्। पतत्रिण = पक्षिण। द्वितीयान्तम्। व्याधाय = मृगयवे। समर्पयति = ददाति। व्याधा श्येनान् पालयन्ति, तद्द्वारा चासेट कारयन्तीति लोकप्रसिद्धम्। वधमात्रस्य = केवलमारणस्य, फल भजति तथाभूत। अविचारस्य = अविवेकस्य, व्यभिचारस्य = मर्यादालङ्घनस्य च प्रचाराय। क्षत्रिय-व्याघ्र! = राजन्यश्रेष्ठ! विवेच्य = विचारणीय।

शिर कण्डूयनै = शिर खर्जनै। लज्जितस्योत्तरदीवत्त्रयुतस्य च ग्लानिसूचकमिदम्। त्रपाम् = ह्रियम्। सवृण्वन् = आच्छादयन्। गौरवम् =

कठोर प्रहार से दुर्बल और भयभीत पक्षियो को मारकर व्याध को सौंप देता है और स्वय केवल हिंसा के फल का ही भागी होता है, (किन्तु) उक्त बाज पक्षी के समान आचरण श्रीमान् को शोभा नही देता, कि आप अकारण ही स्वतन्त्र प्रजा को भी जीतकर, केवल अविवेक और दुराचार के प्रचार के लिये, इन धूर्त यवनो के हाथ में सौप रहे है। क्षत्रियश्रेष्ठ। मै क्या कहूँ? इस विषय पर आप स्वय ही विचार करें।"

इसके पश्चात् कुछ क्षणो तक सिर खुजलाते हुए से, कुछ लज्जित होते हुए भी लज्जा को छिपाते हुए से जसवन्तसिंह, मन्द स्वर से बोले—

जसवन्त सिंह—दूतवर! शाबाश। तुम्हारी वार्तालाप की कला की मैं बहुत सराहना करता हूँ। तुम्हारी उक्तियो मे गौरव का अभिघात नही होता,

रकोप-दावानल ? किं ये भवन्तमाशिषो ब्रुवन्ति, तेषामेव रक्तै रेणुकाराशिमरुणयितुम् ? ये भवन्माहात्म्य-समाकर्णनेन मोदन्ते, तेषामेव मेदोभिर्मेदिनी मेदस्विनी निर्मातुम् ? ये भवन्त निजकुलावतंस मन्यन्ते, तेषामेव वंश ध्वंसयितुम् ? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीन-कन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णै प्रजाना मस्तकैर्नयनैश्च चिक्रीडन्ति, तानेव वैदिक-मर्य्यादा-विलोपन-व्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम् ? महाराज ! यथा श्येनो वज्र-निष्पेप-निष्ठुरैर्निज-चञ्चु-चरणाघातैर्दीनान् भयविह्वलान् पतत्रिणो निहत्य व्याधाय समर्पयति, स्वय च वधमात्रफलभाग् भवति,

जटिल =ज्वालावर्द्धित, ब्रूनो दुह्यादिन्वन भवन्तमाशिष इत्युभयस्यापि कमत्व वोध्यम्। रेणुकाराशिम् = धूलिव्रातम्। अरुणयितुम् = रक्तयितुम्। मेदोभि = विस्रै। "मेदस्तु पलतेज गलोद्भवम्। विस्रमस्थिकरस्नेहवर गौतममित्यपी'ति वैजयन्ती। मेदिनीम् = धरणीम्। मेदस्विनीम् = विस्रमयीम्। निर्मातुम् = कर्त्तुम्। निजकुलावतंसम् = स्वान्वयसम्भूतम्। निरर्थम् निष्प्रयोजनम्। लुण्ठन्ति = चोरयन्ति। सद्योवृक्णै = तत्काल-कृत्तै। चिक्रीडन्ति = वार वार क्रीडा कुर्वन्ति। वैदिकमर्यादाया = आयपद्धते, विलोपनम् = विनाशनमेव, व्रत तद् येपामस्तीति तान्। "अत इनिठनौ"। वर्द्धयितुम्= बृहयितुम्। श्येन = पक्षिघाती पक्षी। वज्रनिष्पेपनिष्ठुरै = कुलिश-पतन-कठोरै। निजचञ्चु-चरणाऽऽघातै = स्वत्रोटिपादमारणै। भयविह्वलान् =

उद्दीप्त क्रोधाग्नि किसको भस्मसात् करना चाहती है ? क्या जो आपको आशीर्वाद देते है, उन्ही के रक्त से धूलि को रञ्जित करने के लिये ? जो आपको अपने कुल का भूषण समझते है, उन्ही के वंश का विध्वस करने के लिये ? जो अकारण ही असहायो को लूटते है, मन्दिरो को ध्वस्त करते है, तत्काल काटे गये प्रजा के मुण्डो और नेत्रो से वार-वार खेलते है, उन्ही वेद की मर्यादा को लुप्त कर देने का व्रत धारण करने वाले नीच शत्रुओ को बढावा देने के लिये ? महाराज ! वाज पक्षी अपनी चोच और चगुल के वज्रपात के समान

तथाभूत व्रत न शोभते श्रीमति, यन्निरर्थं स्वतन्त्रा अपि प्रजा विजित्य, केवलमविचार-व्यभिचार-प्रचाराय धूर्तानामेषा यवनाना हस्ते समर्प्यन्ते । क्षत्रिय-व्याघ्र ! किमह कथयामि ? स्वयमेव विवेच्योऽय विषय ।"

अथ काश्चित् क्षणान् शिर कण्डूयनैरेव यापयित्वा किञ्चिद्व्रीणोऽपि त्रपा संवृण्वन्निव शनैरवादीद् मरुराज ।

यशस्वि०—दूतवर ! साधु, तव भाषण-भङ्गीमत्यन्त प्रशसे । न तव भाषणे गौरवमवगूर्य्यते, पदवैधुर्य ध्रियते, प्रसादो निरस्यते, मशयापादक—पद—प्रचयो वा प्रचीयते । विलक्षण तव पाटव-

भीतिकातरान् । पतत्रिण =पक्षिण । द्वितीयान्तम् । व्याधाय = मृगयवे । समर्पयति = ददाति । व्याधा श्येनान् पालयन्ति, तद्द्वारा चाखेट कारयन्तीति लोकप्रसिद्धम् । वधमात्रस्य = केवलमारणस्य, फल भजति तथाभूत । अविचारस्य = अविवेकस्य, व्यभिचारस्य = मर्यादालङ्घनस्य च प्रचाराय । क्षत्रिय-व्याघ्र ! = राजन्यश्रेष्ठ ! विवेच्य = विचारणीय ।

शिर कण्डूयनै = शिर खर्जनै । लज्जितस्योत्तरदावल्ययुतस्य च ग्लानिसूचकमिदम् । त्रपाम् = ह्रियम् । सवृण्वन् = आच्छादयन् । गौरवम् =

कठोर प्रहार से दुर्बल और भयभीत पक्षियो को मारकर व्याध को सौप देता है और स्वय केवल हिंसा के फल का ही भागी होता है, (किन्तु) उक्त बाज पक्षी के समान आचरण श्रीमान् को शोभा नही देता, कि आप अकारण ही स्वतन्त्र प्रजा को भी जीतकर, केवल अविवेक और दुराचार के प्रचार के लिये, इन धूर्त यवनो के हाथ मे सौप रहे है । क्षत्रियश्रेष्ठ । मै क्या कहूँ ? इस विषय पर आप स्वय ही विचार करें ।"

इसके पश्चात् कुछ क्षणो तक सिर खुजलाते हुए से, कुछ लज्जित होते हुए भी लज्जा को छिपाते हुए से जसवन्तसिंह, मन्द स्वर से बोले—

जसवन्त सिंह—दूतवर ! शाबाश । तुम्हारी वार्तालाप की कला की मैं बहुत सराहना करता हूँ । तुम्हारी उक्तियो मे गौरव का अभिघात नहीं होता,

मालापेषु, गहन-गहनै, कोमल-कोमलै, मधुर-मधुरै, वाचा विलासैर्मनो हरसि। यदेव वक्तु प्रवर्त्तसे, तन्मूर्तिमिव पुरो विलिखसि, यदेव वक्तुमीहसे, तदासार-प्रसारैरिव परित प्लावयसि। धन्य शिवो यस्त्वादृशान् कल्पना-केसरिणो दूतत्वे नियुनक्ति। त्वदुक्ति-श्रवण-विरिरसैव न भवत्यस्माकम्।

महा०—महाराज! एप साधारणोऽस्ति दूतो न जानीते उचितमनुचित वेति सर्वथा क्षमा-भिक्षुरेप जन। (इति नतकन्धर समास्थित।)

श्रेष्ठचम्। अवगूर्यते = छिनत्ति। पदवैधुर्यम् = उत्थिताकाङ्क्षासाशमनाय समपेक्षितपदशन्यता। न ध्रियते = नावतिष्ठते। प्रसाद = स्पष्टार्थतात्मा गुण। निरस्यते = क्षिप्यते। अमु क्षेपणे"। सशयापादकानाम् = सन्देहजनकानाम्, पदानाम्, प्रचय = आधिक्यम्। प्रचीयते = वर्धते, निरर्थकपदराहित्यमिति यावत्। पाटवम् = पटुता। गहनगहनै = अतिगम्भीरार्थै, तन्मूर्त्तिम् = तत्स्वरूपम्। ईहसे = वाञ्छसि। तदासार-प्रसारै = तद्धारासम्पातप्रपात। गौणोऽय प्रयोग। "धारासम्पात आसार" इत्यमर। कल्पनाकेसरिण = नवनवविचारमृगेन्द्रान्, तादृशविचारपटनिति यावत्। त्वदुक्ते = त्वद्भाषणस्य, श्रवणात् = आकर्णनात्, विरिरसा = विरन्तुमिच्छा।

उनमे पदो की न्यूनता का अनुभव भी नही होता ह, उनमे न तो प्रसाद गुण का अभाव ह आर न सशयात्मक शब्दो का बाहुल्य, तुम्हारी वार्तालाप की कुशलता अद्भुत ह। अत्यन्त गूढ, सुकोमल और मधुरतम वचनविन्यास से तुम मन को मुग्ध कर देते हो। जो भी कहना प्रारम्भ करते हो, मानो उसका चित्र ही सामने खीच देते हो। जो चाहते हो उसे मानो वर्षा की धारा से सवत आप्लावित कर देते हो। शिवाजी धन्य है, जिन्होने तुम्हारे जैसे कल्पनाकुशलो (प्रतिभाशालियो) को दूत नियुक्त किया है। तुम्हारी वातो को सुनने से हमारा मन ही नही ऊवता है।

महादेव पण्डित—महाराज! मैं साधारण दूत हूँ, उचित या अनुचित नही जानता, अत सर्वथा क्षमा-प्रार्थी हूँ।

(यह कह कर महादेव पण्डित सिर झुकाये बैठे रहे।)

यश०—अथ प्रकृतमाकलय। न खल्वस्माभी राजपुत्र-देशीय-क्षत्रियैर्भयेन वा, लोभेन वा, कस्याप्युपचिकीर्षया वा, अपचिकीर्षया वा यवन-हस्तेष्वात्मा समर्पित । अस्माभिरेव वारसहस्र यवना खङ्गै खण्डश कृता , अस्माभिरेव वार वार ते आसिन्धुकूल विद्राविता , पारतन्त्र्य--कलङ्कमसहमानानामस्माकमेव नवनीतकोमला रमण्यो ज्वाला-जाल-जटालेषु ज्वलनेषु आत्मान ज्वलयाम्बभूवु । एवमेवाऽऽपदोऽनुभवतामस्माक वत्सराणा शतकानि व्यतीतानि । न जानीमहे किमिवेहित भगवत्या महामायाया , यदितोऽपि अधिकार-वैशिष्ट्यमेव कलयति भारत-विद्रोहि-सन्दोह । वय च अनिच्छन्तोऽपि आत्म-

क्षमाभिक्षु =क्षमाप्रार्थी । नतकन्धर =नमितग्रीव । समास्थित = स्थितोऽभूत् । "समवप्रविभ्य स्थ" इत्यात्मनेपदम् ।

उपचिकीर्षया =उपकर्तुमिच्छया । अपचिकीर्षया =अपकर्तुमिच्छया । वाराणा सहस्र वारसहस्रम् =अनेकवारम् । आसिन्धुकूलम् = सिन्धुनदतटपर्यन्तम् । अभिविधावाङ् । विद्राविता =उत्सारिता । पारतन्त्र्यम् =पराधीनतैव, कलङ्क, तम् । नवनीतकोमला =हैयङ्गवीनमृद्व्यश्च । ज्वालाजालै =कीलमालाभि , जटालेषु =उपचितेषु । ज्वलनेषु = दहनेषु । ईहितम् =चेष्टितम् । महामायाया ='अजामेकामि"ति श्रुताया सकलजगदुद्भवस्थितिनिरोधलीलाया अगणितगुणगणसमुचितकलेवराया अपि त्रिगुणात्मिकाया । अधिकारवैशिष्ट्यम =विशिष्टमधिकारम् । कलयति =

जसवन्त सिह—अच्छा, अब वार्तालाप के मुख्य विषय पर आओ । हम राजस्थान के क्षत्रियो ने भय से या लोभ से, या किसी का उपकार या अहित सोचकर, यवनो के हाथो मे अपने को नही सौप दिया है । हम लोगो ने ही हजारो बार यवनो को तलवारो से टुकडे-टुकडे किया, हम लोगो ने ही कई बार इनको सिन्धु के तट तक भगाया है, पराधीनता के कलङ्क को सहन न करने वाले हम लोगो की ही नवनीत के समान कोमल ललनाओ ने ज्वालाओ के समूह से प्रदीप्त अग्नि मे आत्माहुति दी है । इसी प्रकार की आपत्तिओ को सहन करते हुए हमे सैकडो वर्ष बीत गये । न जाने भगवती महामाया को क्या

नस्तद्धस्तगतानेव पश्याम । अधुना तु विश्वस्मिन्नपि राजपुत्रदेशे तेषा तथाऽधिकारोऽस्ति, यत् केवलमात्मोच्छेदायैव तै सह विरोध स्यात्—इति किमिव क्रियेत ? भाग्यैरेतेषा कदर्य्याणा परस्परमैक्य-मपि नास्ति अस्माकम् । तद् यथोचित निर्वहाम ।

महा०—महाराज ! सम्यगवैमि, मा स्म भूद् राजपुत्रदेशे तादृश यौष्माकीण-बलम्, परमस्मिन् देशे तु यवनानामधुनाऽपि तथा प्रबलोऽधिकारो न सवृत्तोऽस्ति। शतशो दुर्गाणि सन्ति, यवन-रुधिर-तृषित-खड्गप्रचयोद्भासित-भुजा सहस्रशो महाराष्ट्रव्याघ्रा सञ्चरन्ति।

धारयति। भारतविद्रोहिसन्दोह =हैन्दवप्रत्यर्थिनिकर, यवना इत्यर्थं । आत्मोच्छेदाय =स्वविध्वसनाय । कदर्य्याणाम् =कुत्सिताचरणानाम् । निर्वहाम =समय यापयाम ।

युष्माकमिद यौष्माकीण तच्च तद् बलम् =सामर्थ्यम् । शैषिकेऽणि "तस्मि-न्नणि च युष्माकास्माकावि"ति युष्माकादेश । यवनानाम् =म्लेच्छानाम्, रुधिरस्य =लोहितस्य तृषितानाम् =पिपासितानाम्, खड्गानाम् =असीनाम्, प्रचयै =निकरै, उद्भासिता =चञ्चद्भास, भुजा =बाहवो येषा ते।

अभीष्ट है कि इतने पर भी भारतवर्ष के शत्रुओ का समूह, और भी अधिक अधिकार प्राप्त करता जा रहा है और हम लोग न चाहते हुये भी अपने को उनके हाथ (अधिकार) मे देख रहे है। इस समय तो समस्त राजपूताने पर उनका ऐसा अधिकार है कि उनसे विरोध करने का अर्थ केवल अपना विनाश करना ही है । इस दशा मे क्या किया जाये ? इन दुराचारियो के भाग्य से हम लोगो मे परस्पर एकता भी नही है, अत हम समय के अनुरूप ही किसी प्रकार निर्वाह कर रहे है ।

महादेव—महाराज ! मै (आप की बात को) भली-भाँति समझता हूँ। भले ही राजपूताने मे आप लोगो की वैसी सामर्थ्य न हो, परन्तु यहाँ तो (महा-राष्ट्र मे) अभी तक यवनो का उतना प्रबल अधिकार नही हो पाया है । सैकडो दुर्ग है, यवनो की रक्त की प्यासी तलवारो से सुशोभित भुजाओ वाले सहस्रो

एषा च सर्वोऽपि वीरता-धुरन्धरान् क्षत्रियकुलमणीन् भारत-गौरवाश्रयान् दत्त-म्लेच्छ-हस्तावलम्बनान् युष्मानवलोक्य रोदिति। युष्मदग्रे सर्वोऽपि बद्ध-कर-सम्पुट । राज्यमेतदखिल भावत्कम्, शिववीरोऽपि भवता स्वसेनापतिष्वेवान्यतमोऽङ्गीक्रियताम्, दिल्लीश्वरेण च सह युद्धमारभ्यताम्। यो यौवराज्य-समय एव महासमरे चित्रार्पित इव चकितीकृतो भवता, य प्राप्त-साम्राज्य-सिंहासनोऽपि बिभ्यदिव श्रीमन्तमितस्ततो महायुद्धेषु सम्प्रेष्य श्रीमदनिष्ट शुश्रूषते, स सर्वदा दण्डेनैव शिक्षणीय आर्य । अस्मिन् महा-

---

महाराष्ट्रव्याघ्रा = श्रेष्ठा महाराष्ट्रदेशीया । सर्वोऽपि, अस्य 'मध्ये' इत्यादौ, 'जन' इति चान्ते शेष । दत्तम्लेच्छहस्तावलम्बनान् = यवनसाहाय्यकारिण । बद्धकरसम्पुट = कृतहस्ताञ्जलि । भावत्कम् = भवदीयम् । अङ्गीक्रियताम् = स्वीक्रियताम् । सेनापतिमेव जानीहीति यावत् । यौवराज्यसमये = राज्याधिकारप्राप्त्यवसरे । चित्रार्पित इव = चित्रलिखित इव । चकितीकृत = साश्चर्यीकृत । यशस्विसिंहेनावरङ्गजीवस्य चादौ प्रत्यक्ष युद्धमभूत्, पश्चादपि चान्त कलह आसीदितीतिवृत्तेषु प्रसिद्धम् । प्राप्तसाम्राज्यसिंहासनोऽपि = लब्धचक्रवर्त्तित्वपदोऽपि । बिभ्यदिव = भय कुर्वाण इव । वत इति शेष । शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति । दण्डेनैव = न तु सामादिभि ।

महाराष्ट्रकेसरी घूम रहे हैं। इनमे से सभी वीरश्रेष्ठ, क्षत्रियकुलभूषण और भारत की प्रतिष्ठा के आश्रयभूत आप को म्लेच्छो का सहायक बनते देखकर रो रहे हैं। आप के आगे सभी बद्धाञ्जलि है। यह सम्पूर्ण राज्य आप का है। शिवाजी को भी आप अपने सेनापतियो मे से एक मान लीजिए और दिल्लीश्वर से युद्ध छेड दीजिये। जिसे आपने युवराज होते ही महायुद्ध मे चित्रलिखित की भाँति चकित कर दिया था, जो सम्राट् का सिंहासन प्राप्त करके भी (आप से) डरता हुआ-सा आपको इधर-उधर महायुद्धोमे भेज कर, आपका अनिष्ट सुनना चाहता है, उसको तो आप दण्ड से ही शिक्षा दीजिये।

कार्ये श्रीमत्प्रतिवेशी आमेर-देशाधीशो न सह युङ्क्ते भवता चेन्निज-भक्तो महाराष्ट्रराज एव विधेयो विधीयताम्। ऐक्य नास्तीति मा स्म भूच्छोक श्रीमताम्। उद्योगेनैक्यमारभ्यताम्।

शिवो भारतीयाना पारतन्त्र्य नावलुलोकयिषति। राज्यलोभस्तु तस्य नास्ति इति विजये राज्यमिदमप्यत्र भवतामेव भवेत्, किन्तु यथा भारत-द्रुहा यवनाना प्राबल्येन प्रत्यहं धर्मलोपो न स्यात्, तथैव शिवस्याभिप्राय।

यश०—राज्यं त्वस्माकमपि बह्वस्ति। वयमपि गर्द्धाभिभूता न स्म। शिवस्योद्देश्यं चाखिलं प्रशस्यमस्ति। वयमपि शिवमवलोक्य क्षत्रियकुलस्य च सारवत्तामाकलय्य मोदामहे, किन्तु शिवस्य व्यापा-

---

श्रीमत्प्रतिवेशी = भवत्पार्श्वदेशस्थ। सहयुङ्क्ते = सहयोग करोति। विधेय = आज्ञाकारी।

पारतन्त्र्यम् = वैदेशिकाधिपत्यम्। अवलुलोकयिषति = द्रष्टुमिच्छति। भारतद्रुहाम् = हैन्दवद्रोहकारिणाम्। क्विबन्तम्। प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्।

गर्द्धया = अतिलोभेन, अभिभूता = तिरस्कृता। प्रशस्यम् = अतिश्लाघ्यम्। सारवत्ताम् = बलयुक्तताम्। व्यापारेषु = कार्येषु।

इस महान् कार्य मे यदि आपके पडोसी आमेर के राजा आपको सहयोग नही दे, तो अपने भक्त शिवाजी को ही सेवक बना लीजिये। 'एकता नही है,' यह चिन्ता आप न करे। (एकता के लिये) उद्योग करके एकता का प्रारम्भ कीजिये।

शिवाजी भारतीयो की परतन्त्रता नही देखना चाहते। राज्य का लोभ तो उन्हें है नही, अत विजय प्राप्त हो जाने पर यहाँ भी आप का ही राज्य रहे, किन्तु जैसे भी हो, भारत के द्रोही यवनो की प्रतिदिन की प्रबलता से धर्म का लोप न हो, यही शिवाजी का अभिमत है।

जसवन्तसिंह—राज्य तो हमारा भी बहुत (बडा) है, लोभ से तो हम भी आक्रान्त नही है और शिवाजी का सम्पूर्ण उद्देश्य भी श्लाघ्य है। हम भी शिवाजी को देखकर तथा क्षत्रिय वश की शक्ति को सोचकर प्रसन्न होते है,

रेऽवेकमेवास्मभ्यं न रोचते, यदेष चौराणा लुण्ठकाना च वृत्त-मनुसरति इति ।

महा०—महाराज ! मैवम् , किं कुत्रापि कुतश्चिदपि समश्रौषीत् श्रीमान्, यद् निरपराधान् पथिकान् लुण्ठति महाराष्ट्र-राज ? आहो-स्वित् कस्यापि भित्तिं भित्त्वा धनमपजहार श्रीमान् ? किन्तु लुण्ठ-कानामेषामत्याचारमसहमानो लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुस्तथैतान् दण्ड-यति । सन्ति प्रबला परिपन्थिन , भवादृशाश्च तेषामेव दत्तहस्ता-वलम्बना । धर्मो हि सर्वथा रक्षणीय । सतीत्वध्वसनमन्दिरा-वपातादिरूपो घोरतरो दुराचार सर्वथा प्रतिरोद्धव्य । आततायिन-श्चावश्यमेव दण्डनीया —इति स्ववचन परवशतया नीतिविशेषस्यापि आश्रयोऽपेक्ष्यत इति किमिय लुण्ठकता ?

अस्मभ्य न रोचते = अस्मत्प्रीतिकरो न भवति। "रुच्यर्थाना प्रीयमाण" इति सम्प्रदानसञ्ज्ञा ।

समश्रौषीत् = सम्यक् श्रुतवान् । निरपराधान् = दोषरहितान् । भित्तिम् = कुड्यम् । भित्त्वा = त्रोटयित्वा । सन्धि कृत्वेति यावत् । अपजहार = चोर-यामास । एषाम् = यवनानाम् । दण्डयति = पीडयति । परिपन्थिन = विरोधिन । सतीत्वध्वसन-मन्दिरावपातादिरूप = पातिव्रत्यविनाशन-देवालयविध्वसरूप । आततायिनश्चावश्य दण्डनीया ।

किन्तु शिवाजी के कार्यों मे एक ही हमे अच्छा नही लगता कि वे चोरो और लुटेरो के आचरण का अनुकरण करते है ।

महादेव—महाराज ! ऐसा मत कहिए । क्या आपने कही भी किसी से भी यह सुना है कि शिवाजी निर्दोष यात्रियो को लूटते है ? या उन्होने किसी की दीवाल खोदकर धन चुराया है ! किन्तु इन लुटेरो (यवनो) के अत्याचारो को सहन न कर सकने वाले वे (शिवाजी) इन लुटेरो को ऐसा दण्ड देते है, जिससे ये लूट ही न सके । शत्रु प्रबल हैं, और आप जैसे लोग भी उन शत्रुओ की ही सहायता करते है, जैसे भी हो धर्म की रक्षा करनी है, सतीत्व का अपहरण, मन्दिरो का विध्वस आदि दारुण दुराचार रोकना है और आततायियो

दिल्ली-कलङ्कस्तु प्राधान्येन श्रीमन्तमेव द्वेष्टि। श्रीमानपि तद् दुराचारमसहमान शिवापेक्षयाऽप्यधिकतरस्तच्छत्रु। श्रीमताऽपि शठे शाठ्यमिति मुद्रया कूटनीतिरङ्गीक्रियेत चेत्, किमिय लुण्ठकता स्यात् ?

यश०—[दीर्घमुष्ण नि श्वस्य] अथ मा किमभिदधाति शिवराज ?

महा०—महाराज ! स श्रीमत साहाय्यमभय च वाञ्छति।

"आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्।
नाऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥"

"आततायी वधार्हण" इत्यादिभि शतश स्मृतिपुराणेतिहासवचनैस्तेषा दण्डनीयत्व सुव्यक्तम्। परवशतया = परवत्तया, आवश्यकतयेति यावत्। नीतिविशेषस्य = "व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिन" इत्येवरूपस्य।

अधिकतर = श्रेष्ठतर। तच्छत्रु, "शठ प्रति चरेच्छाठ्यमि"ति समाश्रयत शत्रुत्व मित्रव्याजाच्छन्न न दोषावहम्।

"रामकृष्णेन्द्रादिदेवै कूटमेवाऽऽदृत पुरा"

इत्यादिवचनशतेन नीतिकारै सेतिहासप्रदर्शन समर्थितमावश्यक चेदमिति मन्तव्यम्।

को दण्ड देना भी अनिवार्य है, अत कही कही विवशता के कारण विशिष्ट नीति के आश्रय की अपेक्षा होती है, तो क्या यह लुटेरापन है ?

दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब तो आप से ही द्वेष करता है। श्रीमान् भी उसके अनाचार को न सहन करने के कारण उसके शिवाजी से भी बडे शत्रु हैं। यदि आप भी 'दुष्ट के साथ दुष्टता' के सिद्धान्त के अनुसार कूटनीति का सहारा ले तो क्या यह लुटेरापन होगा ?

जसवन्त सिह—(दीर्घ और उष्ण निश्वास लेकर) तो शिवाजी मुझसे क्या कहते हैं ?

महादेव—महाराज ! वे आप से सहायता तथा अभय चाहते हैं।

यश०—दिल्लीश्वरेण सह कृतप्रतिज्ञ कथमन्यथा विधास्यामि ?

महा०—भगवन्! ये हि रोद रोद पादयोर्विलुण्ठतामपि "त्रायध्व त्रायध्वम्" इति सहाहाकार-चीत्कारै रोदसी रोदयतामपि दारा अपहरन्ति, इष्टदेव-प्रतिकृतीश्चूर्णयन्ति, वालान् वृद्धाश्च सकष्ट घ्नन्ति, तेषामेषा दुर्विनीतानामाततायिना बलेनापि च्छलेनापि च दण्डन परम-पुण्यमेव, न पापम्। स्वयमेव धर्म-मर्म-गौरव-लाघवाभ्यामालोचनीयोऽय विषय।

यश०—[चिर तूष्णी चिन्तयित्वा, आत्मनोऽप्यवरङ्गजीवस्य राज्यप्राप्तेरपि पूर्वसमयमारभ्याद्यावधि अन्तरेव जाज्वल्यमान क्रमतो गुप्तरूपेणैव प्रवर्द्धमान क्वचित् क्वचित् स्फुटमुपदृश्यमान कथ कथमपि वीरवर-जयसिहादिनिरुपशम्यमान

रोद रोदम् = रुदित्वा रुदित्वा। रोदसी = द्यावापृथिव्यौ। रोदयताम् = विलापयताम्। दारा = स्त्री। हेमचन्द्रानुसारि-पूर्वप्रदर्शित-टावन्तस्य शसि। "पु भूम्नि दारा" इति कोशोक्तस्य तु दारानित्येव। इष्टदेवप्रतिकृती = रामादिप्रतिमा। छलेनापि = कूटनीत्याऽपि। धर्ममर्मगौरवलाघवाभ्याम्, धर्मस्य हि सूक्ष्मा गति, कियन्तोऽधर्मत्वेनाऽऽपाततो भासमाना धर्मा, कियन्तश्च धर्मत्वेन भासमाना अधर्मा, इति शतश स्मृतिवचनै स्पष्टीकृतम्।

जाज्वल्यमानम् = अतितरा ज्वलत्। क्रमत = शनै शनै। प्रवर्द्धमा-

जसवन्त सिंह—मैने दिल्लीश्वर से प्रतिज्ञा की है, उसके विपरीत कार्य कैसे कर सकूँगा ?

महादेव—भगवन्! जो रो-रो कर पैरो पर गिरने वालो, 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकार हाहाकार करते हुये चीत्कार से पृथिवी और आकाश को रुलाने वालो की भी स्त्रियो को बलपूर्वक अपहरण कर लेते हैं, इष्टदेव की मूर्तियो को चकनाचूर कर देते हैं, बालको और वृद्धो को (भी) कष्ट देकर मार डालते है, ऐसे इन उच्छृङ्खल आततायियो को बल से और छल से भी दण्ड देना परम पुण्य ही है, पाप नही। धर्म के मर्म का, गौरव और लाघव द्वारा विवेचन करके आप स्वय इस विषय पर विचार करें।

महावैर विचार्य नैजमपि च महादेवसदृशमेव सिद्धान्त विभाव्य सर्व मनस्येव निगीर्य्य प्रकृतानुरूपमाह–]

"दूतप्रवर ! दिल्लीश्वर "महाराष्ट्रै सह योत्स्ये" इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये ।"

"महा०—सत्य योत्स्यते, स्व-वश-जातानामेव क्षत्रिय-बालकाना वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते । सद्यश्छिन्न-ब्राह्मण-कन्धरा-विगलद्-रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते । यवनहस्तेषु अधिकार समर्प्य महामासदिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते"

नम् = वृद्धि गच्छत् उपशम्यमानम् = निर्वाप्यमाणम् । निगीर्य्य = निपीय । गोपयित्वेति यावत् । प्रकृतानुरूपम् = स्थित्यनुकूलम् । दिल्लीश्वरम्, कथयित्वेत्यस्य कर्म ।

वक्ष = उर स्थलम् । छुरिकाभि = कृपाणीभि । विदारयिष्यते = भेत्स्यते । सद्यश्छिन्नेभ्य = तत्कालकृत्तेभ्य, ब्राह्मणकन्धराभ्य = विप्रग्रीवाभ्य । विगलताम् = पतताम्, रुधिराणाम् = लोहितानाम्, प्रवाहै = धाराभि । वसुमती = धरणी । स्नपयिष्यते, रक्तरञ्जिता विधास्यत

जसवन्तसिह बडी देर तक मौन रह कर, सोच कर, औरङ्गजेब के राज्य प्राप्त करने के भी पहले से लेकर आज तक अन्दर ही अन्दर सुलगने वाली क्रमश गुप्त रूप से ही बढने वाली, कही-कही स्पष्ट दिखाई पड जाने वाली और किसी प्रकार वीरवर जयसिह आदि राजाओ के द्वारा शान्त की गई शत्रुता को स्मरण कर, तथा अपने सिद्धान्त को भी महादेव पण्डित के सिद्धान्त के समान ही समझकर, सब कुछ मन ही मन पीकर, प्रकृत विषय के अनुरूप बोले–

जसवन्त सिह—दूत प्रवर ! मै दिल्लीश्वर से यह कह कर आया हूँ कि मराठो के साथ युद्ध करूँगा, इसलिये मै युद्ध करूँगा ।

महादेव पण्डित—आप सचमुच युद्ध करेगे, अपने वश के ही क्षत्रिय-बालको के वक्षस्थल को कटारो से फाडेगे, तत्काल काटी गई ब्राह्मणो की गर्दन से बहते हुए रक्त की धारा से भगवती वसुन्धरा को स्नान करायेगे, यवनो के हाथो मे अधिकार समर्पित कर गोमास से आर्द्र भारतभूमि को देखेगे ।

इति प्रस्फुरिताभ्यामधराभ्यामरुणिमाञ्चिताभ्या च प्रस्फारिताभ्या नयनाभ्यामचकथत् ।

यशस्विसिहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव चकित इव ह्रीत इव अवहेलित इव आक्षिप्त इव पुत्तलीकृत इव क्षणमध क्षण पुर क्षण त्रिवली-मण्डिते महादेव-ललाटे क्षण च नासाग्रे दत्तदृष्टि अवागिव स्तब्धवागिव मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ ।

महा०--धर्ममर्मज्ञ ! प्रार्थनामात्रमस्मादृक्षाणाम्, कार्यस्वीकारे तिरस्कारे वा प्रभव एव प्रमाणम् ।

इति यावत् । महामासेन = गोमासेन, दिग्धा = क्लिन्ना । द्रक्ष्यते = अवलोकिप्यते ।

प्रस्फुरिताभ्याम् = प्रचलद्भ्याम् । अरुणिमाञ्चिताभ्याम्--लौहित्यभूपिताम्याम् । प्रस्फारिताभ्याम् = विकासिताभ्याम् । अचकथत् = कथयामास ।

स्थगित इव = निश्चेप्ट इव । चकित इव = साश्चर्य इव । ह्रीत इव = लज्जित इव । "ह्रीणह्रीतौ तु लज्जिते" इत्यमर । अवहेलित इव = तिरस्कृत इव । आक्षिप्त इव = निरस्त इव । पुत्तलीकृत इव = कृत्रिममानवाकृतीकृत इव । त्रिवलीमण्डिते = रेखात्रयभूषिते । अवागिव = मूक इव । स्तब्धवाक् = जडीकृतभाप । मन्त्रित = मन्त्रै कीलित । तूष्णीम् = अभाषणपर । किं वा

यह बात महादेव पण्डित ने फडकते हुए अधरोष्ठो और अरुणिम तथा विस्फारित नेत्रो से कही ।

जसवन्तसिह तो यह सुनकर निश्चेष्ट से, चकित से, लज्जित से, तिरस्कृत से, लाञ्छित से, कठपुतली से बने हुए, क्षण भर नीचे, क्षण भर सामने, क्षण भर त्रिपुण्ड से विभूषित महादेव के ललाट की ओर तथा क्षण भर नासिका के अग्रभाग की ओर देख कर मूकसे, स्तम्भितसे, तथा मन्त्र के प्रभाव मे (वाक्कीलित अर्थात्) मौन कर दिये गयेसे चुप ही रहे ।

महादेव—धर्म के मर्मज्ञ ! हमारे जैसे लोग तो केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं, कार्य की स्वीकृति या उसका तिरस्कार करना तो आप ही के हाथ मे है ।

महावैर विचार्य नैजमपि च महादेवसदृशमेव सिद्धान्त विभाव्य सर्व मनस्येव निगीर्य्य प्रकृतानुरूपमाह–]

"दूतप्रवर ! दिल्लीश्वर "महाराष्ट्रै सह योत्स्ये" इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये।"

"महा०—सत्य योत्स्यते, स्व-वश-जातानामेव क्षत्रिय-बालकाना वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते। सद्यश्छिन्न-ब्राह्मण-कन्धरा-विगलद्-रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते। यवनहस्तेषु अधिकार समर्प्य महामासदिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते"

नम् = वृद्धि गच्छत् उपशम्यमानम् = निर्वाप्यमाणम्। निगीर्य्य = निपीय। गोपयित्वेति यावत्। प्रकृतानुरूपम् = स्थित्यनुकूलम्। दिल्लीश्वरम्, कथयित्वेत्यस्य कर्म।

वक्ष = उर स्थलम्। छुरिकाभि = कृपाणीभि। विदारयिष्यते = भेत्स्यते। सद्यश्छिन्नेभ्य = तत्कालकृत्तेभ्य, ब्राह्मणकन्धराभ्य = विप्रग्रीवाभ्य। विगलताम् = पतताम्, रुधिराणाम् = लोहितानाम्, प्रवाहै = धाराभि। वसुमती = धरणी। स्नपयिष्यते, रक्तरञ्जिता विधास्यत

जसवन्तसिंह बडी देर तक मौन रह कर, सोच कर, औरङ्गजेब के राज्य प्राप्त करने के भी पहले से लेकर आज तक अन्दर ही अन्दर सुलगने वाली क्रमश गुप्त रूप से ही बढने वाली, कही-कही स्पष्ट दिखाई पड जाने वाली और किसी प्रकार वीरवर जयसिंह आदि राजाओ के द्वारा शान्त की गई शत्रुता को स्मरण कर, तथा अपने सिद्धान्त को भी महादेव पण्डित के सिद्धान्त के समान ही समझकर, सब कुछ मन ही मन पीकर, प्रकृत विषय के अनुरूप बोले–

जसवन्त सिंह—दूत प्रवर ! मैं दिल्लीश्वर से यह कह कर आया हूँ कि मराठो के साथ युद्ध करूँगा, इसलिये मैं युद्ध करूँगा।

महादेव पण्डित—आप सचमुच युद्ध करेगे, अपने वश के ही क्षत्रिय-बालको के वक्षस्थल को कटारो से फाडेगे, तत्काल काटी गई ब्राह्मणो की गर्दन से बहते हुए रक्त की धारा से भगवती वसुन्धरा को स्नान करायेगे, यवनो के हाथो मे अधिकार समर्पित कर गोमास से आर्द्र भारतभूमि को देखेगे।

इति प्रस्फुरिताभ्यामधराभ्यामरुणिमाञ्चिताभ्या च प्रस्फारिताभ्या नयनाभ्यामचकथत् ।

यशस्विसिहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव चकित इव ह्रीत इव अवहेलित इव आक्षिप्त इव पुत्तलीकृत इव क्षणमध क्षण पुर क्षण त्रिवली-मण्डिते महादेव-ललाटे क्षण च नासाग्रे दत्तदृष्टि अवागिव स्तब्धवागिव मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ ।

महा०—धर्ममर्मज्ञ ! प्रार्थनामात्रमस्मादृक्षाणाम्, कार्यस्वीकारे तिरस्कारे वा प्रभव एव प्रमाणम् ।

इति यावत् । महामासेन = गोमासेन, दिग्धा = क्लिन्ना । द्रक्ष्यते = अवलोकिष्यते ।

प्रस्फुरिताभ्याम् = प्रचलद्भ्याम् । अरुणिमाञ्चिताभ्याम्—लौहित्यभूषिताभ्याम् । प्रस्फारिताभ्याम् = विकासिताभ्याम् । अचकथत् = कथयामास ।

स्थगित इव = निश्चेष्ट इव । चकित इव = साश्चर्य इव । ह्रीत इव = लज्जित इव । "ह्रीणह्रीतौ तु लज्जिते" इत्यमर । अवहेलित इव = तिरस्कृत इव । आक्षिप्त इव = निरस्त इव । पुत्तलीकृत इव = कृत्रिममानवाकृतीकृत इव । त्रिवलीमण्डिते = रेखात्रयभूषिते । अवागिव = मूक इव । स्तब्धवाक् = जडीकृतभाष । मन्त्रित = मन्त्रै कीलित । तूष्णीम् = अभाषणपर । किं वा

यह बात महादेव पण्डित ने फडकते हुए अधरोष्ठो और अरुणिम तथा विस्फारित नेत्रो से कही ।

जसवन्तसिह तो यह सुनकर निश्चेष्ट से, चकित से, लज्जित से, तिरस्कृत से, लाञ्छित से, कठपुतली से बने हुए, क्षण भर नीचे, क्षण भर सामने, क्षण भर त्रिपुण्ड से विभूषित महादेव के ललाट की ओर तथा क्षण भर नासिका के अग्रभाग की ओर देख कर मूकसे, स्तम्भितसे, तथा मन्त्र के प्रभाव मे (वाक्कीलित अर्थात्) मौन कर दिये गयेसे चुप ही रहे ।

महादेव—धर्म के मर्मज्ञ ! हमारे जैसे लोग तो केवल प्रार्थना ही कर सकते है, कार्य की स्वीकृति या उसका तिरस्कार करना तो आप ही के हाथ मे है ।

यश०—पण्डित ! भवादृशा वा भवादृशाना मन्त्रणा वा तिरस्करणीया न भवन्ति । किन्तु स्वच्छेन हृदा स्वाभिप्रेत प्रकटयति महाराष्ट्र-राजे, नीति-गर्भं सधर्मोपदेश च मन्त्रयमाणे भवादृशे वाग्मिनि, अहमपि हृद्गताना निज-विचाराणामाच्छादनमयुक्त मन्ये इति तथा कथितवानस्मि । शिवस्य सर्वोऽप्युद्देशो मह्य रोचते, पर भवानेव विचारयतु । प्रतिज्ञाविरुद्धाचरण महता कार्यं वा ?

महा०—महाराज ! य भवान् दिल्लीश्वर इति ब्रूते, तस्यैव राक्षसस्योचितानि कर्म्माणि दृश्यन्ताम्—आत्मनो जनन—पोषण-हेतु-भूतस्य वली पलित सक्रन्द—नयनजल—सिक्त—श्वेत—श्मश्रुकूर्चस्य पितु साव-

---

भाषेत, तादृशी भाषा निशम्य । भारतीयत्वाभिमानिभि निशम्य श्रोतव्येयमेकदा सस्कृतपण्डितवचनावली ।

मन्त्रणा = विचारणा । तिरस्करणीया = अनादरणीया । भवादृशा, मन्त्रणा इत्युभयत्रान्वयार्थं तिरस्करणीया। इत्यत्र पुस्त्रियोरेकशेष । स्वच्छेन = पूतेन, स्वाभिप्रेतम् = निजाभिमतम् । नीतिगर्भम् = नयमिश्रम् । आच्छादनम् = गोपनम् । कार्यं वा ? नीचाना वेति शेष । वास्तव धर्म्यं पन्थानमविज्ञायापाततो निरूपयतीति स्पष्टमेव ।

राक्षसोचितानि = राक्षसैरेव कर्तुमर्हाणि । जननस्य = उत्पत्ते, पोषणस्य = रक्षणस्य च हेतुभूतस्य = कारणता गतस्य । वलीपलितस्य = जठरे

जसवन्त सिंह—पण्डित जी ! आप जैसे लोग तथा आप जैसे लोगो की सलाह तिरस्कार करने योग्य नही होती, परन्तु निर्मल हृदय से शिवाजी के अपना मन्तव्य प्रकट करने पर तथा आप जैसे वाक्पटु ब्राह्मण के धर्मसम्मत और नीतियुक्त सलाह देने पर, मैं भी अपने हार्दिक विचारो को छिपाना अनुचित समझता हूँ, अत मैंने वैसा कह दिया (अर्थात् युद्ध करने के अपने निश्चय को आपसे स्पष्ट कर दिया)। शिवाजी के सभी उद्देश्य मुझे पसन्द है, परन्तु आप ही सोचिये, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करना क्या महापुरुषो का काम है ?

महादेव—महाराज ! जिसे आप दिल्लीश्वर कह रहे है, उसी के राक्षसोचित कर्मो को देखिये । अपने जन्मदाता, पालन-पोषण करने वाले, पके बालो वाले

हेल निगृह्य कारागारे स्थापन महता कार्यं वा ? यै सह जननी-करस्थ-मोदकमहमहमिकया समाच्छिद्य भुक्तम्, तात ! तातेति भाषणै क्रीडा-कौतुकैश्च पूर्वं वयो व्यत्यायितम्, तेषामेव सोदर्याणा सच्छल सदर्पं सक्रौर्यं च मारणम्, ईदृशीभिर्हिंसाभिरपि सोद्दण्डभाव लज्जानावहन च महता कार्यं वा ? केवलमार्य-स्वभावानामार्य-जनाना क्लेशनार्थमेव गो-हिंसनम्, प्रतिमा-खण्डनम्, दीन-हीन-सनातन-वैदिकधर्म-शरणाना-मेवास्माक "जीवं-जीव" करग्रहणं महता कार्यं वा ? वाराणस्यादिदेव-तीर्थेषु बलात् पतिताना मन्दिराणा भग्नावशेषै कपाट-देहलीपाषाणे-

मञ्जीरूपरेखया धावल्येन च युक्तस्य। "पलित जरसा शौक्ल्यम्" इत्यमर। क्रन्देन = रोदनेन, सह यन्नयनजन्म् = यदस्रम्, तेन सिक्तौ श्वेतश्मश्रुकूर्चौ यस्य तस्य। सावहेलम् = सतिरस्कारम्। वन्दिगृहे। कारागारे = जननीकरस्थ-मोदकम् = मातृहस्तस्थमिष्टान्नम्। अहमहमिकया = अहङ्कारेण "अहमहमिका तु सा स्यात् परस्पर यो भवत्यहङ्कार" इत्यमर। क्रीडाकौतुकै = लीलाकौतूहलै। व्यत्यायितम् = यापितम्। सोदर्याणाम् = भ्रातृणाम्। सोद्दण्डभावम् = सक्रूरतम्। लज्जानावहनम् = त्रपाया अनङ्गीकरणम्। आर्यस्वभावानाम् = उदारप्रकृतीनाम्। जीवजीव करग्रहणम् = हिन्दुभ्यो "जजिया" नामक राजस्व गृह्यते स्मावरङ्गजीवनकाल इति नेतिवृत्तिविदा तिरोहितम्। कपा-

(अत्यन्त वृद्ध) रोने से निकले हुए आँसुओ से सफेद मूँछ और दाढो को सीचने वाले पिता को अपमानपूर्वक कैद कर, कारागार मे रखना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा जिनके साथ, 'मै पहले लूँगा, मै पहले लूँगा' कह कर माता के हाथ के लड्डू खाये, भैया-भैया कहते हुए खेल-कूद मे बचपन व्यतीत किया, उन्ही सहोदर भाइयो को कपटपूर्वक, दम्भपूर्वक, और क्रूरतापूर्वक मार डालना, तथा इस प्रकार की हत्याओ (हिसा) से भी उद्दण्डतावश लज्जित न होना क्या महापुरुषो का काम है ? अथवा, केवल उदार प्रकृति आर्यो (अर्थात् हिन्दुओ) को कष्ट देने के लिये ही गोहत्या करना, मूर्तियो को तोडना, तथा निर्धन, असहाय और सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी हम लोगो से 'जजिया' नामक कर वसूलना क्या महापुरुषो का काम है ?

ष्टकादि-प्रचयैरेव स्वमज्जित-रचना च महता कार्यं वा ? अन्तस्थं किञ्चन पुरातनं वैरं संस्मृत्य खरतरयुद्धेष्वत्रभवत एव प्रेषणं भवदनिष्टचिन्तनं च महतां कार्यं वा ? यशस्वि-शिवयोर्यतर एव महावीरो महाराष्ट्रयुद्धेऽस्मिन् शयिष्यते, ततर एव गिरि-गुरु-महाभार इव भारतमहावीरः प्रशममेष्यति इति विचार्य्यैव श्रीमतोऽत्र प्रेषणं महतां कार्यं वा ?

येषां दुराचाराणां दलनाय क्षमाऽपि क्षमां त्यजति, समुद्रोऽपि मर्य्यादामुल्लङ्घते, भगवान् नारायणोऽपि च करुणां जहाति, तेषां दुर्वृत्तानां दण्डनं भवादृशानां महाराजानामुचितम्, उत प्रतिज्ञा–

टस्य = अररस्य, देहल्या = गृहावग्रहण्या, पाषाणस्य = प्रस्तर-खण्डस्य, इष्टकादेश्च, प्रचयै = समूहे। स्वस्य मज्जितम् = "मस्जिद्" इति ख्यात यावनदेवस्थानम्, तस्य रचना। खरतरयुद्धेषु = भयङ्करतरसङ्ग्रामेषु। यतर = ययोरेक। ततर = तयोरेक। गिरिगुरुमहाभार इव = हिमालय-भार इव।

क्षमा = पृथिवी। क्षमाम् = क्षान्तिम्। मर्यादाम् = वेलाम्। प्रतिज्ञा-

---

अथवा, वाराणसी आदि देवतीर्थो मे, बल-पूर्वक गिरा दिये गये मन्दिरो के भग्नावशेष किवाडो, चौखटो, पत्थरो और ईटो आदि से ही अपनी मस्जिदो का निर्माण करना क्या महापुरुषो का काम है ? अथवा, मन मे सजोये गये किसी पुराने वैर का स्मरण कर, भयङ्कर युद्धो मे आप ही को भेजना तथा आपका अमङ्गल सोचना क्या महापुरुषो का काम है ? अथवा, 'जसवन्तसिंह और शिवाजी मे जो भी महायोद्धा इस महाराष्ट्र के युद्ध मे धराशायी होगा, वही हिमालय सदृश गुरुतर भार सा भारतीय महावीर विनष्ट होगा,' यह सोचकर आपको यहाँ भेजना क्या महापुरुषो का काम है ?

आप जैसे महाराजाओ को क्या करना उचित है, जिन दुराचारियो को कुचलने के लिये पृथिवी भी क्षमा छोड देती है, समुद्र भी मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाता है, भगवान् विष्णु भी करुणा का परित्याग कर देते है,

पालन-व्याजेन महापातकवर्द्धनम् ? इति स्वयमेव विविनक्तु श्रीमान् ।।

यश०—[किञ्चिद् विचिन्त्य] दूतवर ! तव वाग्मिता मा बलेन वाचयम विधत्ते, किन्तु शिवस्य वञ्चकता कर्णपरम्परयाऽस्मद्देशेऽपि प्रतिगृह प्रसृताऽस्ति । कथमहमेतस्य प्रस्तावेषु विश्वसिमि ?

महा०—[सक्रोधमिव] महाराज ! महाराज !! खलु खलु प्रोच्यैवम् !!! मा स्म सनातनधर्मैकशरण महाराष्ट्रराजमेव मिथ्या-कलङ्क-पङ्केनाङ्कय । को ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य , शूद्रो वा तेन वञ्चित ? म्लेच्छेष्वेव वा सज्जन कोऽवमानित ? अपि तु

पालन-व्याजेन=स्वीकृत-निर्वहण-च्छद्मना । विविनक्तु=विविच्य विचारयतु । न धर्मस्य वास्तविक गौरव लाघव च त्वया विचारितमिति कटाक्ष ।

वाग्मिता=सती भाषणशैली । वाचयमम्=मौनिनम् । वञ्चकता=कपटपटुता । अस्मद्देशेऽपि=राजपुत्रस्थानेऽपि । सकलभारतस्यैकदेशत्वकल्पना न तेषामासीदित्यपि पारस्परिककलहकारणम् ।

सक्रोधमिव, सत्यपि क्रोधकारणे नीतिनिपुणतया न क्रोध वस्तुतोऽङ्गीकृतवानिति व्यङ्ग्यम् । मिथ्याकलङ्कपङ्केन=असत्यापवादकर्दमेन । अङ्कय=

उन कुकर्मियो को दण्ड देना, या प्रतिज्ञा पालन के बहाने महापातक को बढाना ? इसका विवेक आप स्वय करे ।

जसवन्तसिंह—(कुछ सोचकर) दूतवर ! तुम्हारी वाग्मिता मुझे बलात् मौन (निरुत्तर) किये दे रही हे, किन्तु शिवाजी का छल-छद्म कर्णाकर्णिकया हमारे देश मे भी हर एक घर मे सुविदित है । ऐसी स्थिति मे मैं उनके कथन पर विश्वास कैसे करूँ ?

महादेव—(क्रुद्ध से होकर) महाराज ! महाराज ! ऐसा मत कहिये । सनातन धर्म के एकमात्र शरणस्थल महाराष्ट्रराज शिवाजी को इस प्रकार के झूठे कलङ्क के कीचड से लाञ्छित मत कीजिये । किस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को उन्होंने छला है ? अथवा म्लेच्छो मे ही उन्होने किस सज्जन (म्लेच्छ)

धर्म–मर्यादा–घस्मराणामपि प्रत्यर्थिना व्यर्थहिंसा सदैव एतेन निवार्यते। अहह! देव! न शोभते युष्मादृक्षाणा मुखादेव कलङ्कनम्—इत्युक्तवत एव महादेव–पण्डितस्य चक्षुषी बाष्प–बिन्दु–द्वयमुद्गिरताम्। महादेवश्च पटप्रान्तेन प्रामार्ट्।

तदालोक्याकस्मादेव मरुराजस्यापि प्रेम-पारावार-पूराप्लुतमिव हृदयम्, वाष्पोद्गारेण सिक्तमिव पक्ष्म-पङ्क्ति-युगलम्, पुलकोदञ्चित–रोम–राजिभि कण्टकितमिव शरीरम्, उत्साहसुधासारैश्च मुदितमिव मन समजनि।

चिह्नित कुरु। **धर्ममर्यादाघस्मराणाम्**=सनातनधर्मसीमाविध्वंसिनाम्। **बाष्पबिन्दुद्वयम्**=अस्रपृषद्द्वयम्, **उद्गिरताम्**=बहिर्निस्सारयताम्। **पटप्रान्तेन**=वसनकोणेन। **प्रामार्ट्**=परिमार्जितवान्।

मरुराजस्य=यशस्विसिंहस्य। **प्रेमपारावारपूराप्लुतमिव**=स्नेह-समुद्र-प्रवाह-ब्रुडितमिव। **बाष्पोद्गारेण**=अश्रुप्रवाहेण। **पक्ष्मपङ्क्ति-युगलम्**=नेत्र-लोमराजि-द्वयम्। **पुलकोदञ्चित-रोमराजिभि**=हर्षोच्छ्रितलोमावलिभि। **उत्साहसुधासारै**=उत्साहपीयूषसम्पातै।

का अपमान किया है? प्रत्युत वे तो धार्मिक मर्यादा के विध्वसक शत्रुओ की भी अकारण हिंसा को बचा जाते है और रोकते है। हाँ, महाराज! आप जैसे लोगो के मुख से इस प्रकार के लाञ्छन शोभा नही देते।"

यह कहते-कहते ही महादेव पण्डित के नेत्रो से दो अश्रुबिन्दु ढुलक पडे। महादेव ने उन्हे वस्त्र के छोर से पोछ दिया।

यह देखकर अकस्मात् ही जसवन्तसिंह का भी हृदय प्रेम के सागर के प्रवाह मे निमग्नसा हो गया, उनकी पलके आँसुओ की धारा से सिंच सी गई, उनका शरीर प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो जाने वाली रोमावली से कण्टकित-सा हो गया और मन उत्साहरूपी अमृत की वर्षा से प्रमुदित-सा हो गया।

ततश्च महाराज उन्नत वीरासनेन स्थित्वा, "पण्डित ! क्षम्यताम्, अद्यावधि मित्र मे महाराष्ट्रराज, साम्प्रतमहं तमालिलिङ्क्षामि, तत् सपदि दर्शय तं क्षत्रिय-कुलावतसम्"—इति भाषितवान्।

महादेवस्तु तदाकर्ण्य, व्यजनिनो मुखमवलोक्य, महाराज चावलोक्य, शनै प्रोक्तवान् यद् "अचिरादेव शिव समुपस्थास्यते श्रीचरणयोरन्तिके"। महाराजस्तु तृतीयेनाश्रवणीय किञ्चन वचनीयमवशिष्यते इत्याकलय्य, व्यजनिन भ्रू-सञ्ज्ञया बहिर्यापयित्वा, पुनर्महादेव-पण्डितमपृच्छत्—"कथय, कथय, कदाऽह प्रियस्य शिवराजस्य परिष्वङ्गेन म्लेच्छ-पक्षावलम्बन-ग्लानिग्लपितमात्मान मोदयिष्ये—" इति।

उन्नतम् = उच्चै, क्रियाविशेषणम्। वीरासनेन = बलशालिस्थितिप्रकारविशेषेण। आलिलिङ्क्षामि = आलिङ्गितुमिच्छामि। सपदि = शीघ्रम्।

व्यजनिन = व्यजनचालकस्य। उभयमुखनिरीक्षणेन व्यजनी श्रोष्यतीति न वच्मि किमपीति सूचितवान्। अश्रवणीयम् = अश्रोतव्यम्। वचनीयम् = वक्तव्यम्। यापयित्वा = प्रापय्य। परिष्वङ्गेन = आलिङ्गनेन। म्लेच्छा-

---

तदनन्तर महाराज जसवन्तसिंह उन्नत वीरासन से बैठकर बोले—'पण्डित जी ! क्षमा कीजिये, आज से महाराष्ट्रराज शिवाजी मेरे मित्र हैं, अब मैं उनका आलिङ्गन करना चाहता हूँ, अत शीघ्र ही उन क्षत्रियकुल भूषण से मिलाइये।'

यह सुन कर, महादेव ने पखा झलने वाले के मुख की ओर तथा महाराज की ओर देख कर धीरे से कहा कि 'शीघ्र ही शिवा जी आपके चरणो के समीप उपस्थित होगे।' तीसरे व्यक्ति के न सुनने योग्य कोई बात कहना बाकी है, जिसे महादेव कहना चाहते हैं', यह सोचकर, महाराज जसवन्त सिंह ने, पखा झलने वाले को भौहो के इशारे से बाहर भेजकर, महादेव पण्डित से पुन पूछा—'कहिये, कहिये, मैं म्लेच्छो का पक्षपात करने की ग्लानि से ग्लान (अपनी) आत्मा को प्रिय शिवाजी के आलिङ्गन से कब प्रसन्न कर सकूँगा ?'

महा०—[कन्धरा नमयित्वा स्मित्वा च] असङ्ख्यावच्छेदकतानल्प-कल्पन-कल्पतरौ तर्कशास्त्र एव मम महान् अभ्यास, येन खड्गा आस्माकीना अवच्छेदका, दुरात्मानो यवन-म्लेच्छाश्च अवच्छेद्या इति शिक्षितवानस्मि।

यश०—किन्तु च्छात्रता चिर त्यक्तेति तद्विद्या-शैथिल्यमपि सम्बोभवीति।

महा०—महाराज! भवत्कृपया छात्रता त्यक्त्वा अध्यापकता-मङ्गीकृतवानस्मि। साम्प्रत परस्सहस्रा मम च्छात्रा एव विवादे विजय-मासादयितुमलम्! चिरत्यक्ताध्ययनस्यापि मे विद्यया दिल्लीश्वरोऽपि विस्मितवानस्ति।

द्वयोपस्थापकेषु शब्देषु विपत्तिषु च। असङ्ख्यानाम्=अनेकासाम्, अवच्छेदकतानाम्=विशेषकनिष्ठधर्माणा खण्डकताना वा, अनल्पस्य=अत्यधिकस्य, कल्पनस्य=आविष्कारणस्य, कल्पतरौ=कल्पवृक्षे, भूरिकल्पक इति भाव। तर्कशास्त्रे=न्यायशास्त्र इत्यर्थ। अवच्छेदका =खण्डका। अवच्छेद्या = खण्ड्या।

छात्रता=छात्रस्य भाव। पराधीनतेति तत्त्वम्।

अध्यापकताम्=शासनकारिता स्वतन्त्रता च।

विवादे=विरुद्धे वादे, शास्त्रार्थे सङ्ग्रामे च।

महादेव—[सिर झुका कर तथा मुस्कुरा कर] असख्य अवच्छेदकताओ को अधिकाधिक कल्पना के कल्पवृक्ष रूप तर्कशास्त्र मे ही मेरा अभ्यास है, क्योकि हम लोगो की तलवारे अवच्छेदक (काटने वाली) है, और दुरात्मा यवन-म्लेच्छ अवच्छेद्य (काटे जाने योग्य) हैं। मैंने यही सीखा ह।

जसवन्त सिंह—किन्तु छात्रभाव तो वहुत दिन से छूटा है, अत विद्या मे शिथिलता भी हो सकती है।

महादेव—महाराज! आपकी कृपा से छात्रभाव को छोड कर अब शिक्षक हो गया हूँ। अब मेरे सहस्रो छात्र ही विवाद मे विजय प्राप्त करने के लिये पर्याप्त हैं। मेरे चिरकाल से अध्ययन छोड देने के बावजूद, मेरी विद्या से, दिल्लीश्वर भी विस्मित हो गये हैं।

अथ द्वावपि हसन्तौ मन्दमन्दमालपन्तौ द्वारपर्य्यन्तमायातौ। निवर्त्तमान महादेवमनुमन्यमान श्रीमान् मरुवराधीश पुन प्रोवाच-"द्रष्टव्यम्, युद्धविषये यथाऽऽलापो जातस्तथैव विधेयम् ।"

महा०—आम्, श्रीमन् ! तथैव विधातु विनिवेदयिष्यामि तत्र भवन्तम् ।

यश०—आ ! एवम्, विस्मृतवानस्मि । तथैव विधातु महाराष्ट्र-राष्ट्र—सृष्टि—परमेष्ठी निवेदनीय श्रीमान् शिववीर ।

ततो बाढमित्यभिदधद् महादेव प्रचलित , मरु-मेदिनी-परिवृढोऽपि च किञ्चित् स्मयमानोऽन्त प्रविवेश ।

इति षष्ठो निश्वास

महाराष्ट्राणा राष्ट्रस्य सृष्टे =उत्पत्ते, परमेष्ठी=पितामह । मरु-मेदिनीपरिवृढ =मारवधराधिनाथ । अभिदधत् =कथयन्, अन्त =मध्ये, उपकार्याया इति शेष ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या षष्ठनिश्वासविवरणम्

इसके बाद जसवन्त सिंह और महादेव पण्डित दोनो ही हँसते हुए धीरे-धीरे वार्तालाप करते हुए द्वार तक आये । मरुराज ने पुन कहा—'ध्यान रखियेगा, युद्ध के विषय मे जैसी बातचीत हुई है, वैसा ही कीजियेगा ।'

महादेव पण्डित—हाँ महाराज ! वैसा ही करने के लिये महाराज से निवेदन करूँगा ।

जसवन्त सिंह—हाँ ठीक है, मैं भूल गया था । वैसा ही करने के लिये महाराष्ट्ररूपी राष्ट्र की रचना करने वाले ब्रह्मा श्रीशिवाजी से कह दीजियेगा ।

तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहते हुए महादेव पण्डित चल दिये और मरुभूमि के शासक महाराज जसवन्त सिंह भी कुछ मुस्कराते हुए अन्दर चले गये।

शिवराजविजय का छठवाँ निश्वास समाप्त

॥ श्री ॥

सप्तमो निश्वास

"अय रेवा-कुञ्ज कुसुमशर-सेवा-समुचित.
समीरोऽय वेला-दर-विदलदेला-परिमल ।
इय प्रावृड् धन्या नव-जलद-विन्यास-चतुरा
पराधीन चेत सखि! किमपि कर्तुं मृगयते ॥"

—कविरत्नभानुदत्त

सप्तमे निश्वासे सौवर्ण्या भविष्यत सम्बन्धस्य प्रथमपरिच्छेदरूपमनुराग-मौत्सुक्य च वर्णयिष्यति, तदुपक्षिपति कविरत्नभानुदत्तवचसा—अयं रेवाकुञ्ज इति। अयम्=पुरो दृश्यमान । रेवाया =एतन्नामिकायास्तरङ्गिण्या, कुञ्ज =लतादिपिहितगृहविशेष । एतेन परकीयचक्षुरविषयत्वसूचनद्वारोद्दीपकत्व ध्वनितम्। विशिनष्टि कुञ्जम्—कुसुमानि=पुष्पाणि, शरा = बाणा यस्य मन्मथस्य। सेवायै=उपासनायै, समुचित =अत्यन्तमुपयुक्त । रहसि हि सेविता देवा मनोऽभिलषितमानन्द समुपस्थापयन्तीति देवप्रियजन-प्रतीति । वस्तुतस्तु कुसुमशरसेवा पुङ्कतृक कामिनीसन्तर्पणमेव, स्त्रीकर्तृक च कामुकसन्तपणमेवेति वेदितव्यम्। तदुत्थश्चानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदर इति नाविदितचर विदितवेदितव्यानाम् । वेलायाम्=तटे, दरम्=ईषत्, विदलन्तीनाम्=विकसन्तीनाम्, एलानाम्=चन्द्रवालानाम्, परिमल =सौगन्ध्यम्, यस्मिन् तादृश । समीर =पवन । अस्याप्युद्दीपकत्व

रेवानदी के तट पर स्थित यह कुञ्ज कामदेव की सेवा (रति-क्रिया) करने के लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थल है। यह समीर नदी तट पर लगी हुई अर्धविकसित एला (इलायची) की लताओ की मादक सुगन्ध से युक्त है। वर्षाकाल का मनोहर समय है और आकाश मे

"गर्ज गर्ज क्षण मूढ ।"

—चण्डी

"आमन्त्य क्षत-कोमलाङ्गुलि-गलद्रक्तै सदर्भा स्थली
पादै पातित-यावकैरिव गलद्बाष्पाम्बु-घौतानना ।
भीता भर्तृकरावलम्बित-करास्त्वद्वैरि-नार्योऽधुना
दावाग्नि परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥"

—स्फुटकम्

स्फुटमेव । इयम् = एषा । प्रावृट् = वर्षाकाल । धन्या = रमणीया । कथम्भूता प्रावृडित्याह-नवानाम् = नवीनानाम्, जलदानाम् = वारिदानाम्, विन्यासेषु = विभिन्नरूपेणोपस्थापनेषु, चतुरा = दक्षा । सखि ! = हे आलि ! एतेन हार्दिकभावप्रकटीकरणयोग्यत्व ध्वनितम् । चेत = मानसम् । पराधीनम् = परस्य मनसैवेष्टस्य, आयत्तीकृतम् । किमपि = अनिर्वाच्यम् । कर्तुम् = विधातुम् । मृगयते = अन्विष्यति । विरहिण्या उक्ति । अनुप्रास ।

अत्रैव निश्वासे शास्तिखानस्य पराजयमपि दिदर्शयिषुरिति सप्तशती-सङ्गृहीत महामायाभिहित मन्त्रैकखण्डमपि स्मारयति- "गर्ज गर्ज क्षण मूढ !"

तत्र महिषासुरो वाच्य ।

पराजिते शास्तिखाने तदीयवनितानां क्रन्दनादिकमपीहैव वर्णनीयमिति तदप्युपक्षिपति-आमन्त्य इति । कवेरुक्ति कमपि नरपति प्रति । अधुना=सम्प्रति । त्वद्वैरिनार्य = त्वदीयशत्रुवनिता । पुनरपि = भूयोऽपि ।

नये-नये बादल विभिन्न रूपो मे छाये हुए है । हे सखि ! ऐसे वातावरण मे मेरा मन, जो मेरे वश मे नही है और कभी का दूसरे के अधीन हो चुका है, कुछ (रमण) करने को आतुर हो रहा है ।'

—भानुदत्त

'रे मूढ, क्षण भर गरज ले'

—चण्डी

'हे राजन् ! इस समय आपके शत्रुओ की स्त्रियाँ पुन विवाह करने के लिये उद्यत सी लगती हैं । दर्भयुक्त भूमि को पार करने मे

अहह ! चिररात्राय भ्रान्तमस्मन्मन पुण्यनगरान्धतमस-वीथिकासु। क्षण तोरण-दुर्गोपत्यकोद्यान-भ्रमणैरात्मा विनोदनीय

उद्यद्विवाहा इव = समुपस्थितविवाहा इव । दावाग्निम् = वनाग्निम् । परित = सर्वत्र । भ्रमन्ति, लाजहोमे वह्निप्रदक्षिणा प्रसिद्धा साङ्गुष्ठहस्तग्रहण च । वनिता विशिनष्टि—क्षताभ्य = कुशादिना विदारिताभ्य, कोमलाभ्य अङ्गुलिभ्य = चरणजाभ्य, गलत् = पतत, रक्तम् = लोहित, येषु तै । पादै = चरणै । उत्प्रेक्षते-पातितयावकैरिव = लिप्तालक्तकैरिव । सदर्भा = कुशकाशमयी । स्थली = स्थण्डिलभूमी । होमेऽपि वेदिकामभित कुशा प्रस्तीर्यन्त इति न विस्मर्त्तव्यम् । क्रामन्त्य = लङ्घयन्त्य । गलता = प्रच्यवता, वाष्पाम्बुना = अश्रुजलेन, धौतम् = प्रक्षालितम्, आननम् = मुख यासा ता । होमकाले धूमव्याप्तदृष्टित्वाद् रोदनमिह च खेदात् । भीता = भयाश्रयीभूता । इह रिपोस्तत्र च वरादिगुरुजनादिति ध्येयम् । भर्तृणाम् = पतीनाम्, करेषु = हस्तेषु, अवलम्बिता , करा यासा ता ।

अहह ! कवेरुक्ति । लेखशैलीयमेका । चिररात्राय = चिरम् । अव्ययम् । पुण्यनगरस्य, अन्धतमसवीथिकासु = गाढान्धकारव्याप्तलघुपथेषु । तोरणदुर्गस्य, उपत्यकायाम् = अद्रेरासन्नभूमौ, उद्यानस्य = वाटिकाया,

---

उनके पैरो की कोमल उँगलियाँ कुशो से क्षतविक्षत हो गई है और उनसे रक्त बह रहा है, मानो पैरो मे लगा महावर गिर रहा हो, अश्रुजल के प्रवाह से उनके मुँह धुल गये है, और वे पति के हाथ का सहारा लिये हुए, डरी-डरी, दावाग्नि के चारो ओर घूम रही है ।'

—स्फुट

अहा हा ! मेरा मन पूना नगर के घने अन्धकार से व्याप्त छोटी-छोटी गलियो मे बहुत समय तक भ्रमित हो चुका । अब थोडी देर तोरण-दुर्ग की घाटी के उद्यान मे घूमकर बहलाना चाहिये । देखिये, यहाँ कैसा अनुपम आनन्द प्राप्त हो रहा है ।

इति दृश्यता कीदृश आनन्द-सन्दोहोऽत्रेति। तोरण-दुर्ग-समीप एव सुदृढ सुन्दर मारुति-मन्दिरम्, ततोऽपि पूर्वत ‹क्रोशार्द्ध यावद्विस्तृत रमणीयमुद्यानम्। अर्द्धव्यतीतोऽयमाषाढ, कदाचिज्जलदपटलाच्छन्नम्, कर्हिचिच्च निर्मेघमपि सान्द्र-नील गगनतलमालोक्यते। क्वचिन्मयूर-नृत्यानि, क्वचिच्चातक-विरावा, क्वचिज्जल-प्रवाहा, क्वचिद्धारासारा, क्वचेन्द्रगोपससर्गाधिक-मनोहराणि शाद्वलानि प्रतिभान्ति। पञ्चषाणि दिनानि चण्डकर-करै ससार सन्ताप्य अद्य कैश्चिन्मेघ-खण्डै किमपि व्याप्त नभ—इत्युष्णता किञ्चित् क्रशिमानमालम्बते।

भ्रमणे = पर्यटने। आत्मा = अन्त करणम्। विनोदनीय = आनन्दयितव्य। आनन्द-सन्दोह = आह्लादसमूह। सुदृढम् = सुघटितम्, त्रोटयितुमनर्हमिति यावत्।

विस्तृतम् = विस्तीर्णम्। आषाढ = शुचि, मासविशेष। जलदपटलाच्छन्नम् = मेघसमूहप्रावृतम्। सान्द्रनीलम् = घनीभूतनीलम्, अतिनीलम्। चातकस्य विरावा = शब्दा। धारासारा = धाराप्रपाता। इन्द्रगोपानाम् = वर्षाकालिकरक्तवर्णकीटविशेषाणाम्, ससर्गेण = सम्पर्केण, अधिकमनोहराणि = नितान्तरम्याणि। शाद्वलानि = शादवन्ति क्षेत्राणि तृणपूर्णानि। "नडशादाड्ड्वलच्"। "शाद्वल शादहरिते" इत्यमर। प्रतिभान्ति = शोभन्ते। चण्डकरकरै = भास्करदीधितिभि। क्रशिमानम् = कृशताम्। "पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा"। "रऋतोहलादेर्लघो"।

तोरण-दुर्ग के समीप ही हनुमान् जी का सुदृढ तथा सुन्दर मन्दिर है। उक्त मन्दिर से पूर्व की ओर एक रमणीय उद्यान है, जो मील भर तक फैला है। आधा आषाढ व्यतीत हो चुका है। कभी मेघसमूह से ढका हुआ और कभी मेघ रहित आकाश घने नीले रग का दिखाई पडता है। कही मयूरो के नृत्य, कही पपीहो की पुकारे, कही जल-प्रवाह, कही जल की धारा का गिरना, और कही बीरबहूटी से युक्त होने के कारण अधिक मनोहर लग वाले हरी घास के मैदान सुशोभित हो रहे है। आकाश, पाँच-छ दिन सूर्य की प्रचण्ड किरणो से ससार को तपाकर आज कुछ मेघखण्डो से घिर गया है, अत गर्मी कुछ कम हो गयी है।

मारुतिमन्दिरा कित्ञ्चिद् दूर वाटिकामध्ये सुदृढौ द्वौ स्तम्भौ, तयोरुपरि तिर्य्यग् विन्यस्तो दारु-स्तम्भ , एतन्मध्यत एव विलम्ब-मान शृङ्खला-युग-द्वयम्, एतत् प्रान्ते च विलम्वमाना प्रतिकोणासक्तैकशृङ्खला सुरुचिरा पीठिकेति सुभगेय दोलिका। सर्वतोऽप्यस्या शिल्पि-शिल्प-चमत्कार । विविधा लताश्च स्तम्भौ वेष्टयित्वा पारस्परिक-सर्वाङ्गीण-सश्लेषेणेव प्रफुल्लास्तथाऽवतिष्ठन्ते यथा विविध-कुसुममयी भ्रमद्-भ्रमर-निकर-झङ्कृता दोलिकेय दर्शनमात्रेण चक्षुष्मता मनो हरति। एतद्दोलिकाधिष्ठित-शाद्वलस्य मध्ये मध्ये

सुदृढौ = सुपुष्टौ। तिर्य्यक् = तिरश्चीन । 'पट' या 'बेडी' इति हिन्दी। दारुस्तम्भ = काष्ठस्थूणा । शृङ्खलायुगयोर्द्वयम्, द्वे द्वे शृङ्खले स्थानद्वये इति भाव । एतत्प्रान्ते = शृङ्खलान्तभागे । विलम्बमाना = तत् साहचर्येण निम्नभागे स्थिता, कोण कोण प्रतिकोणम्, आसक्ता = लग्ना एका शृङ्खला यस्या सा। सुभगा = शोभना। दोलिका = क्रीडार्थदोलायन्त्रम् 'झूला' इति भाषा। शिल्पि-शिल्पचमत्कार = कारुनिर्माणकौशलम्। पारस्परिकेण = अन्योन्य-जातेन, सर्वाङ्गीणेन = निखिलशरीरभवेन, सर्वविधेनेति यावत्। सश्लेषेण = ससर्गेण। प्रफुल्ला = पूणतया विकसिता । भ्रमताम् = सञ्चलताम्, भ्रमराणा निकरै झङ्कृता = निनादिता । चक्षुष्मताम् = वास्तविकरूपेण

हनुमान् मन्दिर से कुछ दूर पर, वाटिका के मध्य मे दो मजबूत खम्भे हैं। उन पर एक लकडी का खम्भा वेडा रखा गया है। इस खम्भे के मध्य मे चार शृङ्खलाये लटकी हुई है, जिनके छोर पर एक मनोहर काष्ठफलक लटक रहा है, जिसके चारो कोने एक-एक शृङ्खला से बँधे हुए है। इस प्रकार परम सुन्दर झूला सजा हुआ है। काष्ठफलक मे चारो ओर शिल्पियो के शिल्प का चमत्कार दिखाई पड रहा है। अनेक प्रकार की पुष्पित लताये इन खम्भो से लिपटी हुई है, ऐसा लगता है मानो वे एक दूसरे के अङ्गो का गाढालिङ्गन करने के कारण प्रफुल्लित हो। विकसित लताओ से आवेष्टित होने के कारण यह झूला नाना प्रकार के पुष्पो से युक्त है और इस पर भौरो के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। इसे देखकर ही दर्शको का मन मुग्ध हो जाता है।

श्वेत-श्यामादि-पाषाण-निर्मिता रमणीया आसन्दाः, प्रत्यासन्दि चोभयतः प्रफुल्लसुमाः क्षुपाः, प्रतिक्षुपमालवालेष्वपि सकोरका विविधा अङ्कुराः शोभन्ते। वर्तुल-क्षेत्रं चैतत्, परितः कुसुमिताः कदम्बकुटाः, तेषां चैकैकमन्तरा महाफला माकन्दद्रुमाः, मध्ये मध्ये च विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषा मन्दमन्दमनिलालोला लता लसन्ति।

अमू दोला समवयस्कास्तिस्रश्चुम्बितयौवना सुन्दर्यः समारूढाः।

द्रष्टुं वर्तितमताम्, रसिकानामिति यावत्। अरसिकास्तु काष्ठकुड्यादिसमाः तेषां कृतेऽपि नेत्राणां किमालोकनेषु? एतस्याः दोलिकायाऽधिष्ठितस्य शाद्वलस्य—तृण-हरितस्य। आसन्दा = आसनविशेषाः। "कुर्सी" इति हिन्दी। प्रफुल्लानि सुमानि = कुसुमानि येषु ते क्षुपाः = ह्रस्वशाखा द्रुमाः। आलवालेषु = जलाधारेषु वृक्ष परितो रचितेषु। सकोरकाः = सकलिकाः। अङ्कुराः = नूतनोद्भिदः। वर्तुलं चैतत् क्षेत्रम् = गोलस्थलम्। परितः = सर्वतः। तद्योगे द्वितीया। कदम्बकुटाः = कदम्बवृक्षाः। महाफलाः = बहुफलयुताः, बृहत्फला वा। माकन्दद्रुमाः = आम्रवृक्षाः। विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषाः = कृतासन्नवृक्ष-सम्पर्काः। अनिलेन = वायुना, आलोलाः = ईषच्चञ्चलाः। लताः = वल्लयः। लसन्ति = शोभन्ते। द्रुमाणां लतानां च प्रस्तुते सम्पर्के समभिधीयमानेऽप्रस्तुतानां नायकनायिकानामालिङ्गनादिप्रतीतेः समासोक्तिः।

समम् = समानम्, वयः = अवस्था यासां ताः। चुम्बितम् = लब्धम्,

जिस शाद्वल (लॉन) में यह झूला सजा हुआ है उसके बीच-बीच में सफेद, काले आदि रंग के पत्थरों की बनी कुर्सियाँ हैं। प्रत्येक कुर्सी के दोनों ओर विकसित पुष्पों वाले पेड़ हैं, और प्रत्येक पेड़ के आलवाल (क्यारियों) में कलियों से युक्त अनेक छोटे-छोटे पौधे अङ्कुरित हो आये हैं। इस गोलाकार क्षेत्र (शाद्वल = घासों से हरे) के चारों ओर पुष्पित कदम्ब वृक्ष हैं। एक एक कदम्ब वृक्ष के बाद बड़े-बड़े फलों वाले आम्रवृक्ष हैं, और बीच-बीच में, समीपस्थ वृक्ष से लिपटी हुई, हवा के झोंकों से धीरे-धीरे हिलने वाली लताएँ सुशोभित हो रही हैं।

इस झूले पर, समान उम्र की तीन नवयुवती सुन्दरियाँ चढ़ी हुई हैं।

एका हस्ताभ्या शृङ्खले धृत्वा मध्ये समुपविष्टा, इतरे च धृतशृङ्खले अभित समुत्थिते स्वोपवेशाघातैर्दोला दोलयत ।

वासास्यासा महाराष्ट्र-कन्योचितानि अतिरमणीयानि। य एते उत्थायमुत्थाय दोला चालयत, तयोर्दक्षतो वामतश्च विभज्य प्रसाधिता केशा , पीत-रक्त-कौशेय-सूत्र-ग्रन्थन-पाटवाङ्किता कबरी, विविध-मणि-जटित-बालपाश्या, कनककुसुमालङ्कृत शिर , सुवर्ण-सूत्र-वेष्टनाविष्कृत-बहुल-सुषमा कुण्डलीकृत्य वेष्टिता वेणी।

यौवनम् = तारुण्य याभिस्ता । सुन्दर्य = अभिरामा । स्वोपवेशाघातै = मध्ये मध्ये समुपवेशेन जातैस्ताडनै, दोलयत = चालयत ।

महाराष्ट्रकन्योचितानि = महाराष्ट्रीयबालिकार्हाणि । य एते, "ईदूदेद् द्विवचन प्रगृह्यम्" इति प्रगृह्यता, "प्लुतप्रगृह्या" इत्यनेन प्रकृतिभावश्च । उत्थाय-मुत्थायम् = ऊर्ध्व स्थित्वा स्थित्वा, णमुलन्तम् । दक्षत = दक्षिणत । प्रसा-धिता = विरचिता । पीत च तद् रक्त पीतरक्तम्, तच्च कौशेयसूत्रम् = पट्टसूत्रम्, तस्य ग्रन्थनपाटवेन = गुम्फनचातुर्येण, अङ्किता = भूषिता "कबरी-केशवेश" एवमेवामर । विविधमणिभि = अनेकप्रकारकरत्नै, जटिता = मिलिता, बालपाश्या = सीमन्तभूषणम् । कनककुसुमै = सौवर्णपुष्पै, अल-ङ्कृतम् = भूषितम् । शिर = शीषम् । सुवणसूत्रवेष्टनेन = हिरण्यतन्तुवलनेन, आविष्कृता = प्रकटीकृता, बहुला = प्रचुरा, सुषमा = परमशोभा, यस्या सा। कुण्डलीकृत्य = कुण्डलाकृति प्रापय्य, वेष्टिता = जूटिता । वेणी = केश-

---

उनमे से एक दोनो हाथो से शृङ्खलाओ को पकडे हुए बीच मे बैठी है, और शेष दोनो युवतियाँ शृङ्खलाओ को पकडे हुए, दोनो ओर खडी हुई, अपने बैठने के आघात से (पेंग मारकर) झूले को झुला रही हैं।

इन सब के वस्त्र महाराष्ट्रदेश की कन्याओ के अनुरूप अति सुन्दर है।

इनमे जो दो युवतियाँ उठ-उठ कर झूले को चला रही हैं, उन्होने बालो को दाहिनी ओर और बाई ओर विभाजित कर के (बीच मे माँग निकाल कर) सँवार रखा है। उनकी कबरी पीले-लाल रेशमी धागो से चतुरता पूर्वक गूँथी गई है, और वेंदी (सीमन्तभूषण) अनेक प्रकार की मणियो से जटित है। उनका सिर सोने के पुष्पो से सजा हुआ है। उनकी वेणी, जिसे लपेट कर उन्होने जूडा बना लिया हे, स्वर्णसूत्रो से सयुक्त होने के कारण अत्यधिक सुन्दर

सिन्दूर-रेखाङ्किता कवरी-मध्य-रेखा, मौक्तिक-गुच्छाङ्कित-सुवर्णाभरणालङ्कृता नासा। आरक्त-कौशेय-कूर्पासिक-समाच्छन्नमारब्ध-कुचोन्नति-महोत्सवमवलोचक-नयन-वशीकरण वक्ष। कर्णिका-युगल-चोचुम्ब्यमान दोलन-श्रमोद्भूत-स्वेद-कणिका-पटल-परिलम्बित समीर-सरणान्दोलित-चूर्ण-कुन्तल-वीजित कपोल-युगलम्। सौवर्ण-

---

बन्धनम्। सिन्दूररेखया = नागोद्भव-लेखया, अङ्किता = लिखिता। कबरी-मध्यरेखा = केशवेशान्तरालगत-लेखा। मौक्तिकगुच्छेन = रत्नस्तवकेन, अङ्कितम् = युतम् यत् सुवर्णाभरणम् = हिरण्यरचितमाभूषणम्, तेन अलङ्कृता = मण्डिता। नासा = नासिका। आरक्तेन = समन्ततो रक्तवर्णेन, कौशेय-कूर्पासकेन = पट्टवस्त्रचोलकेन, समाच्छन्नम् = नितान्तगोपितम्। आरब्ध = उपक्रान्त, कुचयो = स्तनयो, उन्नतिमहोत्सव = उद्गमनोद्धव, यस्मिस्तत्। अवलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्, नयनानाम् = नेत्राणाम्, वशीकरणम् = आयत्तीकरणम्। वक्ष = उरस्थलम्। कर्णिकायुगलेन = कर्णभूषणद्वयेन, "कर्णिका कर्णभूषणम्" इति हैम। चोचुम्ब्यमानम् = बार बार स्पृश्यमानम्। दोलनश्रमेण = दोलाखेलनश्रान्त्या, उद्भूतानाम् = जातानाम्, स्वेद-कणिकानाम् = घर्मजलबिन्दूनाम् पटलेन = समूहेन, परित लसितम् = शोभितम्। समीरसरणेन = वायुचलनेन, आन्दोलितै = सञ्चालितै, चूर्णकुन्तलै = अलकै। "अलकाश्चूर्णकुन्तला" इत्यमर। वीजितम् =

लग रही है। उनकी माँग सिन्दूर की रेखा से अङ्कित है, और नासिका मे मोती के गुच्छे से युक्त स्वर्णभूषण शोभित हो रहा है। उभरते हुए उरोजो से रसिको के नेत्रो को वश मे करने वाला उनका वक्षस्थल गुलाबी रग की रेशमी चोली से आच्छादित है। कर्णफूल उनके, झूला झूलने मे होने वाले परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदो से सुशोभित दोनो कपोलो का बार बार स्पर्श कर रहे हैं। हवा चलने से उनके बालो की लटें इस प्रकार हिल रही हैं, मानो कपोलो को

सिन्दूर-रेखाङ्किता कबरी-मध्य-रेखा, मौक्तिक-गुच्छाङ्कित-सुव-र्णाभरणालङ्कृता नासा । आरक्त-कौशेय-कूर्पासक-समाच्छन्नमारब्ध-कुचोन्नति-महोत्सवमवलोचक-नयन-वशीकरण वक्ष । कर्णिका-युगल-चोचुम्ब्यमान दोलन-श्रमोद्भूत-स्वेद-कणिका-पटल-परिलसित समीर-सरणान्दोलित-चूर्ण-कुन्तल-वीजित कपोल-युगलम् । सौवर्ण-

---

बन्धनम् । सिन्दूररेखया = नागोद्भव-लेखया, अङ्किता = लिखिता । कबरी-मध्यरेखा = केशवेशान्तरालगत-लेखा । मौक्तिकगुच्छेन = रत्नस्तबकेन, अङ्कितम् = युतम् यत् सुवर्णाभरणम् = हिरण्यरचितमाभूषणम्, तेन अल-ङ्कृता = मण्डिता । नासा = नासिका । आरक्तेन = समन्ततो रक्तवर्णेन, कौशेय-कूर्पासकेन=पट्टवस्त्रचोलकेन, समाच्छन्नम् = नितान्तगोपितम् । आरब्ध = उपक्रान्त, कुचयो = स्तनयो, उन्नतिमहोत्सव = उद्गमनोद्भव, यस्मिंस्तत् । अवलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्, नयनानाम् = नेत्राणाम्, वशीकरणम् = आयत्तीकरणम् । वक्ष = उर स्थलम् । कर्णिकायुगलेन = कर्णभूषणद्वयेन, "कर्णिका कर्णभूषणम्" इति हैम । चोचुम्ब्यमानम् = वार वार स्पृश्यमानम् । दोलनश्रमेण = दोलाखेलनश्रान्त्या, उद्भूतानाम् = जातानाम्, स्वेद-कणिकानाम् = घर्मजलबिन्दूनाम् पटलेन = समूहेन, परित लसितम् = शोभितम् । समीरसरणेन = वायुचलनेन, आन्दोलितै = सञ्चालितै, चूर्णकुन्तलै = अलकै । "अलकाश्चूर्णकुन्तला" इत्यमर । वीजितम् =

लग रही है । उनकी माँग सिन्दूर की रेखा से अङ्कित है, और नासिका मे मोती के गुच्छे से युक्त स्वर्णाभूषण शोभित हो रहा है । उभरते हुए उरोजो से रसिको के नेत्रो को वश मे करने वाला उनका वक्षस्थल गुलाबी रग की रेशमी चोली से आच्छादित है । कर्णफूल उनके, झूला झूलने मे होने वाले परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदो से सुशोभित दोनो कपोलो का बार बार स्पर्श कर रहे हैं । हवा चलने से उनके बालो की लटें इस प्रकार हिल रही है, मानो कपोलो को

मौक्तिक-राजि-राजित-ग्रैवेयकाङ्किता कम्बुग्रीवा, दोला-दोलन-दोदुल्यमान-ललित-ललन्तिका-लालितमुर, पञ्च-कच्छभङ्ग्या परिहित हरित परिधानम्, हसककाञ्ची-कङ्कणादि-मण्डितान्यङ्गानि। या चेय मध्यत समुपविष्टा, सा तदपेक्षयाऽप्यल्प वयो जुषमाणा, धम्मिल्ल-समुल्लसन्मूर्द्धभागा, कुङ्कम-बिन्दु-सुन्दर-

कृतव्यजनम्, कपोलयो अलका स्रस्ता इति यावत्। **सौवर्णानाम्**=सुवर्णतन्तूनाम्, **मौक्तिकानाम्**=मणीना च। **राजिभि**=श्रेणिभि, **राजितम्**=लसितम्, यद् ग्रीवाया भव **ग्रैवेयकम्**=कण्ठाभरणम् "कुल-कुक्षिग्रीवाभ्य श्वास्यलङ्कारेष्वि"ति ढक्। **अङ्किता**=मण्डिता। **कम्बु-ग्रीवा**=शङ्खाकारा शिरोधरा। **दोलादोलनेन**=दोलिकाहिल्लोलनेन, **दोदुल्यमानया**=वार वार चलन्त्या, **ललितया**=शोभनया, **ललन्तिकया**=आनाभिलम्बितया कण्ठिकया, **लालितम्**=शोभितम्। **उर**=वक्ष। **पञ्चानाम्**=पञ्चसङ्ख्याकानाम्, **कच्छानाम्**=वस्त्रबन्धानाम्, **भङ्ग्या**=प्रकारेण। महाराष्ट्रदेशीया परिधानीय तथा परिदधति, यथा पञ्च कच्छा जायन्त इति तात्पर्यम्। तत्र पश्चाद्भागे कच्छमेक त्रिधा बध्नन्तीति त्रयम्, नीवी तुरीया उपरिधारणीयभाग स्कन्धप्रदेशेनाऽऽनीय बध्नन्तीति पञ्चतयीत्यनुभवरसिका। **परिहितम्**=धारितम्। **हरितम्**=हरिद्वर्णम्। **परिधानम्**=वास। **हसकेन**=नूपुरेण, **काञ्च्या**=रशनया, **कङ्कणादिभि**=वलयादिभिश्च, **मण्डितानि**=भूषितानि, **अङ्गानि**=चरणाद्यवयवा। **तदपेक्षया**=तयोर्दोलाचालिकयोरपेक्षया। **जुषमाणा**=सेव-

पखा झल रही हो। उनका शङ्ख के समान गला मोतियो की पक्ति से सुशोभित स्वर्णमय आभूषण से, तथा वक्षस्थल झूला झूलने से बार-बार हिलने वाले हार से सुशोभित हो रहा है। उन्होने पञ्चकच्छ की रीति से हरे रग की साडी पहन रखी है, और उनके चरण आदि अङ्ग नूपुर, करधनी (काञ्ची), कङ्कण आदि आभूषणो से सुशोभित हो रहे हैं।

झूले के बीच मे बैठी रमणी, उपर्युक्त दोनो युवतियो की अपेक्षा कम उम्र की सँवारे हुए बालो से सुशोभित, मिर कुङ्कुम-बिन्दु से

ललाटा, कज्जलाञ्जन-रञ्जित-लोचन-युगला, नागवल्ली-दल-रसना-सरक्ताधर-विवर्द्धित-रसिकजन-पिपासा, वृन्ताक-श्यामा, कौशेय-सूत्र-रचिता समावृतार्द्धबाहु सुवर्णसूत्र-रचित-लता-वितान-रोचित-प्रान्ता कञ्चुकीमभिनव-समासादित-मासल-भावेन वक्षसा

माना । धम्मिल्लेन = सयतकेशव्रातेन, समुल्लसन् = शोभमान, मूर्धभागा यस्या सा । "धम्मिल्ल सयता कचा" इत्यमर । कुङ्कमविन्दुना सुन्दरम् = मनोहरम्, ललाटम् = गोधिर्यस्या सा । "ललाटमलिक गोधि" इत्यमर । कज्जलाञ्जनेन = कज्जलविन्यासेन, रञ्जित लोचनयुगल यस्या सा । नागवल्लीदलस्य = ताम्बूलीपत्रस्य, रसनेन = आस्वादनेन, आ = समन्तात् । सरक्ताभ्याम् = अतिलोहिताभ्याम्, अधराभ्याम् = दन्तच्छदाभ्याम्, विवर्द्धिता = वृद्धि नीता, रसिकजनपिपासा यया सा । स्वभावतो रक्तयोरोष्ठयो स्ताम्बूलभक्षणेनातितरा लौहित्यमिति विशेषणसार्थक्यम् । असरक्तेति च्छेदे विपरीतार्थाभास इति "ताम्बूलीदलरसना"—इति पदस्य पार्थक्यमाश्रित्य व्याचक्षणास्तु भिक्षुकागमनानुचिन्तया स्थाल्यनधिश्रयणपटवो बटवो न कस्य नमस्या ? कञ्चुकी विशिनष्टि— वृन्ताकश्यामाम् = भण्टाकीकृष्णाम् "वैगनी रग की" इति हिन्दी । "वृन्ताके स्त्री तु वार्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि चे"ति निघण्टु । कौशेयसूत्ररचिताम् = पट्टतन्तुनिर्मिताम् । समावृतम् = समाच्छन्नम्, अर्ध वा ह्लोर्यया ताम् । अर्धबाहुकामिति यावत् । "अधवहिया" इति हिन्दी । सुवर्णसूत्रै = हैरण्यतन्तुभि , "जरी" इति हिन्दी । रचितानाम् = निर्मितानाम्, लतानाम् = वल्लीनाम्, वितानेन = बिस्तारेण, रोचित = भ्राजमान ,= प्रान्त कोणभागो यस्यास्ताम् । कीदृशेन

सुशोभित ललाट और काजल लगे नेत्रो वाली, तथा पान खाने से लाल हो गये अधरोष्ठो से रसिको की प्यास को बढाने वाली है। वह अपने उभरते उरोजो वाले वक्षस्थल पर, बैंगनी रग की, रेशमी सूत से बनी आधी बाँह को ढकने वाली सोने के तार (जरी) से बने बेल-बूटो से सुशोभित किनारो वाली कञ्चुकी धारण किये है। वह सत्ताईस

विभ्रती, दोला-दोलन-वेग-भङ्ग-परवशतया उच्छालमुच्छालमुरसि निपतन्ती नक्षत्रमाला कुच-प्रदेशाधस्तात् परिवेष्टित-शोण-चैला-ञ्चलापातिनीमपि तदुपरिभागे प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमान-पूर्वार्द्धा धारयन्ती, सुवर्ण-विजित्वर-वर्णा मूर्तिमतीव शोभा, धारितदेहेव प्रेम-परम्परा, कलितावतारेव च रतिरासीत्।

वक्षसा? तत्राह—अभिनव नव-नूतन अभिनवमिति समासादनक्रियाविशेषण वा। समासादित =प्राप्त, मासलभाव =स्थूलता येन तेन। समुत्पद्यमानकुचौन्नत्यवतेति यावत्। नक्षत्रमाला धारयन्तीति बालिकाविशेषणम्। कीदृशी नक्षत्रमालाम्? तत्राह-दोलादोलनेन=दोलायन्त्रहिल्लोलनेन, यो वेगभङ्ग =जवरोध, तत्परवशतया=तदायत्ततया। उच्छालमुच्छालम् उच्छाल्योच्छाल्य। "उछल उछल कर' इति हिन्दी। उरसि=वक्षसि। निपतन्तीम्=स्खलन्तीम्। नक्षत्रमालाम्=सप्तविशतिमौक्तिकमयी हारयष्टिकाम्। "नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविशतिमौक्तिकै इत्यमर। कुचप्रदेशाधस्तात्=स्तनतलाधोभागात्। परिवेष्टितम्=वलितम्, यत् शोणम्=रक्तम्, चैलम्=वसनम्, तस्य अञ्चले=कोणे, आपातिनीम्=पतनशीलाम्। तदुपरिभागे=चैलाञ्चलोपरिप्रदेशे। प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमानम्=भृश समवलोक्यमानम्, पूर्वार्धं यस्यास्ताम्। धारयन्ती=बिभ्रती। सुवर्णस्य विजित्वर =जयनशील, वर्णो यस्या सा। अतिगौरीत्यर्थ। मूर्तिमती=रूपधारिणी। धारितदेहा=गृहीतशरीरा। कलितावतारा=कृतावतरणा। रति =कामपत्नी।

मोतियो से बनी एक माला पहने है, जो पेग मारने से झूले का वेग भङ्ग होने के कारण उछल-उछल कर उसके वक्षस्थल पर गिर रही है, और जिसका नीचे का आधा भाग उसके वक्षस्थल से नीचे लिपटे लाल वस्त्र पर गिर रहा हे, तथा आधा भाग स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा हे। उसके शरीर का रग सोने से भी अधिक सुन्दर हे। उसे देखकर, ऐसा लगता हे मानो शोभा ही मूर्तिमयी हो उठी हो, प्रेम परम्परा ही देह धारण कर के आ गई हो, रति ही अवतरित हो गई हो।

शनैं शनैर्दोलाया वेगो ववृधे। एकतो गच्छन्ती दोला याव-न्निवर्तते, तावत् तस्या दिशि स्थिता साङ्गहारमुपवेश-मुद्रया दोला तथा हन्ति, यथा सा साधिकवेग परतो निवर्तते स्म। ततोऽप्यव-धिपर्य्यन्त गताया च तस्या तद्दिशि सज्जा इतराऽपि तथैवानुकरोति। द्वयोरपि गत्योरन्तरेषु मञ्जीर-रशनादीना विलक्षणशिञ्जन भवति। प्रतिगत च प्रत्यागत च तासा सर्वासा वासासि वारमेकमेकत परतश्च परत समुड्डीयन्ते। कर्णाभरणीकृताना पाटलि-कुसुमाना केशेषु व्यासञ्जिताना मल्लिका-कोरकाणा सर्ववस्त्राणामुपरि लम्ब-

ववृधे = एधाञ्चक्रे। साङ्गहारम् = अङ्गाक्षेपसहितम्। क्रियाविशेषणम्। उपवेशमुद्रया = आसनप्रकारेण। हन्ति = ताडयति। साधिकवेगम् = अति-जवेन सह। अवधिपर्यन्तम् = यावद् गन्तु शक्नोति शृङ्खलान्विता मनो तत् सीमान यावत्, सज्जा = सन्नद्धा, हन्तुम्। अनुकरोति, हन्तीति यावत्। मञ्जीररशनादीनाम् = नूपुरकाञ्चीप्रभृतीनाम्। विलक्षणम् = अलौकिकम्, शिञ्जनम् = भूषणशब्द। "भूषणाना च शिञ्जितम्" इत्यमर। प्रतिगतम् = प्रतिगमनम्। प्रत्यागतम् = प्रतिपरावृत्ति। कर्णाभरणीकृतानाम् = श्रवोभूषणी-कृतानाम्। पाटलिकुसुमानाम् = अमोघापुष्पाणाम्। व्यासञ्जितानाम् = निबद्धानाम्, वितानामिति यावत्। मल्लिकाकोरकाणाम् = मालतीमुकुलानाम्।

धीरे-धीरे झूले का वेग बढने लगा। एक ओर जाता हुआ झूला जब तक उस (दूसरी) ओर स्थित रमणी झटके से बैठती हुई, इस प्रकार पेंग मारती है कि झूला और भी तेजी के साथ दूसरी ओर लौट जाता है। झूले के, उस दिशा मे जितनी दूर जा सकता है, उतनी दूर पहुँचते-पहुँचते उस ओर पहले से ही पेंग मारने को तैयार रमणी भी वैसा ही करती है। इन दोनो रमणियो के पेंग मारने के समय नूपुर, काञ्ची आदि आभूषणो की विलक्षण ध्वनि होती है। हर बार झूले के आने और जाने मे, इन सभी रमणियों के वस्त्र एक बार एक ओर और दूसरी बार दूसरी ओर उडते है। कर्णाभूषण के रूप मे धारण किये गये पाटलिपुष्प और केशो मे गूँथी गई मल्लिका पुष्प की कलियाँ उनके वस्त्रो पर

मानाना च विशिथिल-दलानि परिस्खलन्ति स्म। एव दोला-दोलनासक्ताभिरेव ताभिरारब्धा महामधुर-माध्वीक-मधुरिम-धिक्काराधिकार-धारिणी प्रफुल्लोल्लास-तल्लज-मल्लार-रागानुसारिणीय गीतिर्गातुम्। तथा हि—

घन-पटली बहु वर्षति तोयम्,
घन-पटलीनमुख पथिकोऽयम्।
बहुधारासाराश्च समुदिता
बहुधा रागै रसिका मुदिता ॥

सर्ववस्त्राणाम्=निखिलवाससाम्। लम्बमानानाम्, सुमानाम्, विशिथिल-दलानि=विचलितबन्धनानि पत्राणि। परिस्खलन्ति स्म=पेतु। दोला-दोलनासक्ताभि=दोलासञ्चालननिरताभि। आरब्धा=प्रस्तुता। महा-मधुरस्य=अतिस्वादुन, माध्वीकस्य="महुआ" इति भाषाया प्रसिद्धस्य, मधुरिम्ण=माधुर्यस्य, धिक्कारे=तिरस्करणे, योऽधिकार=स्वाम्यम्, तस्य धारिणी। अनुप्रास। एवमन्यत्राप्यनुचिन्तनीय। लोकोत्तरमाधुर्य-वतीति भाव। प्रफुल्ल=विकसनशील, उल्लासतल्लज=प्रकृष्टोल्लास, बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपो वा, यो मल्लारराग=मल्लारीत्यभिधीयमाना मेघरागस्य रागिणी, तदनुसारिणी=तदनुकूला, गीति, प्रधानारब्धक्रियानिरूपितस्य कर्मत्वस्याभिधानान्न गीति-निरूपिताऽप्रधानकर्मत्वाश्रया द्वितीयेति स्वादुमिसूत्रस्य-भाष्यानुसारी पूर्वाभिहित पन्था।

घनपटली=मेघराजि। बहु=अधिकम्। अयम्=साक्षाद् दृश्यमान।

लटक रही थी, और उनकी पखुडियाँ टूट-टूट कर गिर रही थी। इस प्रकार झूला झूलने मे लगी हुई उन रमणियो ने महामधुर माध्वीक की मधुरिमा को भी धिक्कारने का अधिकार धारण करने वाली, उत्कृष्ट उल्लास के अभिव्यञ्जक 'मलार' नामक मेघराग की अनुसारिणी यह गीति गाना प्रारम्भ कर दिया।

मेघ-समूह बहुत अधिक जल बरसा रहा है। यह पथिक मोटे कपडे से अपना मुँह ढके हुए है (अथवा निर्निमेष नेत्रो से मेघखण्ड को देख रहा है)। मूसलाधार वृष्टि हो रही है। रसिक लोग नाना प्रकार की प्रेम क्रीडाएँ कर के (अथवा विभिन्न प्रकार के रागो को सुन कर) प्रसन्न हो रहे हैं।

एव कियत्कालगानेनैव श्रान्तयोस्तयो पार्श्व-परिवर्तिन्यो स्वेदै कपोलौ क्षालितौ, वसनमार्द्रितम्, कञ्चुकी कुचयोर्दृढ सलग्ना, वपुर्वेपथुना चुम्बितम्, श्वास-प्रश्वासयोर्गतिस्त्वरिता, आननच्छटा च काञ्चन कमनीया शोणता-शोभामकलयत्। ललिताविशाखाभ्या विमा-

पथिक = यात्रिक, घनपटे = मेघखण्डे, लीनम् = सलग्नम्, मुखम् = वदन यस्य स। सर्वथा मेघे तत्तदृष्टिरिति तात्पर्यम्। अथवा घने = सान्द्रे, पटे = वस्त्रे, लीनम् = छन्नम्, मुख यस्य स। मेघस्योद्दीपकत्वात् तद्दर्शन पथिक परिहरतीति भाव। बहूना धाराणामासारा = सम्पाता। समुदिता = सम्यगुदय प्राप्तवन्त, मेघेभ्य प्रादुर्भूता इति यावत्। रसिका = रागिण। बहुधा = अनेकधा। रागै = विषयाभिलाषै। मुदिताः = प्रसन्नता गता। प्रथमचरणे "घनपटली"ति सार्थकम्, द्वितीये च निरर्थकम्। प्रथमद्वितीयपादयोर्मध्यत्वे "मुखम्" नाम यमकम्, तृतीयचतुर्थयोश्च "पुच्छम्" नामेति तयो ससृष्टि। अन्त्यानुप्रासोऽपि।

कियत्कालगानेन = स्वल्पसमयलयकलनेन। पार्श्वपरिवर्त्तिन्योः = पार्श्वपरिवर्त्तनकारिण्यौ। स्वेदैः = घर्मबिन्दुभि। क्षालितौ = धौतौ। वसनम् = वस्त्रम्। आर्द्रितम् = क्लेदितम्। कञ्चुकी = अर्धबाहुका। सलग्ना = ससक्ता। वपु = शरीरम्। वेपथुना = कम्पेन। चुम्बितम् = स्पृष्टम्। त्वरिता = वेगवती, जातेति शेष। आननच्छटा = मुखच्छवि। यद्यपि प्राक्तनैरय 'छटा'-शब्द समूहेऽर्थे प्रयुक्तस्तथापि साम्प्रतिकैश्छवितात्पर्येण प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्। काञ्चन = कामप्यनिर्वचनीयाम्, कमनीयाम् = हृद्याम्। शोणताशोभाम् = रक्तताकान्तिम्। अकलयत् = अधारयत्। ललिताविशाखाभ्याम् =

इस प्रकार थोडी देर तक ही गाने मे ये दोनो युवतियाँ थक गईं, और पार्श्व-परिवतन करने लगी (अँगडाई लेने लगी)। पसीने से उनके कपोल धुल गये, वस्त्र भीग गये, कञ्चुकी स्तनो से चिपक गई, शरीर काँपने लगा, श्वास-प्रश्वास की गति तेज हो गई, चेहरा लाल हो गया, और उनकी मुखच्छवि ने अतिसुन्दर अद्भुत लालिमा की शोभा धारण की।

झूले के पटरे पर बैठी हुई, ललिता और विशाखा नामक सखियो द्वारा

नेन गगनतल नीयमाना राधिकेव चेयमपरा दोलापट्टिकोपविष्टा नीप-शाखाग्र-चुम्बि-दोला-वेगमसहमाना कदाचिद् भुवम्, कर्हिचित् आत्मानम, कदाचन द्रुमाग्राणि, कर्हिचन समीरवेगाहत-निज-वसनाग्र-ताड्यमान-दोलावलम्बि-शृङ्खलाम्, कदाऽपि तारस्वर-गान-श्रवण-विद्रावित-निद्रान् कदम्ब-शाखा-सन्धि-विलम्बि-नीडान्तराल-

---

तन्नामिकाभ्या राधिकासखीभ्याम् । विमानेन=वायुयानेन । नीयमाना = प्राप्य-माणा । राधिकेवेत्युपमा । इयम् = एषा, अपरा = द्वितीया, सौवर्णी । दोलाया, पट्टिकायाम् = काष्ठपीठे, उपविष्टा = स्थिता । नीपशाखाया = कदम्बशाखाया, अग्रचुम्बिन्या, दोलाया, वेगम् = जवम् । असहमाना = सोढु-मशक्नुवती ।

"कदाचिद् भुवम्" इत्यादि "अवलोकयन्ती क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती"ति सम्बन्ध । भुवम् =पृथिवीम् । आत्मानम् = स्वम् । द्रुमाग्राणि = वृक्षशाखा । समीरवेगाहतस्य = पवनजवताडितस्य, निजवसनस्य = स्ववस्त्रस्य । अग्रेण = प्रान्तेन, ताड्यमानायाम् = आहन्यमानायाम्, दोलायाम्, अवलम्बिनीम् = सल्लग्नाम् । शृङ्खलाम् = लोहदाम । कदाचित् पिकशावकानिति मध्ये सम्बन्ध । पिकशावकान् विशिनष्टि-तारस्वरेण = उच्चस्वरेण, पञ्चमनादेनेति यावत् । यद् गानम् = गीति, तस्य श्रवणेन = कर्णातिथितापादनेन, विद्राविता = दूरीकृता, निद्रा = स्वापो येषा तान् । कदम्बशाखानाम् = नीपद्रुमावयवानाम्, सन्धिषु=

विमान पर बिठा कर आकाश मे ले जाई जाती हुई राधिका के समान यह अन्य अल्पवयस्का **रमणी** जिसकी बालो की लटें आँखो पर लटक आई थी कदम्ब वृक्ष की चोटी का स्पर्श करने वाले **झूले की तेजी को न सह सकती हुई,** कभी पृथ्वी को, कभी स्वय को, कभी वृक्षो की चोटियो को, कभी तेज़ हवा के झोको से हिलते हुए अपने आँचल के द्वारा स्पश किये जाते हुए झूले मे लगी शृङ्खलाओ को, कभी ऊँचे स्वर मे गाये जाते हुए गाने को सुनने से नीद टूट जाने के कारण जग गए, कदम्ब वृक्ष की शाखाओ के सन्धिस्थलो पर लटक

रिङ्गणान्, सित-पीत-सृक्किणीन्, अप्राप्त-पक्षति-पुष्टीन्, अर्धोन्मिषित-लोचनान्, विहित-मञ्जीरानुकारि-रावान्, पिक-शावकान्, कर्ह्यपि दोलान्दोलन-दोल्यमान-दोलाग्र-विलम्बि-लता-प्रतान-निपात्यमान-कुसुम-स्तबकान् अवलोकयन्ती, भ्रमरिकाकलित-दृष्टि, प्रतिगतिभेद पतन्तीव, कम्पमानेव, आहतेव, भीतभीतेव मुग्धा क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती—"अलमलम्, विरमत विरमतम्, पतामि पतामि" इति ।

जोडेषु, विलम्बिनाम् = लम्बमानानाम्, नीडानाम् = कुलायानाम् । अन्तरालेषु = मध्येषु, रिङ्गणम् = भ्रमणम्, येषा तान् । सिता = श्वेतवर्णा, पीता = पीतवर्णा, सृक्किण्य = ओष्ठप्रान्तभागा, येषा तान् । अप्राप्ता = अनधिगता, पक्षतीनाम् = पक्षमूलानाम्, पुष्टि = उड्डयनसामर्थ्यम्, यैस्तान् । अर्धोन्मिषिते = कियदुन्मीलिते, लोचने येषा तान् । विहिता, मञ्जीरानुकारिण = नूपुरध्वनितुल्या, रावा = शब्दा, यैस्तान् । पिकशावकान् = कोकिलशिशून् । दोलान्दोलनेन = दोलिकासञ्चालनेन, दोल्यमानानाम् = सञ्चाल्यमानानाम्, दोलाग्रविलम्बिनीनाम् = दोलिकाप्रान्तप्रतायमानानाम्, लतानाम् = व्रततीनाम्, प्रतानेभ्य = कुटिलतन्तुभ्य निपात्यमानान्, कुसुमाना, स्तबकान् = गुच्छान् । भ्रमरिकाभि = ललाटलस्तकेशै, आकलिता = व्याप्ता, दृष्टि, यस्या सा । प्रतिगतिभेदम् = प्रतिगतागतम् । पतन्तीव = स्खलन्तीव । कम्पमानेव = वेपमानेव । आहतेव = ताडितेव । भीतभीतेव = अतिभयाक्रान्तेव । मुग्धा = अल्पवयस्का । क्रियासमभिहारेण = पुन पुन । वक्तुम् = लपितुम् । अनुप्रासो यत्र तत्रानुचिन्तनीय । विरमतम्, लोटो मध्यमपुरुषद्विवचनम् ।

रहे घोसलो मे घूम रहे, अधखुले नेत्रो वाले और नूपुर की ध्वनि के समान ध्वनि करने वाले, कोयल के बच्चो, जिनके अधरोष्ठो के कोने श्वेत तथा पीले थे, और जिनके पख अभी उडने योग्य नही हो पाये थे, उनको कभी झूले के चलने से हिलने वाली, झूले के पास ही फैली हुई लताओ से गिरते हुए फूलो के गुच्छो को देखती हुई, हर बार झूले के इस ओर आने और उस ओर जाने पर गिरती हुई सी, काँपती सी, चोट खाई हुई सी, डरी हुई सी, बार-बार 'बस बस, रुको रुको, मै गिरी, गिरी', यह चिल्लाने लगी ।

अथ तयोरेका—"सौवर्णि ! किमिव बिभेषि ? आवयोर्मध्ये स्थिताऽसि, शृङ्खला-ग्रहणासक्ता मुष्टिं मा शिथिलय, न पतिष्यसि। साम्प्रतमेव विहिताभ्यासा चेत्, पत्या समं सुखेन दोला-विहारं रसं रसयिष्यसि—" इति सस्मितमालपत्।

सौवर्णी च—"चारुहासिनि ! अलं हासैः। भ्रमति मे चक्षुः, क्षुभ्यति मनः, तत् सपदि स्थिरीकुरु दोलाम्। अये विलासिनि ! नास्ति मम तथा क्षमता यथा भवत्योः, तत् न पारयामि, विरम विरम।"

इत्युभयतो ग्रीवां परिवर्त्य, मन्दं सक्षोभमिवाचकथत्। ततस्तृतीयाऽपि-"प्रियसखि ! किमिव क्षुभ्यसि ? पश्य, विरतमावाभ्याम्,

---

विहिताभ्यासा=कृतवारंवारानुभवा। दोला-विहार-रसम्=दोला-क्रीडानन्दम्। रसयिष्यसि=अनुभविष्यसि।

सौवर्णी चाचकथदिति सम्बन्धः। किम् ? तत्राह—चारुहासिनि ! इति विलासिनि इति च सम्बोधनपदे सखीनाम्नोः। अलं हासैः=क्ष्वेलाभिः साध्यं नास्ति। "क्रिया गम्यमानाऽपि कारकविभक्तौ निमित्तम्" इत्युक्तेस्तृतीया। भ्रमति=घूर्णते। "घूमती है" इति हिन्दी। क्षुभ्यति=सञ्चलति। क्षमता=सोढुं शक्तिः। न पारयामि=न शक्ता भवामि। ग्रीवाम्=शिरोधराम्।

उन दोनों सखियों में से एक मुस्कराती हुई बोली—'सौवर्णि ! डरती क्यों हो ? हम दोनों के बीच में बैठी हो, जिस मुट्ठी में तुमने जंजीर पकड़ रखी है, उसे ढीला न करो, गिरोगी नहीं, यदि तुमने अभी अभ्यास कर लिया, तो पति के साथ सुख-पूर्वक झूला झूलने के आनन्द का रसास्वादन कर सकोगी।'

सौवर्णी क्षुब्ध सी होकर, दोनों (चारुहासिनी और विलासिनी की) ओर गर्दन घुमाकर धीरे से बोली—'चारुहासिनि ! मजाक मत करो, मेरी आँखें घूम रही हैं (चक्कर खा रही हैं), मन घबड़ा रहा है, तुरंत झूला बन्द कर दो।' अरी विलासिनि ! जितनी सामर्थ्य तुम दोनों में है, उतनी मुझ में नहीं है ? मैं नहीं झूल सकती, रुको, रुको।'

तब तीसरी ने प्रेमपूर्वक कहा—'प्रिय सखि ! नाराज क्यों होती हो ? देखो,

दोला च क्रमतो मन्दीभूता स्वयमेव स्थिरा भवित्री" इति सप्रेम समवादीत्।

अथ प्रेमालाप-परायणास्वेव तासु स्थिरीभूताया दोलाया चारुहासिनी विलासिनी च पूर्वमवतीर्णे, तद्धस्तावलम्बनेनैव च सभय सौवर्ण्यप्यवतीर्णा। क्षण चक्षुषी निमील्य चारुहासिनी-स्कन्धमेव गृहीत्वा सावेग स्थितवती। परस्तात् प्राप्तधैर्य्या सम्मुखस्थायामासन्द्या समुपाविशत्। चारुहासिनी विलासिनी च महाराष्ट्रमहिले इति दोलारोह एतयो स्वाभाविक । दोलन-प्रयुक्त वैकल्य वा शैथिल्य वा चक्षुर्भ्रमरिका वा मनोग्लानि वा एते न जानीत स्म। ते खिन्न-स्विन्न-सर्वाङ्गिण्याविति कदली-दल-खण्डेनाऽऽस्मान वीजयन्त्यौ पर्य्यं-

परिवर्त्य = वक्रयित्वा। सक्षोभम् = सकृत्रिमक्रोधम्। मन्दीभूता = वेगशून्या सती। भवित्री = भाविनी। सप्रेम = सस्नेहम्।

प्रेमालाप = नर्मोक्ति, तत्परायणासु = तन्निरतासु। सावेगम् = दोलाखेलनभ्रमरिका ("घुमरी" इति भाषा) सहितम्। प्राप्तधैर्या = लब्धस्थैर्या। सम्मुखस्थायाम् = पुर स्थापितायाम्, आसन्द्याम् = वेत्रासने। दोलनप्रयुक्तम् = दोलाखेलसमुत्थम्। वैकल्यम् = विकलताम्। शैथिल्यम् = स्रस्ततामत्यधिकश्रमजन्याम्। चक्षुर्भ्रमरिकाम् = नेत्रभ्रमम्। मनोग्लानिम् = चेत - क्लान्तिम्। खिन्नम् = क्लान्तम्, स्विन्नम् = घर्मजलार्द्रम्। सर्वाङ्गम् =

हम लोगो ने पेग मारना वन्द कर दिया है, झूला धीरे-धीरे धीमा होकर स्वय रुक जायेगा।,

उनके इसी प्रकार प्रेमपूण वातचीत करते ही करते जब झूला रुक गया, तो पहले चारुहासिनी और विलासिनी झूले से उतरी, फिर उनके हाथ का सहारा लेकर सौवर्णी भी डरती-डरती उतरी, और घुमरी (घुमरी अर्थात् चक्कर) आ जाने के कारण, क्षण भर, आँखे मीच कर, चारुहासिनी का कन्धा पकडे खडी रही। कुछ देर वाद जब सँभली और धैर्य वँधा, तो सामने पडी कुर्सी पर वैठ गयी।

चारुहासिनी और विलासिनी महाराष्ट्र की महिलाएँ है, अत उनके लिये झूले पर चढना स्वाभाविक है। वे झूलने से होने वाली विकलता, शिथिलता, आँखो का घूमना, मन का घवडाना (मिचली आना) आदि जानती ही नही है। उनका सारा शरीर थककर चूर-चूर और पसीने से लथपथ हो गया था। अत वे

टितुमारेभाते। एवमितस्तत शाद्वले पर्य्यटन्त्योस्तयो पार्श्वस्थ-मल्लिका-स्तवक-परिक्रम-परवश-मिलिन्दवृन्द-दत्तदृष्टे सौवर्ण्याश्चैवमभूवन्नालापा —

विलासिनी—अस्माक सौवर्णी न किमपि वेत्ति।

चारुहासिनी–[समन्दस्मितम्] आम् ! न किमपि, यतो मुग्धा।

विला०—अज्ञातयौवना च।

चारु०—[सहासम्] सत्य दुग्धमुखीयम्।

[उभे सौवर्णीमालोकमालोक जहसतु]

निखिलशरीर ययोस्ते। णिन्यन्तात् ङीप्। कदलीदलखण्डेन = रम्भाच्छद-शकलेन। पर्य्यटितुम् = भ्रमितुम्। पार्श्वस्थमल्लिकास्तबकस्य = समीपस्थ-जातीगुच्छस्य, परिक्रमपरवशे = भ्रमणसलग्ने, मिलिन्दवृन्दे = द्विरेफव्राते, दत्तदृष्टे = सस्तम्भितनयनाया। आलापा, 'स्यादाभाषणमालाप' इत्यमर। अत्र हासमया वेदितव्या।

मुग्धा = बाला। अज्ञातयौवना = अविदिततारुण्या। यौवनक्रियमाण हावभाव न वेत्तीति भाव।

दुग्धमुखी = पयोमुखी। "दुधमुंही" इति हिन्दी। आलोकमालोकम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा, आभीक्ष्ण्ये णमुलन्तम्।

केले के पत्ते का टुकडा लेकर अपने ही को पखा झलती हुई टहलने लगी। इस प्रकार हरी घास (के मैदान) पर घूमती हुई इन दोनो सखियो और समीप ही लगी मालती के फूलो के गुच्छो पर मँडराते हुए भौरो को एकटक देखती हुई सौवर्णी मे इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

विलासिनी—हमारी सौवर्णी कुछ भी नही जानती।

चारुहासिनी—[धीमी मुस्कराहट से] हाँ, कुछ भी नही जानती, बडी भोली है।

विलासिनी—और यौवन का तो इसे पता ही नही हे।

चारुहासिनी—[हँसती हुई] सचमुच, अभी तो बेचारी दुधमुही बच्ची है।

[दोनो सौवर्णी को देख-देख कर हँसने लगी।]

सौवर्णी—[सकपट-कोपम्] भवतीभ्यामेव रोचन्ते भवत्यो क्ष्वेलनानि ।

विला०—मैवम्, मैवम्, क्षमस्व, त्व सर्व वेत्सि।

चारु०—इय रासपञ्चाध्यायी पठन्ती आत्मानमपि विस्मरति गीतगोविन्दस्य च 'उरसि मुरारेरुपहितहारे'—इत्यादि-गीतानि गायन्त्येव बाष्प-प्रवाहेणाञ्जनम् अधर-राग वक्ष रोमराजी च क्षालयति, तत् किं न वेत्ति? किन्त्वस्मदग्रे आत्मान मुग्धतममेव परिचाययति । [पुनरुभे अहसताम् ।]

भवतीभ्याम् = चतुर्थ्या द्विवचनम्, "रुच्यर्थाना प्रीयमाण" इति चतुर्थी । **क्ष्वेलनानि** = नर्मवाक्यानि ।

रासपञ्चाध्यायीम् = श्रीमद्भागवते सन्दर्भविशेष कृष्णविलासप्रदर्शनापरो रासपञ्चाध्यायी । रागिणस्तदर्थ रागपरतया, पण्डिताश्च कामविजयपरतया सङ्गमयन्ति । अत्र च "तप्तस्तनेषु परिघेहि" "च्छिन्धि हृच्छयाग्निम्" इत्यादिभिस्तात्पर्यम् ।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलवलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥

इति समग्र गीतगोविन्दपद्यम् । **बाष्पप्रवाहेण** = अश्रुधारया । **अधररागम्** = ओष्ठलौहित्यसाधनम् । **रोमराजीम्** = लोमपङ्क्तिम् । **क्षालयति** = धावयति ।

सौवर्णी—[कृत्रिम क्रोध के साथ] तुम्हारे मजाक तुम्ही को अच्छे लगते है, मुझे नही ।

विलासिनी—नही नही, क्षमा कर दो, तुम सब कुछ जानती हो ।

चारुहासिनी—यह रासपञ्चाध्यायी पढते-पढते अपने आपको भी भूल जाती है और गीत-गोविन्द के 'उरसि मुरारेरुपहितहारे' (श्री कृष्ण के वक्षस्थल पर, जिस पर हार सुशोभित हो रहा है) इत्यादि गीत गाती-गाती अश्रु प्रवाह से आँखो मे लगे काजल, अधरोष्ठो पर लगी लाली, वक्षस्थल और रोमराजि को भी धो डालती है। यह क्या नही जानती ? परन्तु हमारे सामने अपना भोलापन दिखाती है । [फिर दोनो हँसती है ।]

सौवर्णी-सख्यौ ! यदि मामेव ह्रेपयथस्तदहं गच्छामि । युवामेवात्र विहरतम् । [इति उदतिष्ठत् ।]

विला०—[सौवर्ण्या बाहु गृहीत्वा] उपविश उपविश । नाऽऽवामेव परस्तादालपिष्याव ।

[सौवर्णी तूष्णीमुपाविशत् ।]

चारु०—[समीपस्थायामासन्द्यामुपविश्य, विलासिनी चोपवेश्य]

सौवर्णि ! सत्यं कथयति विलासिनी । यदि नाम तुभ्यं प्रेमवार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते, तत् किमग्निहोत्रविधिं वा योग-साधन-पद्धतिं वा कथयाव ? तथैव चेत्, तव तात एव वेदान्तोपदेशैस्त्वामपरां गार्गीं विधास्यति, किमस्मत्साहचर्यें ? किं वा

ह्रेपयथ = लज्जयथ । विहरतम = क्रीडतम् ।

अग्निहोत्रविधिम् = यागविशेषविधानम् । योगसाधन-पद्धतिम् = चित्त-वृत्तिनिरोधात्मकस्य योगस्य यानि साधनानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाध्यात्मकानि तेषां पन्थानम् । वेदान्तोपदेशैः = ब्रह्मविद्या-कथनैः । गार्गीम् = वाचक्नवीम्, जनकससदि याज्ञवल्क्येन कृतब्रह्मविद्याविवादां विशिष्टां विदुषीं बृहदारण्यके श्रुताम् । अस्मत्साहचर्यें = आवयोः सान्निध्यैः ।

सौवर्णी—सखियो ! यदि मुझे इस प्रकार लज्जित करने पर तुली हो, तो मै चली, तुम्ही दोनो यहाँ घूमो । (यह कह कर उठ खडी होती है ।)

विलासिनी—[सौवर्णी का हाथ पकड कर] बैठो बैठो, अब हम दोनो इस प्रकार की कोई बात नही करेगी । [सौवर्णी चुपचाप बैठ गई ।]

चारुहासिनी—[पास मे पडी हुई कुर्सी पर बैठकर, और विलासिनी को बिठा कर] सौवर्णि ! विलासिनी ठीक ही तो कहती है । यदि तुम्हे प्रेमवार्ता, और आत्मीय जनो मे आपस मे जैसी बाते होती है, उस प्रकार की बातें नही अच्छी लगती, तो क्या हम लोग अग्निहोत्र की विधि या योग की साधन-पद्धति के सम्बन्ध मे बात करे ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम्हारे पिताजी ही वेदान्त की शिक्षा देकर तुम्हे दूसरी गार्गी बना देगे, हम लोगो के साथ रहने और

'सखि सखि' इति मुधैवाऽऽवां सम्बोध्य वञ्चनैः ?

विला०—प्रिये! मा स्म उपेक्षिष्ठाश्चारुहासिन्या वचनम्। आवामेव तव प्रीतिपात्रे, अन्तरङ्गित्व-गर्विण्यौ सख्यौ। आवयोरप्यग्रे कदाऽपि किमपि न वक्षि। अन्तरेव कञ्चनानुरागमिव वहसि, कदाचिद् विमनायसे, अस्माभिः शृङ्गार-रस-स्नातानां बहूनामाननान्यवलोकितानि सन्ति, त्वं तु सदैवास्माभिः सह क्रीडसि। कथं त्वया गोपितोऽप्यप्रकटो भवेत् तवानुराग-प्रवाहः ? त्वमेव केवलं स्पष्टं न ब्रूषे, किंतु तव नवाभ्यस्तापाङ्ग-प्रसारे दृशौ, आलीढ-ताली-दलच्छवि कपोल-

मुधैव = व्यर्थमेव। वञ्चनैः = प्रतारणैः। समदुःखसुखे सखीजने रहस्यस्य निवेदनीयत्वादिति भावः।

मा स्मोपेक्षिष्ठाः = उपेक्षां मा कार्षीः। माङि लुङ्" "न माङ् योगे" इत्याभ्यां लुङडागमाभावौ। प्रीतिपात्रे = स्नेहस्थाने। अन्तरङ्गित्वस्य = रहस्यज्ञत्वस्य, गर्विण्यौ = अभिमानयुक्ते। न वक्षि = न कथयसि। अनुरागम् = व्यक्तिविशेषे प्रेम। शृङ्गार-रसस्नातानाम् = प्रेमिप्रणयप्रवाहे कृतमज्जनानाम्। अनुभूतविषयरसानामिति यावत्। गोपितोऽपि = यत्नादाच्छादितोऽपि। अप्रकटः = अविस्पष्टः, दुर्ज्ञेय इति यावत्। नवः = नूतनः, अभ्यस्त

झूठही हम लोगो को "सखी! सखी!" कह कर पुकार कर धोखा देने से क्या लाभ होगा ?

विलासिनी—प्रिये! चारुहासिनी के कथन की उपेक्षा न करो। हम दोनो ही तुम्हारी स्नेहभाजन तथा तुम्हारी अन्तरङ्ग होने का अभिमान रखने वाली सखियाँ है। तुम, हम दोनो के आगे भी कभी कुछ भी नही कहती हो। अन्दर ही अन्दर किसी (के प्रति) अनुराग को धारण करती जान पडती हो, और कभी-कभी अनमनी हो जाती हो। हम लोगोने शृंगार रस मे डूबे (या नहाए) हुए अनेक व्यक्तियो के मुखो को देखा है, और तुम तो सदैव हमारे साथ ही खेलती हो, फिर तुम्हारा (किसी के प्रति) अनुराग प्रवाह तुम्हारी छिपाने की चेष्टा के बावजूद भी, (हम लोगो की दृष्टि से) कैसे छिप सकता है ? यद्यपि तुम साफ-साफ नही कहती हो, (लेकिन) तुम्हारे नेत्र, जिन्होने

सौवर्णी–सख्यौ ! यदि मामेव ह्रेपयथस्तदह गच्छामि । युवामेवात्र विहरतम् । [इति उदतिष्ठत् ।]

विला०—[सौवर्ण्या बाहु गृहीत्वा] उपविश उपविश । नाऽऽवामेव परस्तादालपिष्याव ।

[सौवर्णी तूष्णीमुपाविशत् ।]

चारु०—[समीपस्थायामासन्द्यामुपविश्य, विलासिनी चोपवेश्य]

सौवर्णि ! सत्य कथयति विलासिनी । यदि नाम तुभ्य प्रेमवार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते, तत् किमग्निहोत्रविधि वा योगसाधन-पद्धति वा कथयाव ? तथैव चेत्, तव तात एव वेदान्तोपदेशैस्त्वामपरा गार्गी विधास्यति, किमस्मत्साहचर्ये ? कि वा

ह्रेपयथ = लज्जयथ । विहरतम् = क्रीडतम् ।

अग्निहोत्रविधिम् = यागविशेषविधानम् । योगसाधन-पद्धतिम् = चित्तवृत्तिनिरोधात्मकस्य योगस्य यानि साधनानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यात्मकानि तेषा पन्थानम् । वेदान्तोपदेशै = ब्रह्मविद्याकथनै । गार्गीम् = वाचक्नवीम्, जनकससदि याज्ञवल्क्येन कृतब्रह्मविद्याविवादा विशिष्टा विदुषी बृहदारण्यके श्रुता । अस्मत्साहचर्ये = आवयो सान्निध्ये ।

सौवर्णी—सखियो ! यदि मुझे इस प्रकार लज्जित करने पर तुली हो, तो मै चली, तुम्ही दोनो यहाँ घूमो । (यह कह कर उठ खडी होती है ।)

विलासिनी—[सौवर्णी का हाथ पकड कर] बैठो बैठो, अब हम दोनो इस प्रकार की कोई बात नही करेगी । [सौवर्णी चुपचाप बैठ गई ।]

चारुहासिनी—[पास मे पडी हुई कुर्सी पर बैठकर, और विलासिनी को बिठा कर] सौवर्णि ! विलासिनी ठीक ही तो कहती है । यदि तुम्हे प्रेमवार्ता, और आत्मीय जनो मे आपस मे जैसी बाते होती है, उस प्रकार की बाते नही अच्छी लगती, तो क्या हम लोग अग्निहोत्र की विधि या योग की साधन पद्धति के सम्बन्ध मे बात करे ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम्हारे पिताजी ही वेदान्त की शिक्षा देकर तुम्हे दूसरी गार्गी बना देगे, हम लोगो के साथ रहने और

'सखि सखि' इति मुधैवाऽऽवा सम्बोध्य वञ्चनं ?

विला०–प्रिये ! मा स्म उपेक्षिष्ठाश्चारुहासिन्या वचनम् । आवामेव तव प्रीतिपात्रे, अन्तरङ्गित्व-गर्विण्यौ सख्यौ । आवयोरप्यग्रे कदाऽपि किमपि न वक्षि । अन्तरेव कञ्चनानुरागमिव वहसि, कदाचिद् विमनायसे, अस्माभि शृङ्गार-रस-स्नाताना बहूनामाननान्यवलोकितानि सन्ति, त्व तु सदैवास्माभि सह क्रीडसि । कथ त्वया गोपितोऽप्यप्रकटो भवेत् तवानुराग-प्रवाह ? त्वमेव केवल स्पष्ट न ब्रूषे, किं तु तव नवाभ्यस्तापाङ्ग-प्रसारे दृशौ, आलीढ-ताली-दलच्छवि कपोल-

मुधैव = व्यर्थमेव । वञ्चनं = प्रतारणं । समदु खसुखे सखीजने रहस्यस्य निवेदनीयत्वादिति भाव ।

मा स्मोपेक्षिष्ठा = उपेक्षा मा कार्षी । माङि लुङ्" "न माङ् योगे" इत्याभ्या लुङडागमाभावौ । प्रीतिपात्रे = स्नेहस्थाने । अन्तरङ्गित्वस्य = रहस्यज्ञत्वस्य, गर्विण्यौ = अभिमानयुक्ते । न वक्षि = न कथयसि । अनुरागम् = व्यक्तिविशेषे प्रेम । शृङ्गार-रसस्नातानाम् = प्रेमिप्रणयप्रवाहे कृतमज्जनानाम् । अनुभूतविषयरसानामिति यावत् । गोपितोऽपि = यत्नादाच्छादितोऽपि । अप्रकट = अविस्पष्ट, दुर्ज्ञेय इति यावत् । नव = नूतन, अभ्यस्त

झूठ ही हम लोगो को "सखी ! सखी !" कह कर पुकार कर धोखा देने से क्या लाभ होगा ?

विलासिनी—प्रिये ! चारुहासिनी के कथन की उपेक्षा न करो । हम दोनो ही तुम्हारी स्नेहभाजन तथा तुम्हारी अन्तरङ्ग होने का अभिमान रखने वाली सखियाँ है । तुम, हम दोनो के आगे भी कभी कुछ भी नही कहती हो । अन्दर ही अन्दर किसी (के प्रति) अनुराग को धारण करती जान पडती हो, और कभी-कभी अनमनी हो जाती हो । हम लोगोने शृगार रस मे डूबे (या नहाए) हुए अनेक व्यक्तियो के मुखो को देखा है, और तुम तो सदैव हमारे साथ ही खेलती हो, फिर तुम्हारा (किसी के प्रति) अनुराग प्रवाह तुम्हारी छिपाने की चेष्टा के बावजूद भी, (हम लोगो की दृष्टि से) कैसे छिप सकता है ? यद्यपि तुम साफ-साफ नही कहती हो, (लेकिन) तुम्हारे नेत्र, जिन्होने

पाली, सह्रीस्तम्भ-निश्वास-मान्थर्य-माधुर्य-स्वरभङ्गा आलापाश्च सर्व स्फुटयन्ति । तदलमितोऽपि बाह्यैरालापशतै । सत्य कथय, किमिव चिन्तयसि ? केन च महाभाग्येन सहचरिता स्वमूर्ति स्वापेषु पश्यसि ?

[सौवर्णी पादाङ्गुष्ठ-नखेन भुवमालिखन्ती तूष्णीमेव समतिष्ठत ।]

चारु०—सौवर्णि ! तव दु खेन दु खिते आवामिति विश्वसिहि । त्वा हि कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय उद्यान प्रविश्य एकान्ते तरु-

=शिक्षित, अपाङ्गप्रसार =कटाक्षपातप्रकार, याभ्या ते। आलीढा= अङ्गीकृता, तालीदलच्छवि =द्रुमविशेषपत्रकान्तिर्यया सा, पाण्डुरिति यावत् । कपोलपाली =गण्डप्रान्त । ह्रीस्तम्भेन =लज्जावरोधेन, जातेन, निश्वासेन =दीर्घश्वासेन, यद् मान्थर्यमाधुर्यम् =आलस्यलालित्यम्, तेन स्वरभङ्गो येषु तादृशा । स्फुटयन्ति =प्रकटयन्ति । बाह्यै =बहिरङ्गभूतै । महाभाग्येन =विशिष्टभागधेयेन । सहचरिताम् =एकत्रावस्थिताम् । स्वापेषु = स्वप्नेपु । प्रत्यक्ष साहचर्य्यमनुभवन्त्या अपि अनिच्छन्त्या अपि च स्वापेपु साहचर्य भवतीति न ते दोष इति गूढव्यङ्ग्यम् ।

पादाङ्गुष्ठनखेन, भूलिखन लज्जिताना जाति । अस्मान् =सहचरी ।

अभी शीघ्र ही कटाक्षपात का अभ्यास किया है, तालपत्र की शोभा धारण करने वाले तुम्हारे गण्डस्थल तथा लज्जा के अवरोध से उत्पन्न नि श्वास से होने वाली मन्थरता के लालित्य के कारण होने वाले स्वरभङ्ग से युक्त तुम्हारी बातचीत सब कुछ स्पष्ट कर देती है, केवल तुम्ही (ऐसी हो जो) स्पष्ट रूप से कुछ नही बताती । अत अब भी सैकडो बाहरी (बनावटी) बाते बन्द करके, सच-सच कहो कि क्या सोचा करती हो ? स्वप्न मे अपनी मूर्ति (अर्थात् स्वय) को किस भाग्यवान् के साथ देखती हो ?

[पैर के अँगूठे के नाखून से भूमि कुरेदती हुई सौवर्णी चुप ही रही ।]

चारुहासिनी—सौवर्णी ! तुम्हारे दु ख से हम दोनो दु खी है, यह विश्वास करो । तुम्हे, कभी हम लोगो को छोडकर उद्यान मे प्रविष्ट होकर एकान्त मे

तले उपविशन्तीम्, क्वचन रहसि शिलासु उपविश्य करतले कपोल सस्थाप्यानिमिषाभ्या दृग्भ्या किमपि चिन्तयन्तीम्, कर्हिचित् कुञ्जान्त प्रविश्य गज-दन्त-फलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्, कदाचन पाण्डु-गण्ड-तल-विसृत्वराण्यश्रूणि पटप्रान्तेन मार्जयन्तीम्, क्वचित् लुण्ठितेनेव वञ्चितेनेव प्रनष्टेनेव अपहृतेनेव च हृदा कञ्चिद् धवलिमानमिवाङ्गेषु वहन्ती दर्श दर्श भिद्यत इवाऽऽवयो-

एकान्ते = रहसि, उपविशन्तीम् = आसीनाम्। उपवेशश्चाय न निरर्थक इत्यभिलाषाख्या प्रथमा स्मरदशा सूचिता। स्मरदशा हि दशसङ्ख्याका, तथा च साहित्यदर्पणे—

"अभिलाषश्चिन्ता स्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशा॥"

चिन्तात्मिका द्वितीया दशा दर्शयति—क्वचनेत्यादिना-चिन्तयन्तीमित्यन्तेन। शिलासु = प्रस्तरखण्डेषु। दृग्भ्याम् = नेत्राभ्याम्। चिन्तयन्तीम् = विचारयन्तीम्। गजदन्तफलके = हस्तिदन्तनिर्मितपीठे। प्रतिमूर्तिम् = प्रतिच्छविम्। लिखन्तीम् = रचयन्तीम्। एतेन स्मृतिनाम्नी तृतीया दशा प्रत्यक्षीकृता, गुणकथन च मानसमेनेनैव बोध्यम्। नहि विना गुणविचार प्रतिकृत्युल्लिखन सम्भवि।

* पाण्डु-गण्डतल-विसृत्वराणि = पीत–कपोलस्थल – प्रसरण – शीलानि। अश्रूणि = रोदनाम्बूनि। पटप्रान्तेन = वसनाग्रेण। मार्जयन्तीम् = प्रोञ्छन्तीम्। लुण्ठितेनेव = चोरितेनेव। एभिश्चतुर्भिरुन्मादादयश्चतस्रो दशा दर्शिता। मृतिपदेन च न मरण गृह्यत इति जानन्त्येव सुधिय। धवलिमानम् = श्वैत्यम्।

वृक्ष के नीचे बैठी हुई, कही एकान्त मे चट्टानो पर बैठकर हथेली पर कपोल रखकर निर्निमेष नेत्रो से कुछ सोचती हुई, कभी कुञ्ज मे प्रविष्ट होकर हाथी दाँत की पटिया पर किसी का चित्र सा बनाती हुई, कभी पीले पड गये कपोलो पर ढुलक रहे आँसुओ को कपडे के छोर (आँचल) से पोछती हुई, कही लुटे हुए से, ठगे हुए से, खोये हुए से, चुराये गये से हृदय वाली तथा अङ्गो मे एक प्रकार की सफेदी सी धारण करती देख-देख कर हम दोनो का हृदय विदीर्ण सा हो

हृदयम् । किमिव कुर्वं ! शतधा पृष्टाऽसि, सहस्रधा विश्वासमापिताऽसि, न वक्षि, न च सूचयसि । किन्तु विश्वासपात्रेऽस्मादृक्षे सखीजनेऽनुचितमेतत् । सर्वत सवृतोऽग्निरधिक तापयति, अनुद्गीर्ण विष प्राणानपहरति, असूचितो व्याधिरप्रतीकारो वर्द्धते, तदयमीदृशो दृढो निरोधस्तेऽनुरागस्याधिकमेव त्वा दु खाकरिष्यतीति सहाये सखीजने किमिव नान्तर्ज्वर विभजसि ? यथाऽऽवामपि सम-दु ख-सुखे भवेव ।

सौवर्णी तु करस्थ कुसुम-स्तवक क्षिप्त्वा, दक्ष-करतले एव कपोल

वहन्तीम् = धारयन्तीम् । दर्श दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा । आपिता = लम्भिता । न वक्षि = न कथयसि । न च सूचयसि = न बोधयसि । सवृत = अवरुद्ध । अधिकम् = भृशम् । अनुद्गीर्णम् = अवान्तम् । विषम् = हालाहलादि । असूचित = अबोधित, परेभ्योऽप्रकटीकृत । अप्रतीकार = अप्रतिक्रिय । दृढ = प्रबल । निरोध = गोपनम् । दु खाकरिष्यति = खेदवती विधास्यति । सहाये = सहायताकारिणि । अन्तर्ज्वरम् = मानसिक दु खम् । ज्वरपद कामज्वरोपस्थापकतया किमपि वैशिष्ट्यमाश्रयतीति स्वारस्यवेदिन । विभजसि = विभाग करोषि । 'सविभक्त हि दु ख सह्यवेदन भवती'ति कालिदास ।

कुसुमस्तबकम् = पुष्पगुच्छम् । क्षिप्त्वा = भूमौ निपात्य । निरन्तर-

---

जाता है । क्या करे ! सैकडो बार तुम से पूछा है, हजारो बार विश्वास दिलाया है, पर तुम बोलती ही नही, कुछ बताती ही नही हो । किन्तु हम लोगो के समान विश्वास पात्र सखियो के साथ ऐसा (दुराव या भावगोपन का) व्यवहार करना ठीक नही है । सभी ओर से ढकी हुई अग्नि अधिक तपाती है, वमन न करने पर विष प्राण ले लेता है, और न बताने पर रोग, चिकित्सा के अभाव मे, बढ (कर असाध्य हो) जाता है, अत तुम्हारे अनुराग का यह इतना दृढ अवरोध अधिक (गोपन) तुम्हे और दु खी कर देगा । ऐसी दशा मे तुम अपनी सहायक सखियो के साथ अपना आन्तरिक ताप बाँट क्यो नही लेती ? जिससे हम दोनो भी समान सुख और समान दु ख वाली हो जाये ।

सौवर्णी ने हाथ मे लिये हुए फूलो के गुच्छो को फेक कर, दाहिनी हथेली

सस्थाप्य, निरन्तर-परिक्रमण-क्लम-क्लान्त मुख कमलपल्लवोदरे सुप्त कलानाथमिव कदर्थयन्ती, विरह्-जन्मना धवलिम्ना भस्मनेव रूषिता, बदर-पाण्डुना गण्डेन, उष्ण-श्वास-प्रश्वासाघातशुष्केणाधरेण, स्वेदजुषा च वपुषा कञ्चन दुष्प्रतीकारमाधिप्रधान व्याधि स्पष्टयन्ती, चक्षुषी धवलयता, कपोलौ मलिनयता, अधर ताडयता, रागमपहरता,

---

परिक्रमण-क्लम-क्लान्तम् = सतत-परिभ्रमण-खेद-खिन्नम्। कमलपल्लवोदरे = पद्मकिसलयान्तराले । सुप्तम् = निद्रितम्। कलानाथम् = शशिनम्, इवेत्युत्प्रेक्षा। कदर्थयन्ती = तिरस्कुवती। विरहजन्मना = वियोगसमुत्थेन। धवलिम्ना = श्वैत्येन। भस्मनेव = भसितेनेव। रूषिता = छुरिता, लिप्ता। बदरवत् पाण्डुना = पीतेन। गण्डेन = कपोलेन। लुप्तोपमा। उष्णयो श्वासप्रश्वासयो आघाते, शुष्केण = नीरसेन। तापातिशयात् रूक्षेणेति यावत्। स्वेदजुषा = घर्मजलवता। दुष्प्रतीकारम् = दुश्चिकित्स्य निरौषधम्। आधि = मानसिकी व्यथैव, प्रधानम् = मुख्यम्, यस्मिन् तादृशम्। व्याधिम् = रोगम्। स्पष्टयन्ती = प्रकटयन्ती। चक्षुषी = नेत्रे। धवलयता = श्वेतिमान लम्भयता। कपोलौ = गण्डस्थले। मलिनयता = मलिनता प्रापयता। ताडयता = प्रहरता। रागम् = मुखोष्ठादिगत रञ्जनम्। अपहरता = दूरीकुर्वता।

पर ही कपोल रखे, हुए (काफी देर तक) निरन्तर टहलते रहने के परिश्रम से थके और मुरझाए हुए मुख को कमल की पखुडी पर सोए चन्द्रमा के समान तिरस्कृत करते हुए, विरहजन्य धवलिमा के कारण मानो भस्म भी रमाये हुए, बेर के समान पीले कपोलो, उष्ण श्वास और नि श्वास के आघात से सूखे हुए अधर और पसीने से तर शरीर से, किसी मानसिक व्यथा प्रधान असाध्य रोग को प्रकट करते हुए नेत्रो को धोकर सफेद कर देने वाले, कपोलो को मलिन कर देने वाले, अधर को स्पर्श (ताडित) करने वाले, (अधर के) राग (रञ्जक द्रव्य के प्रयोग से उत्पन्न लालिमा) का अपहरण करने वाले,

वक्षसि शतधारीभूय पट-सन्धिषु प्रवहता, बाष्प-बिन्दु-सन्दोह-प्रवाहेण स्वान्तस्थ धैर्यं गाम्भीर्यं च बहि प्रवाहयामास ।

ता तथा नि शब्दरोदनेनापि रोदसी रोदयन्तीम्, सधडत्कृतिना वक्षसा, विवर्णेन वदनेन, शून्यया दृष्ट्या, विकलया चाङ्गयष्ट्या, अतिस्फुटीकृत-प्रिय-विरह-क्लेशमाकलय्य, परवशतामङ्गीकुर्वदिव हृदयम्, भज्यमानामिव वाचम्, रुध्यमानमिव कण्ठम्, वेपमानमिव विग्रहम्, प्लाव्यमानमिव च चक्षु , कथ कथमिव स्ववशवद विधाय ते

बाष्पेणापसारणादिति भाव । शतधारीभूय = अनेकप्रवाहता गत्वा । पट-सन्धिषु=वसनबन्धनेषु । प्रवहता = प्रसरता । बाष्प-बिन्दु-सन्दोह-प्रवाहेण= अश्रुपृषत्समूहधारया । स्वान्त स्थम् = आभ्यन्तरिकम् । प्रवाहयामास = धारारूपेण नि सारयामास ।

नि शब्दम् = ध्वनिशून्यम्, यद् रोदन तेन । रोदसी = द्यावापृथिव्यौ । रोदयन्तीम् = खेदयन्तीम् । सधडत्कृतिना = धडत्कारसहितेन । वक्षसा = हृदयेन । विवर्णेन = शुष्केण । वदनेन = लपनेन । विकलया = त्रुटितया, अङ्गयष्ट्या = देहेन । अतिस्फुटीकृत–प्रिय–विरहक्लेशाम् = अतिव्यक्ती-कृत–प्रेयो–वियोग–खेदाम् । आकलय्य = ज्ञात्वा । परवशताम् = पराधीनताम् । अङ्गीकुर्वत् = स्वीकुर्वत् । भज्यमानाम् = त्रुटयमानाम् । रुध्यमानम् = अनिर्गमच्छ्वासम् । वेपमानम् = कम्पमानम् । विग्रहम् = शरीरम् । प्लाव्य-

---

वक्षस्थल पर गिरकर सैंकडो धाराओ मे विभक्त होकर साडी की सन्धियो (ग्रन्थियो या सिलन) मे बहने वाले अश्रुजल के प्रवाह से, अन्त स्थित धैर्य और गाम्भीर्य को बाहर बहा दिया (अर्थात् बाहर निकाल दिया) ।

उसे उस प्रकार मौन रुदन से भी आकाश-पाताल को रुलाती, और धडकते हृदय, विवर्ण (उदास होने के कारण मलिन) मुख, सूनी दृष्टि और व्याकुल शरीर से प्रिय के वियोग की व्यथा को सुस्पष्ट करती जानकर, उन दोनो सखियो ने, अपने परवश से होते हुए हृदय, खण्डित सी होती हुई वाणी, रुँधते हुए से कण्ठ, काँपते हुए से शरीर और डबडबा सी आई

अश्रु-मार्जनै कदली-दल-वीजनै शान्त-वचनैश्च सान्त्वयामासतु ।

अथ क्षणानन्तरमात्मानमात्मनैव स्थिरयित्वा चारुहासिनी विलासिनी च सम्बोध्य वक्तुमारभत सौवर्णी—

"भगिन्यौ ! भवत्यावेव मम जीवने, भवत्यावेव ममाऽऽधारौ, भवत्यावेव च सर्वथा बन्धू इति भवत्यौ विहाय कोऽन्योऽस्ति, यदग्रे मानस सुख वा दु ख वा प्रकटयेयम्, किन्तु वित्थ एव भाग्यहीनाया मम व्यतीत वृत्तान्तम् । नाह जननी-क्रोड-क्रीडासुख स्मरामि । नाह तात-लालन-सुखस्य स्वप्नमपि पश्यामि । नाह स्वदेशस्य स्वजन्म-

---

मानम् = स्नप्यमानम् । स्ववशवदम् = स्वाधीनम् । ते = सहचर्यौ ।

आत्मानम् = स्वम् । आत्मनैव = स्वयमेव । स्तम्भयित्वा = अवरोध्य ।

जीवने = प्राणने । आधारौ = आश्रयौ । सर्वथा = सर्वप्रकारेण । बन्धू = भ्रातृकल्पे, कल्याणकारिण्याविति यावत् । मानसम् = मनस्सम्बन्धि । वित्थ = जानीथ । लटो मध्यमपुरुषस्य द्विवचनम् । भाग्यहीनाया = भागधेयशून्याया, दुर्भाग्याया इति यावत् । व्यतीतम् = विगतम्, वृत्तान्तम् = प्रवृत्तिम् । जननी-क्रोड-क्रीडा-सुखम् = मात्रङ्क-परिष्वङ्ग-मोदम् । तात-लालन-सुखस्य = जनक-

---

आँखो को, किसी प्रकार नियन्त्रित करके, उस (सौवर्णी) के आँसुओ को पोछकर, उसे केले के पत्ते से पखा झलकर और सान्त्वनापूर्ण बाते कहकर, उसको आश्वस्त किया (ढाढस बँधाया) ।

तदनन्तर, क्षण भर बाद, अपने को स्वय ही सँभाल कर, चित्त स्थिर करके, सौवर्णी चारुहासिनी और विलासिनी को सम्बोधित करके बोली—

'बहनो ! आप ही मेरा जीवन है, आप ही मेरा सहारा है, आप ही मेरी सभी प्रकार की साथी हैं, अत आपके अतिरिक्त दूसरा और कौन है ? जिसके आगे अपने हृदय के सुख-दु ख को प्रकट करूँ, परन्तु आप दोनो मुझ अभागिन के बीते हुए वृत्तान्त को तो जानती ही है । मुझे माँ की गोद मे खेलने के सुख का स्मरण भी नही है, पिता के लाड-प्यार का स्वप्न भी नही दिखाई पडता, मै अपने देश

भुवश्च कथामपि शृणोमि, न वाऽह चिरविनष्टयोर्भाग्यैं पुन प्राप्त-योरपि भ्रात्रो सहवास-सुखमनुभवामि । अहह ! मातृपितृ-विहीनाया भाग्य-हीनाया दीनाया मम भ्रातरावेव त्वाधारभूतौ । हन्त ! तयोश्च प्रत्यह सम्मुखस्था खड्गधारा, प्रतिक्षण च पार्श्व-परिवर्तिन प्रत्य-र्थिन । द्वार-देशमालोकयन्ती वासर व्यत्यापयामि । हन्त ! स्वप्नेऽवपि रणाङ्गण-गतावेव सोदरौ पश्यामि-इति नास्ति मे कदाऽपि सुख-लेश । मृगतृष्णासु, तृष्णाभिरापतन्ती मृगीव च य प्राणनाथ मन्य-माना " इत्यर्द्धोक्तावेव नि श्वस्य व्यरमत् ।

पालनानन्दस्य । स्वप्नमपि पश्यामि, साक्षात्कारस्य तु कथैव का ? चिर-विनष्टयो = अत्यधिककालाददृष्टयो । सहवास-सुखम् = एकत्रस्थितिमोदम् । मातृ-पितृ-विहीनाया = जननीजनकशून्याया । 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' इत्यानङ् । सम्मुखस्था = पुरोवर्त्तिनी । खड्गधारा = असिधारा । पार्श्वपरिवर्त्तिन = वामे दक्षे च स्थिता । प्रत्यर्थिन = अरय । व्यत्यापयामि = क्षपयामि । रणाङ्गणगतौ = सङ्ग्रामभूमि प्राप्तौ । सुखलेशः = अल्पमपि सुखम् । मृग-तृष्णासु = मरीचिकासु । पिपासिता मृगा निदाघे सौरीभिर्माभिर्भासमानेषूषरेषु दूरस्थेषु जलभ्रान्त्या धावन्ति, तत्र गत्वा जलमलब्ध्वा पुनर्दूरे तथाविधमेव स्थला-न्तर वीक्ष्य धावन्तीत्येव क्रमेणातपसन्तप्ता म्रियन्ते । तदेतन्मृगतृष्णापदेना-ऽभिधीयते । यम् = पौरुषधौरेय कमपि, प्राणनाथम् = प्राणेश्वरम् । अर्द्धोक्तौ = अर्द्धमेव कथिते । व्यरमत् = भाषणाद् विरताऽभूत् । "व्याङ्परिभ्यो रम " इति

तथा जन्मभूमि की चर्चा भी नही सुनती, न तो मै अपने चिरकाल से खोये हुए तथा सौभाग्यवश पुन प्राप्त हुए दोनो भाइयो के साथ रहने के सुख का ही अनु-भव कर पाती हूँ । हा ! माता-पिता से रहित मुझ हतभागिनी दुखिया के आधार तो मेरे दोनो भाई ही है । हा ! उनके भी आगे प्रतिदिन तलवार की धार ही रहती है, हर समय दोनो ओर शत्रु ही रहते है । दरवाजे की ओर देखती हुई दिन बिताती हूँ । हा ! स्वप्नो मे भी दोनो भाइयो को युद्धभूमि मे ही पहुँचा हुआ देखती हूँ । इस प्रकार मुझे लेशमात्र भी सुख नही ह । प्यास के कारण मृगतृष्णा मे पडी हुई मृगी की भाँति जिसको अपना प्रियतम

ततस्तयो—"कथय, मा स्म रोदी, कस्मिन् मनोऽनुरक्तम् ? क प्राणनाथता सनाथित ? को भवत्या मनोमन्दिर प्रविष्ट ?"—इति साम्रेड कथयन्त्यो पुनराह सौवर्णी—

"य च प्राणनाथ मन्यमाना मनोरथ-सन्तान-वितानैरात्मान व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे। आवसथमपि न वेद्मि। पात्रेऽयमभिलाप, सुपरिणामोऽय चित्तबन्ध इत्यपि न जाने। केवलमेन प्रातिपदिक चन्द्रमिव कदाचित् क्षणाय दूरतोऽवलोक्य चिर-दाह-दग्ध हृदय-हतक शीतलयामि। दु ख-कथा-कथन-समये दु ख-मधिकमधिक वर्द्धते इति भवतीभ्या पृष्टाऽपि न ब्रवीमि, अनुरुद्धाऽपि

परस्मैपदता। लज्जाशोकातिरेकान्मध्ये तूष्णीम्भाव। अनुरक्तम्=सप्रेम। प्राणनाथतया=पतित्वेन, सनाथित=वृत। मनोमन्दिरम्=चेत पूजालयम्।

मनोरथ-सन्तान-वितानै=अभिलापसमूहप्रसारणै। व्यथयामि=पीडयामि। आवसथम्=गृहम्। पात्रे=योग्ये। सुपरिणाम=अन्ते सुखप्रद, चित्तबन्ध=मनोनिवेश। प्रतिपदि भव प्रातिपादिकम्=आद्यतिथ्युदितम्। यद्यपि द्वितीयाशशिन एव चक्षुर्गोचरता, तथापि तमेव प्रतिपच्चन्द्रत्वेनाश्रित्य कवय उपमानभाव कल्पयन्ति। तथा च दामोदरो भारवि—"प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्" "प्रतीपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मज" इति कालिदासश्च। चिर-दाह-दग्धम्=

मानती हुई "सौवर्णी इतना अपूर्ण वाक्य कहकर ही निश्वास लेकर रुक गई।

इसके बाद उन दोनो सखियो के, "कहो कहो, रोओ नही, किसमे मन अनुरक्त हुआ है ? किसको प्राणेश्वर का गौरव दिया है ? कौन तुम्हारे हृदय-मन्दिर मे प्रविष्ट हुआ है ?" इस प्रकार बार-बार कहने पर सौवर्णी पुन कहने लगी—

"जिसको प्रियतम मानकर कामनाओ के जाल मे अपने आपको खिन्न करती हूँ, उसका महीनो से समाचार भी नही मिला है। मै उसका निवास भी नही जानती, मै यह भी नही जानती कि मेरी यह अभिलाषा योग्य-पुरुष-विषयक है, यह मन का लगाव सुखान्त है या नही। केवल उसे प्रतिपदा के चन्द्रमा की भाँति कभी क्षण भर के लिये दूर से देखकर दीर्घकाल के विरह मे तप्त अभागे हृदय को शीतल कर लेती हूँ। दु ख की कहानी सुनाते समय दु ख और अधिक बढ

चापवृणोमि। तत् सख्यौ! अलं मादृक्षाया हतभाग्याया मुखमप्यवलोक्य। परश्शता रत्नभूता रणाङ्गणेषु प्रत्यहं शेरते। मम तु विधिना मृत्युरपि ललाटे नालेखि" इति कथयन्त्या एव तस्या हस्तं गृहीत्वा चारुहासिनी समवादीत्—

"हला! मा स्म वदस्तत्। मातृपितृ-सुखं सर्वे सदा नानुभवन्ति, विरह-दुःखमननुभूय न कोऽपि प्रेयसा संयुङ्क्ते, केनापि पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातमसोढ्वा मुक्ता नाऽऽप्यन्ते, शतशः शङ्कूलाभिरनुत्कृत्ता देवमूर्तिः सुसिंहासनार्हां सुषमां न कलयति। तत् समाश्वसिहि।"

तीव्रवियोगानलज्वलितम्। अनुरुद्धा = अनुरोधविषयं गमिता। अपवृणोमि = आच्छादयामि। मादृक्षायाः = मत्तुल्यायाः।

हला!, सखीनां पारस्परिकं सम्बोधनमिदम्। "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वानम्" इत्यमरः। मा स्म वद = मृत्युप्रभृतिविषये न किमपि निवेदय, अमङ्गलत्वात्। विरह-दुःखम् = वियोगखेदम्। अननुभूय = अनुभवगोचरमविधाय। प्रेयसा = प्रियतमेन। संयुङ्क्ते = सम्मिलति। पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातम् = समुद्र-लहरि-सञ्चलन-ताडनम्। मुक्ताः = मणयः। नाऽऽप्यन्ते = न लभ्यन्ते। शङ्कूलाभिः = प्रकृते टङ्कैः। अनुत्कृत्ता = अनुल्लिखिता। सुसिंहासना-

---

जाता है। इसलिये आप दोनों के पूछने पर भी कुछ नहीं बताती, और अनुरोध करने पर भी छिपाती हूँ। अतः सखियो! मुझ अभागिनी का मुख भी न देखो। रत्न के समान सैंकड़ों वीर युद्धभूमि में प्रतिदिन धराशायी हो रहे हैं, मेरे ललाट में तो विधाता ने मृत्यु भी नहीं लिखी है।"

सौवर्णी यह कह ही रही थी कि चारुहासिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—

"सखि! ऐसा न कहो। माता-पिता का सुख सभी लोग सदैव नहीं पाते, वियोग की व्यथा का अनुभव किये बिना कोई भी प्रिय से नहीं मिलता, समुद्र की लहरों के नर्तन का आघात सहन किये बिना किसी को भी मोती नहीं मिलते, सैंकड़ों बार छेनी से गढ़े बिना देवमूर्ति अच्छे सिंहासन पर

ततश्चिराय तासां बहुविधो मन्द मन्दमालापो जात । अथाऽकस्मादेव समश्रावि कस्यापि वालस्येव "अत्तिके ! अत्तिके !" इति दूराहूति ।

तत सौवर्ण्या "चारुहासिनि ! तवानुजस्त्वामाह्वयति" इति अवाचि। चारुहासिनी च विलासिनीमपि "उत्तिष्ठ प्रजावति ! गच्छाव" इति कथयित्वा, "गोपाल ! एषाऽऽयामि, तद् गच्छ, अम्वा कथय" इति तमप्युक्त्वा, सौवर्णी वहु सान्त्वयित्वा, सोत्प्रासमनुमतिमासाद्य प्रचलिता। तामेव च विलासिन्यप्यनुससार।

अनयोरेका मन्दिराध्यक्ष-महाराष्ट्र-ब्राह्मणस्य पुत्री, अन्या च पुत्रवधू ।

र्हाम् = शोभनविष्टरस्थितियोग्याम् । सुषमाम् = शोभाम् । "सुषमा परमा शोभा' इत्यमर । समाश्वसिहि = धैर्यमाश्रय ।

अत्तिके ! = भगिनि ! । "अत्तिका भगिनी ज्येष्ठा" इत्यमर । दूराहूति = दूरादाह्वानम् । सम्वोधनमिति यावत् । अवाचि = उक्ता । अवोचीति प्रयुञ्जन्तस्तु विस्मृत-"वच उम्" सूत्रार्था एवेति न तिरोहितम् । प्रजावति ! = भ्रातृजाये ! "प्रजावती भ्रातृजाया" इत्यमर । अम्वाम् = मातरम् । सोत्प्रासम् = सेषद्धास्यम् । अनुमतिम् = अनुज्ञाम् । अनुससार = अनुसृतवती ।

अनयोरित्यनेन एते परिचाययति पाठकेभ्य कवि तयोरिति। पुत्रवधू = स्नुषा । "वधूर्जाया स्नुषा स्त्री चे' त्यमर ।

आसीन होने योग्य सौन्दर्य नही धारण कर पाती, अत धैर्य धारण करो।

उसके बाद देर तक उन सब की धीरे-धीरे तरह-तरह की वातचीत हुई। तब तक सहसा किसी वालक की सी वहिन ! "वहिन !" की, दूर से आती हुई पुकारने की आवाज सुनाई पडी।

तब सौवर्णी ने कहा—'चारुहासिनी ! तुम्हारा भाई तुम्हें वुला रहा है,' और चारुहासिनी, विलासिनी को भी, 'उठो भाभी चलें' कह कर, 'गोपाल ! मैं अभी आई, जाओ, माँ से कह दो,' इस प्रकार अपने अनुज से कह कर, सौवर्णी को सान्त्वना देकर, उसकी अनुमति लेकर, मुस्कराती हुई चली गई।

इन दोनो मे एक मन्दिर के अध्यक्ष, जो एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण है, उनकी पुत्री तथा दूसरी उन्ही की पुत्रवधू है ।

सयोर्गतयो पुनरेकलैवोपविश्य स्वकटि-पट-प्रान्तासज्जितमेक गज-दन्त-पट्टिका-फलकमुत्सार्य करे धृत्वा, तत्र स्वयमेव लिखिता रघुवीर-मूर्तिमालोकयन्ती, स्वयमपि चित्रलिखितेव यावत् कांश्चन क्षणानतिवाहयति, तावत् पृष्ठत स्थितस्येव कस्यचन श्वास-भङ्ग-मश्रौषीत् । सपदि पृष्ठत परिवृत्य च तमेव चिर-चिन्तित प्राणाधार रघुवीरमपश्यत् । चकित-चकितेव च झटिति समुत्थाय, मुदिता, मोहिता, कम्पिता, भीता, ह्रीता, चैकतो नतमुखी, फलक गोपयन्ती समवतस्थे । रघुवीरस्तु तस्मिन्नेवावसरे वेगेन हयेन समायातो मुहुरत्राऽऽयातीति केनापि सवैलक्ष्यमवोक्षित, सपदि वृक्षस्यैकस्य

एकला = एकाकिनी । स्व-कटि-पट-प्रान्तासज्जितम् = निज-मध्य-भाग-शाटिकाञ्चलनिबद्धम् । गजदन्त-पट्टिका-फलकम् = हस्तिदन्त-पीठिका-खण्डम् । उत्सार्य = नि सार्य । क्षणान् = मुहूर्त्तान् । अतिवाहयति = यापयति । श्वास-भङ्गम् = उच्छ्वासम् । चकितचकितेव = भीतभीतेव, इवेन भयस्याकिञ्चित्-करत्व द्योतितम् । मुदिता = प्रसन्ना । मोहिता = विक्षिप्ता । भावशाबल्य अकस्माद् दर्शनेन हर्षाधिक्यात् । फलकम् = पट्टकम् । गोपयन्ती = आच्छादयन्ती । समवतस्थे = आसाञ्चक्रे । वेगेन = जवेन । सवैलक्ष्यम् = सविस्मयम्, "विलक्षो

उन दोनो के चले जाने पर अकेली ही बैठकर अपनी कमर के फेटे मे बँधी एक हाथी-दाँत की पटिया निकाल कर, हाथ मे लेकर उसमे अपने ही द्वारा बनाये गये रघुवीर के चित्र को देखती हुई स्वय भी चित्रलिखित सी जब तक कुछ क्षण व्यतीत करती है, तब तक जैसे पीछे किसी का उच्छ्वास सुनाई पडा । पीछे घूमकर देखने पर उसने उसी प्रियतम रघुवीर को देखा, जिसके सम्बन्ध मे वह बडी देर से चिन्ता कर रही थी । अत्यन्त चकित सी वह, झटपट उठकर, प्रसन्न, मुग्ध, भीत और लज्जित होकर, उस पट्टिका को छिपाती हुई, नीचे मुँह करके, एक ओर खडी हो गई ।

रघुवीर अभी तीव्रगति वाले घोडे से आया है । वह प्राय यहाँ आता रहता है, अत किसी ने उसे आश्चर्य या हैरानी से नही देखा । वह शीघ्रता से घोडे की

रघुवीरो हि यदैवास्मिन् प्रान्ते समायाति, तदैव केनापि व्याजेन हनूमन्मन्दिरस्यापि परिक्रमान् करोत्येव, एतद्वाटिकाया अपि धीर-समीर-स्पर्श-सुखमनुभवति, यथासम्भव सौवर्णीसाक्षात्कारेण च

विस्मयान्विते" इत्यमर । अवीक्षित = अनवलोकित । आजानेयवल्गाम् = सदश्व-कविकाम् । उपवनपर्यटनेन = उद्यानभ्रमणेन । अकस्मात् = सहसा । चूर्णकुन्तला = अलका । भ्रमरका = बर्बरीका । "घुघराले बाल" इति हिन्दी । श्मश्रुप्ररोहस्थली = ओष्ठोर्ध्व रोमोद्गम-स्थलम् । मौक्तिकव्रातेन = मुक्ताव्रजेन । स्वेद-बिन्दु-व्रजेन=घर्मपृषद्गणेन । चिरसन्दृष्टा = बहुकाला-वलोकिता । प्रेयसी = प्रियतमा । उद्वेलित इव = उच्छलित इव । स्वेद-प्रवाह = घर्माम्बुपूर ।

प्रान्ते = देशैकदेशे । परिक्रमान् = परिभ्रमणानि । धीर-समीरस्य = मन्दमारुतस्य, स्पर्शसुखम् = सम्पर्कमोदम् । सौवर्णीसाक्षात्कारेण = सौवर्णी-

---

लगाम को एक वृक्ष की शाखा मे बाँधकर, उद्यान मे टहल कर पसीना सुखाने के लिए, अकस्मात् इधर आ गया है, अतएव अब भी उसके पसीने से भीगे कपोलो और ललाट पर घुघराले और उलझे हुए बाल चिपके हुए है। उसके मूछो के उगने का स्थान, मोतियो के समूह की सी पसीने की बूदो से अङ्कित है, उस पर भी एकाएक बहुत दिन पहले देखी गई चिर अभिलषिता प्रियतमा के एकान्त मे पुन दिखाई पड जाने से उसके पसीने का प्रवाह पुन उमड सा पडा।

रघुवीर जब भी स स्थान पर आता है, तो किसी न किसी बहाने हनुमान् जी के मन्दिर की भी परिक्रमा अवश्य कर लेता है, और इस वाटिका के मन्द-पवन के स्पर्श का आनन्द भी ले लेता है, तथा जहाँ तक सम्भव होता है, सौवर्णी को देख-

चिरतृपिते नयने सन्तर्पयति। एतेन सौवर्ण्या सह समालापस्यापि पञ्चषा अवसरा प्राप्ता इति नायमालापस्य प्रथम क्षण । रघुवीरेणैतस्या कमलोदरसोदरे करे दन्ति-दन्त-फलकालिखिता स्वप्रतिकृतिरपि साक्षात्कृता, प्रेयस्या विलुलित-वारि-विन्दुव्रजे लोचने अपि चाऽऽलोकिते, तदेना स्वविरह-दु ख-दु खितामाकलय्य, स्वयमपि दु खित प्रोवाच—

"प्रिये ! किमेतत ? अहह ! किमिति ताम्यसि, शुष्यसि, ग्लायसि, खिद्यसे च ? मुधा मादृशे पथिकजने पराधीने रज्यसे। हन्त ! अहमेव वा कि करोमि ? अश्व-पृष्ठमेव मे गृहम्, असिरेव मम कुटुम्बम्, परिश्रम एव मे धनम्, स्वामिभक्तिरेव मे यश , तत् कथ मादृश-

दशनेन। चिरतृषिते = चिररात्राय पिपासिते। समालापस्यापि = वार्त्ताकरणस्यापि। पञ्च वा षड् वा पञ्चषा । क्षण = काल । कमलोदरसोदरे= पद्मान्तरालतुल्ये। स्वप्रतिकृति = निजप्रतिमूर्त्ति । विलुलित = विच्छुरित, वारिबिन्दुव्रज = जल-कण-समूह, ययोस्ते। आलोकिते = दृष्टे।

ताम्यसि = दु खिनी भवसि। शुष्यसि = शोषमेषि, दुर्बलीभवसीति यावत्। ग्लायसि = क्षीणहर्षा भवसि। खिद्यसे = खेदमनुभवसि। रज्यसे = अनुराग करोषि। अश्वपृष्ठमेव = घोटकपृष्ठमेव, सर्वदा तत्स्थत्वात्। कुटुम्बम्= बन्धु-

कर अपने चिर पिपासित नेत्रो को भी तृप्त कर लेता है। इसे सौवर्णी के साथ बातचीत करने के भी पाँच-छ अवसर प्राप्त हो चुके थे। अत यह वार्तालाप का पहला अवसर नही था। रघुवीर ने सौवर्णी के कमल के मध्यभाग के सदृश सुन्दर हाथ मे, हाथी दाँत की पटिया पर बनाया गया अपना चित्र भी देख लिया था, और प्रियतमा की डबडबायी हुई आँखे भी देख ली थी, अत उसे (सौवर्णी को) अपने वियोग की पीडा से व्यथित समझ कर स्वय भी दु खी होकर बोला—

"प्रिये ! यह क्या ? हा ! दु खी क्यो हो रही हो? सूखती क्यो जा रही हो ? उदास और खिन्न क्यो होती हो ? व्यर्थ ही मुझ जैसे पराधीन पथिक पर अनुरक्त हो गई हो। हा ! मै ही क्या करूँ ? घोडे की पीठ ही मेरा घर है, तलवार ही मेरा परिवार है, परिश्रम ही मेरा धन है, स्वामिभक्ति ही मेरा यश है, तो क्यो

मशरणमव्यवस्थ च चिन्तयन्ती चेतश्चञ्चलयसि? प्रत्यह शुष्यन्ती तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेऽप्युद्विजे। कतिवार "सौवर्णि! सौवर्णि! मा स्म खेदयया आत्मानम्" इति स्वप्नेचाऽह चीदकरवम्, व्यलपम्, उदस्थाम्, करौ प्रासारयम्, अरोदिष च। सप्रश्रय प्रार्थये—विरम विरम, मा स्म जटालाभिश्चिन्ता-ज्वालाभि कुसुमानीव कोमलान्यङ्गानि धाक्षी" इति।

सौवर्णी तु पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन्ती, परिवर्तितवदना मन्द मन्दमभ्यधात्—"वीर! अभाग्य एष जन, अस्वायत्त हृदयम्, विगलित धैर्य्यम्, पराधीन चित्तम्, अस्थिर आत्मा, दुर्निवार प्रेमप्रवाह,

---

जन। अशरणम् = अनाथम्। अव्यवस्थम् = अनिश्चितावासम्। चञ्चलयसि = चपलयसि। शुष्यन्तीम् = कार्श्यमाश्रयन्तीम्। उद्विजे = खेदमनुभवामि। चीदकरवम् = चीत्कारमकापम्। व्यलपम् = विलापमन्करवम्। उदस्थाम् = उत्थितोऽभूवम्। करौ = हस्तौ। प्रासारयम् = क्रोडीकरणार्थम्। अरोदिषम् = अक्रन्दम्। सप्रश्रयम् = सनम्रतम्। जटालाभि = जटामयीभि, विपुलाभिरिति यावत्। अङ्गानि = अवयवान्। मा स्म धाक्षी = मा दह।

परिमृशन्ती = परिमार्जयन्ती। परिवर्त्तितवदना = अन्यत कृतानना। अभ्यधात् = अकथयत्। अस्वायत्तम् = अस्वाधीनम्। विगलितम् = विल-

---

मुझ जैसे अनाथ एव अव्यवस्थित व्यक्ति के विषय मे सोच-सोचकर चित्त को चञ्चल कर रही हो? अनुदिन सूखते जा रहे तुम्हारे शरीर को देखकर मैं स्वप्नो मे भी उद्विग्न हो जाता हूँ। मै कितनी ही बार स्वप्न मे सौवर्णी, सौवर्णी! अपने को कष्ट न दो" इस प्रकार चिल्ला उठा हूँ, विलाप करने लगा हूँ उठ गया हूँ, और मैने अपने दोनो हाथो को फैला दिया है, और तुम्हे न पाकर मै रोया भी हूँ। मै तुमसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ रुक जाओ, रुक जाओ, चिन्ता की भीषण ज्वालाओ मे अपने फूलो के समान कोमल अगो को मत जलाओ।"

सौवर्णी आँचल से आखे पोछती हुई मुख फेरकर धीरे-धीरे कहने लगी—"वीर! मै अभागिनी हूँ, मेरा हृदय वश मे नही है, धैर्य छूट (समाप्त हो)

दुरन्तोऽभिलाष , अप्रतिरोधा कर्म-रेखा, तत् किमिव वच्मि ? किमिव भावयामि ? न जाने कीदृश वज्रादपि निष्ठुर हृदय भवादृशाना व्यरचि विधात्रा, ये स्वसमर्पितजीवनानामनन्यशरणाना वचनमात्रेणापि विश्वासमापाद्य, सुधासारासारैरिव ज्वलज्जीव-जीवन-जीवातु-भूतैरालापैरालोकैरपि च दु ख-दाव-दन्दह्यमान देह न शीतलयन्ति"

प्टम् । आत्मा = अन्त करणम् । दुरन्त = असुखपरिणाम । अभिलाष = मनोरथ । अप्रतिरोधा = रोद्धुमनर्हा, अवारणीयेति यावत् । भावयामि = करोमि । वज्रादपि = अशनेरपि । निष्ठुरम् = कठोरम् । भवादृशानाम् = लोकोत्तराणाम् ।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणा चेतासि को नु विज्ञातुमर्हति ॥"

इत्युत्तररामचरिते भवभूति । स्वसमर्पितजीवनानाम् = स्वसमुत्सृष्टप्राणानाम् । अनन्यशरणानाम् = अनितरनाथानाम् । सुधासारासारैरिव = पीयूपधारावर्षैरिव । ज्वलताम् = दहताम् । जीवानाम् = प्राणिनाम्, जीवनस्य = प्राणनस्य । जीवातुभूतै = जीवनौषधिभि । आलापै = मधुरभाषणै । आलोकै = दर्शनै । दु ख-दाव-दन्दह्यमानम् = क्लेशाग्निजाज्वल्यमानम् । न शीतलयन्ति = न शिशिरयन्ति ।

गया है, मन पराधीन (हो गया) है, और अन्त करण चञ्चल है, प्रेम-प्रवाह को रोका नही जा सकता, मनोरथ का परिणाम दु ख ही है, और भाग्य की रेखा अमिट है । क्या कहूँ ? क्या करूँ ? विधाता ने आप के से लोगो के हृदय को न जाने कैसा वज्र से भी कठोर बनाया है कि आप के से लोग, अपने को जीवन समर्पित कर देने वाले, अपनी शरण मे आये हुए, अनन्य शरण व्यक्ति के दु ख की ज्वाला मे जलते हुए शरीर को, वचन मात्र से भी विश्वास पैदा करके अमृत की धारा की वर्षा के समान, जलते हुए प्राणियो के लिये प्राणदायक (जल के समान) मधुर भाषणो तथा दर्शनो से भी शीतल नही करते ।"

इति कथयित्वा, अश्रूणि मुञ्चन्ती स्वप्राणाधारभूतामालोक्य विस्मृतात्मा, सपदि समीपमागत्य, स्वकक्ष-गुटिकात पट-खण्ड निस्सार्य स्वहस्तेन तद्बाष्पाणि अपहरन्, द्वित्रैमौक्तिकैरिव च स्वचक्षु - पतितै कवोष्णैर्बिन्दुभिस्तद्धम्मिल्ल-मतल्लिकामासिञ्चन्, भग्नेन स्वरेण मन्दमगादीद् रघुवीर —

"किमत्र सशेषे ? कोऽत्र सन्देह ? काऽत्र विचिकित्सा ? कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढो मे नियम । त्व क्षत्रिय-कन्याऽसि, सुक्षत्रिय एवैष जन ।

अश्रूणि मुञ्चन्तीम् = रुदन्तीम् । स्वप्राणाधारभूताम् =स्वजीवनाश्रय-भूताम् । स्वकक्ष-गुटिकात = निजबाहुमूलान्तरालस्थापितपोटलिकात । पट-खण्डम् = कर्पटम् । मौक्तिकैरिव, इत्युपमा । कवोष्णै = ईषदुष्णै । "कव चोष्ण" इति कवादेश । धम्मिल्ल-मतल्लिकाम् = प्रशस्त सयतकचम् । "मतल्लिका मर्चचिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकानि" इत्यमर । प्रशसा-वचनैश्च" इति परनिपात । भग्नेन = त्रुटितेन ।

सशेषे = सशय करोपि । विचिकित्सा = सशय । "विचिकित्सा तु सशय" । दार्ढ्याय पुनरुक्ति । कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेन = आबालब्रह्म-चर्य-रूपेण महता नियमेन । जर्जरयिष्यामि = जीर्णयिष्यामि । परिणेष्यामि = विवाहयिष्यामि । क्षत्रियस्य । कन्या = बालिका । सुक्षत्रिय =

यह कहकर, आँसू बहाती हुई, अपनी प्राणप्रिया को देखकर आत्म-विस्मृत रघुवीर तत्काल पास आकर, अपनी काँख मे दबी पोटली से रुमाल निकाल कर, अपने हाथ से उसके आँसुओ को पोछता हुआ, अपनी आँखो से गिरे हुए, मोतियो के से, दो तीन कवोष्ण (कुछ गरम) अश्रुविन्दुओ से उसके प्रशस्त केशपाश को सीचता हुआ लडखडाते हुए स्वर से धीरे से बोला—

"इसमे सशय क्यो कर रही हो ? इसमे क्या सन्देह है ? कौन सी विचिकित्सा है ? मै या तो बाल-ब्रह्मचारी रहने का महाव्रत धारण कर इस शरीर को जर्जर कर डालूंगा, या तुम्ही से विवाह करूँगा, यह मेरा दृढ निश्चय है । तुम

त्व राजपुत्र-देशीयाऽसि, तद्देशीय एव चाहम् ।' अनुरागश्चोभयत, तद् यदि तवाग्रजौ पूज्यपुरोहितश्चानुमन्येरन्, तत् प्रकटमेव तूर्णमेव च स्यात् परिणय "

इति वदत्येव तस्मिन् "सौवर्णि ! कुतोऽसि ? अग्रजस्त्वा प्रतीक्षते, आगच्छ, आगच्छ" इति देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहितेव दूराहूतिराकर्णि । सद्य एव च तौ कर्णयो किमप्यालप्यैव, एकत सौवर्णी, परतश्च रघुवीर —इति द्वावपि शाद्वलमेनद् रिक्तमकुरुताम् ।

* * *

तत्र तु गौरसिंहो देवशर्मण पुरोहितस्योपवेश-भवने समुपविष्टो देवशर्म्मणैवमालपति स्म ।

शोभन क्षत्रिय । विवाहयोग्यतासूचकमिदम् । अग्रजौ = ज्येष्ठौ भ्रातरौ । प्रकटम् = प्रत्यक्षम् । तूर्णम् = शीघ्रम् ।

देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहिता = देवशर्म-शिष्यान्यतमकृता । दूराहूति = दूरात् आह्वानम् । शाद्वलम् = घासमय हरित स्थानम् । रिक्तम् = शून्यम् । अकुरुताम् = व्यधत्ताम् । ततोऽगच्छतामिति भाव ।

× × ×

उपवेश-भवने = वार्तादिकरणार्थके सदने । 'बैठक' इति हिन्दी ।

क्षत्रिय की कन्या हो, मैं भी कुलीन क्षत्रिय हूँ । तुम राजपूताने की हो, मैं भी वही का हू, दोनो ओर से प्रेम भी है, तो यदि तुम्हारे दोनो भाई और पूज्य पुरोहित अनुमति दे, तो प्रत्यक्ष ही और शीघ्र ही हम दोनो का विवाह हो जाए ।"

रघुवीर यह कह ही रहा था कि "सौवर्णी ! कहाँ हो ? तुम्हारे बडे भाई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं आओ, आओ," इस प्रकार की देवशर्मा के किसी छात्र की, दूर से पुकारने की सी आवाज सुनाई पडी । तत्क्षण एक दूसरे के कानो मे कुछ कह कर, एक ओर सौवर्णी चल दी, और दूसरी ओर रघुवीर चल दिया, इस प्रकार उन दोनो ने हरी घास के उस मैदान को खाली कर दिया ।

× × ×

वहाँ गौरसिंह पुरोहित देवशर्मा की बैठक मे बैठा हुआ उनके साथ इस प्रकार वार्तालाप कर रहा था—

गौरसिह —गुरो ! अद्यापि प्रधानभूता काचन घटना भवित्रीति श्रीमत आशिषमेव ग्रहीतुमायातोऽस्मि ।

देवशर्म्मा-[प्रणमत पृष्ठ सस्पृश्य] विजयी भूया !

गौरसिह -आर्य ! अपि मे भगिनी सौवर्णी प्रसीदति ?

देव०—आम्, प्रसन्नाऽस्ति । अथवा किमिव प्रसीदेत् ? राजवश-जातापि मातृपितृ-विहीना भ्रातृ-साहचर्य-सुखमप्यननुभवन्ती वृद्धस्य मे सेवया कथ कथमपि दिनानि गमयति । अधुना तु तस्या विवाह-चिन्ताऽपि भवद्भि रावहनीया । कन्यका हि श्वशुरालये क्लेशिता अपि वरम्, न चान्यत्र सुखिन्योऽपि ।

गौर०—आर्य ! आवयोरपि मनसि वार वारमुदेत्येप विषय ,

प्रणमत =प्रणति कुर्वत , शतुष्षष्ठ्या रूपम् ।

प्रसीदति = प्रसन्नाऽस्ति ।

राजवशजाताऽपि = नृपान्वयोद्भवाऽपि । दिनानि = अहानि । गमयति = क्षपयति । आवहनीया = धारणीया । क्लेशिता = क्लेश प्रापिता ।

गौरसिह—गुरु जी ! आज भी कोई महत्वपूण घटना घटित होने वाली ह, अत आप का आशीर्वाद लेने ही आया हूँ ।

देवशर्मा—[प्रणाम करते हुए गौरसिह की पीठ पर हाथ रख कर] विजयी बनो ।

गौरसिह—आर्य ! मेरी अनुजा सौवर्णी प्रसन्न तो है ?

देवशर्मा—हाँ प्रसन्न है । अथवा प्रसन्न क्या रहे ? राजवश मे उत्पन्न होकर भी माता-पिता से रहित तथा भाइयो के साथ रहने के सुख के अनुभव मे भी वञ्चित वह मुझ वृद्ध की शुश्रूषा मे ही जैसे-तैसे दिन बिता देती है । अब तो आप लोगो को उसके विवाह की भी चिन्ता करनी चाहिये । लडकियो के लिये ससुराल मे कष्टो मे रहना भी अच्छा और अन्यत्र सुखी रहना भी नही ।

गौरसिह—आर्य ! हम दोनो के मन भी यह विषय बार-बार उठता है,

किन्तु कोऽपि योग्यो वर एव न हृदयमारोहति । अपि स्मरति भवान् तातेन कस्मैचिद् दातुमेषा मनसि कृता ?

देव—स्मरामि, अम्बराधीशाना कुलजात, कश्चिद् वीरसिंहो नामाऽन्यतमो भूस्वाम्यासीत् । स चैकदा सपुत्रस्तव तातेनोत्सवविशेषे समाकारितो बभूव । तत्पुत्रेण रामसिंहेन सह सौवर्णी चिरमक्रीडत् । अन्यै समवयस्कैर्बालैश्च क्रीडास्वेव तयोर्विवाह-खेला व्यधायि । तदाकर्ण्य प्रीत खड्गसिंह, स्वमित्र सुचरित वीर प्रत्यज्ञासीत् यद्—"यद्युभौ चिर जीवेताम्, तर्हि कोशला रामाय दास्यते" इति ।

उदेति = उदय प्राप्नोति । आरोहति = समागच्छति । अनुरूपो वरो न दृश्यत इति भाव ।

कुले = अन्वये, जात = उत्पन्न । कुलपदस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसाकाङ्क्षत्वात् समास । भूस्वामी = "जमीदार" इति हिन्दी । समाकारित = समाहूत । अक्रीडत् = खेलामकार्षीत् । समवयस्कै = तुल्यावस्थाकै । विवाह-खेला = क्रीडात्मक परिणय । व्यधायि = कृता । प्रीत = प्रसन्न । प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञामकार्षीत् । कोशला = साम्प्रतिकी सौवर्णी । रामाय = रामसिंहाय । वचनभङ्ग्या तदावश्यक निवेदितम् ।

पर कोई योग्य वर ही मन मे नही बैठ रहा है । क्या आपको स्मरण है कि पिताजी ने इसे किसको देने का विचार किया था ?

देवशर्मा—हाँ स्मरण है । अबर (आमेर) के राजकुल मे उत्पन्न वीरसिह नाम के एक जागीरदार थे । उन्हे तुम्हारे पिताजी ने एक बार एक उत्सव मे पुत्रसहित निमन्त्रित किया । उनके पुत्र रामसिह के साथ सावर्णी प्राय खेला करती थी । अन्य समवयस्क बालको ने खेल ही खेल मे उन दोनो का विवाह रच दिया । यह सुनकर प्रसन्न खड्गसिह ने अपने सच्चरित्र मित्र वीरसिह को वचन दिया था कि 'यदि दोनो चिरञ्जीवी रहे, तो कोशला का विवाह रामसिह से कर दिया जाएगा ।'

गौर०—अपि ज्ञायते सन्ति ते कुशलिन ?

देव०—[नि श्वस्य] विचित्रा घटना भगवत । तस्य सेनानिवेश-शैथिल्यमेकदा समवलोक्य, अम्बराधीशेन जयसिहेन तस्याखिल-भूसम्पत्तिरपहृता। पत्नी चैतस्य विसूचिकापीडिता पुत्रमुखे दत्तदृष्टिरेव चरम निरश्वसत्। वीरश्च सपुत्र-पुरोहितो रामेश्वरयात्रार्थं गतो नाद्यापि ज्ञायते क्वास्तीति ।

एवमालपत्स्वेव तेषु सौवर्ण्यपि समायाता, प्रफुल्लनयना च गौर-स्य समीपे समुपविष्टा। गौरोऽपि तत्पृष्ठे दत्तहस्त कुशलादिक

सेनानिवेशे = सैन्यसङ्ग्रहे, शैथिल्यम् = त्रुटिम् । भू-सम्पत्ति = गृह-भूम्याद्यात्मकमैश्वर्यम् । विसूचिकया = तन्नामकेन रोगविशेषेण महामार्यपर-पर्यायेण, पीडिता = क्लेशिता । चरम निरश्वसत् = अन्तिम श्वासमगृह्णात्-चरममिति क्रियाविशेषणम् । मृतेति यावत् । रामेश्वरस्य = भगवद्रामभद्रसस्थापितस्य दक्षिणभारतस्थस्य लङ्काविजयलक्ष्मभूतस्य धामचतुष्टयान्यतमाधीशस्य, यात्रार्थं = दर्शनार्थगमनाय ।

प्रफुल्लनयना = विकसितनेत्रा ।

गौरसिह—क्या आप उन (वीरसिह) की कुशलताके सम्बन्ध मे जानते है ?

देवशर्मा—[नि श्वास लेकर] भगवान् की लीला विचित्र है। एक वार सैन्यशिविर मे असावधानी देखकर आमेर-नरेश जयसिह ने उनकी सारी जागीर छीन ली । उनकी पत्नी ने भी, विसूचिका (हैजा) के प्रकोप से, पुत्र का मुख देखते हुए ही अन्तिम साँस ले ली । वीरसिह भी पुत्र और पुरोहित के साथ रामेश्वर की यात्रा के लिये घर से चले गये, और तब से उनका पता नही है कि वे कहाँ है ?

वे इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि सौवर्णी भी आ गई, और प्रसन्न नयन से गौरसिह के पास बैठ गई। गौरसिह ने भी उनकी पीठ पर हाथ रखकर, कुशल मङ्गल पूछ कर, ज्यो ही कुछ कहना चाहा कि

पृष्ट्वा यावत् किमप्यालपति, तावदकस्माद् रघुवीरोऽपि तत्राऽऽगत्य, देवशर्म्माणं प्रणम्य, सादरं गौरमुवाच—

"आर्य ! क्षम्यतां किञ्चन अत्यावश्यकं निवेदयिष्यामि ।"

अथ तयोरेवमभूदालापः —

गौर०—कथय कथय, किं कथयसि ?

रघु०—इतः पश्चिमतो गव्यूत्यन्तराले कतिभिश्चन यवनसादिभिरावृता बहुभिर्भल्लहस्तैर्धानुष्कैः शाक्तीकैश्च सुरक्षिता शिबिका नीयते । निरचैषमवेदिषं च यत् कस्मैचित् प्रयोजनाय गोलखण्डपर्यन्तं दिल्लीश्वरः समायातोऽस्तीति तत्साक्षात्काराय तद्दुहिता रसनारी यातीति । तदत्राऽऽर्याः प्रमाणम् ।

पश्चिमतः = पश्चिमायां दिशि । गव्यूतेः = क्रोशद्वयस्य, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगमि"त्यमरः । अन्तराले = मध्ये । यवनसादिभिः = म्लेच्छाश्वारोहिभिः । भल्लहस्तैः =बाण-प्रहरणवद्भिः धानुष्कैः =धनुर्धारिभिः । शाक्तीकैः = शक्तिप्रहरणवद्भिः । शिबिका = नरवाह्या, पालकी । निरचैषम् = निर्णीतवान् । अवेदिषम् = अज्ञासिषम् । गोलखण्डपर्यन्तम् = "गोलकुण्डा" स्थानान्तम् । दिल्लीश्वरः = अवरङ्गजीवः । तद्दुहिता = तत्पुत्री, रसनारी= "रोशन आरा" इति ख्याता ।

एकाएक रघुवीर भी वहीं आकर, देवशर्मा को प्रणाम कर, गौरसिंह से सम्मानपूर्वक बोला—

"आर्य ! क्षमा कीजिएगा, एक अत्यन्त आवश्यक बात कहनी है ।" उसके बाद गौरसिंह और रघुवीर में इस प्रकार बातचीत हुई—

गौरसिंह—कहो, कहो, क्या कह रहे हो ?

रघुवीर—यहाँ से पश्चिम की ओर दो कोस की दूरी पर कुछ यवन अश्वारोहियों से घिरी हुई, और अनेक भाला धनुष और शक्ति चलाने वाले सैनिकों से रक्षित एक पालकी ले जाई जा रही है, मैंने निश्चित पता लगा लिया है कि किसी उद्देश्य से दिल्लीश्वर गोलकुण्डा तक आया है, और उसकी पुत्री रोशन-आरा उससे मिलने जा रही है । आगे आप जैसा उचित समझें ।

गौर०—आ ! किमुक्तम् ? दिल्ली-कलङ्कस्य कन्या ?

रघु०—एवम् ।

गौर०—योऽसावार्याणा दारानपहरति, सतीर्दूषयति, तस्यैव कन्याऽद्य महाराष्ट्र-सिहाना कन्दर-द्वारि मृगीव स्वयमापतिता ?

रघु०—एवमेव निश्चीयते ।

गौर०—आर्यपुरोहित ! सौवर्ण्यपहारक-यवन-युवक-हत्ययाऽपि न शाम्यति मे क्रोध , तदद्य पर-वधू-कन्या-हरण कथमिवारुन्तुदमिति 'अवरङ्गजीव' हतकमनुभावयिष्यामि । तदनुमन्यता त्वरितमार्यै ।

आर्याणाम् = हिन्दूनाम् । दूषयति = पासुलयति । कन्दरद्वारि = गुहा-मुखे । मृगीव = हरिणीवेत्युपमा, दैन्य द्योतितम् ।

सौवर्ण्या , अपहारकस्य = चोरयितु । यवनयुवकस्य, हत्यया = मारणेन । परेषाम् = अन्येपाम्, वधूनाम् = स्त्रीणाम्, कन्यकानाम् = अविवाहिताना बालिकानाम् । कथमिव = केन प्रकारेण । अरुन्तुदम् = मर्मपीडकम् । अनुभावयिष्यामि = अनुभवगोचरतामानयिष्यामि । अनुमन्यताम् = अनुज्ञायताम् । त्वरितम् = शीघ्रम् ।

गौरसिह—ऐ ! क्या कहा दिल्ली-कलङ्क (औरङ्गजेब) की कन्या ?

रघुवीर—जी हाँ ।

गौरसिह—जो आर्यो की स्त्रियो का अपहरण करता है, पतिव्रताओ को दूपित करता है, उसी की कन्या आज मृगी की भाँति महाराष्ट्र के सिहो की गुफा के द्वार पर स्वय ही आ गयी ह ।

रघुवीर—मालूम तो ऐसा ही होता है ।

गौरसिह—पूज्य पुरोहित जी ! सौवर्णी को चुरा ले जाने वाले यवन-युवक को मार कर भी मेरा क्रोध शान्त नही हुआ है, इसलिये मैं आज नीच औरङ्गजेव को यह अनुभव करा दूगा कि दूसरो की बहू-बेटियो का हरण कितना कष्टप्रद होता है । अत आप शीघ्र ही अनुमति दे ।

इति प्रणम्य सह रघुवीरेण सपदि निवृत्त तोरणदुर्गात् काश्चिदतिचतुरान् सैन्धवारोहान् सह नयन्, स्वाधिष्ठितचरकुटीरत कटिपटाच्छन्न-च्छुरिकान् सान्तर्भल्ल-कृत्रिम-दण्डहस्तान् शत मस्करिवेषान् वीरान् सह नीत्वा, येन पथा सा शिबिका समानीयते, तस्मिन्नेवैकत्र पर्वत-प्रान्ते गण्ड-शैलावृत-स्थले वर्षा-वारि-पूर्णमेकमल्प कुण्डमालोक्य विषाक्त विधाय, तत्प्रान्त-प्ररूढ-कुसुम-स्तवकेष्वपि घ्राणमात्रेण मूर्च्छावह गरलमायोज्य, तत्परिसरवनभाग एव सर्वे समाच्छन्ना समतिष्ठन्त।

सपदि=तत्कालम् । सैन्धवारोहान्=सादिन । स्वाधिष्ठितचरकुटीरत =स्वाध्युषितकुटीरात्। 'भूतपूर्वे चरट्'। कटिपटेषु=मध्यभागीयवसनेषु, आच्छन्ना =गुप्ततया स्थापिता, छुरिका =असिधेनव यैस्तान्। सान्तर्भल्ला =सगुप्तशस्त्रा, कृत्रिमा =निर्मिता, दण्डा ="गुप्ती" इति ख्याता, हस्ते येषा तान् । शतम्=शतसङ्ख्याकान्। मस्करिवेषान्=परिव्राजकवेषधारिण । "भिक्षु परिव्राट् कर्मन्दी पराशर्यपि मस्करी" इत्यमर । पर्वतप्रान्ते=गिर्येकदेशे । गण्डशैलै, आवृते=सञ्छन्ने, स्थले=भुवि । वर्षा-वारि-पूर्णम्=प्रावृड्-जल-भरितम् । अल्पम्=क्षुद्रम्। कुण्डम्=पल्लवम्। विषाक्तम्=हालाहलादिमिश्रम्। तत्प्रान्त-कुसुम-स्तवकेषु=तद्देश-सञ्जात-पुष्पगुच्छेषु, घ्राणमात्रेण=केवलेन गन्धग्रहणेन, मूर्च्छावहम्=विचेतनतापादकम्। गरलम्=विषम्।

यह कह कर, प्रणाम कर के गौरसिह रघुवीरसिह के साथ, झट-पट लौटकर तोरण दुर्ग से कुछ अत्यन्त कुशल अश्वारोहियो को साथ लेकर, अपनी पुरानी कुटी आया। वहाँ से सन्यासी का वेश धारण किए हुए सौ ऐसे वीरो को, जिन्होने अपने कटि-वस्त्र मे छुरे छिपा रखे थे, और जिनके हाथ मे गुप्तियाँ थी, (अर्थात् ऐसी छडियाँ थी जिनके अन्दर भाले गुप्त थे) उन्हे साथ लेकर जिस मार्ग से वह पालकी आ रही थी, उसी पर एक पहाडी पर बडी-बडी शिलाओ से घिरे स्थान पर, वर्षा के जल से भरा एक छोटा-सा कुण्ड देखकर उसमे विष घोल कर, उसे विषाक्त बना कर, उसके किनारे उगे हुए फूलो के गुच्छो पर भी सूँघने मात्र से मूर्छित कर देने वाला विष छिडक कर, उसके समीपस्थ वन प्रदेश मे ही सभी के साथ छिपकर बैठ गया।

तावत् समायातास्ते सगणा शिविकावाहा । "अहो ! रम्यमिद स्थानम् , क्षण विरम्यताम् , उदकादिक पीयताम् , परतो याम्यते" इति वदन्त , "उपविशोपविश, तिष्ठ तिष्ठ, रुन्धि रुन्धि", इति सर्वे तत्रैव विरेमु । यावत् ते किमपि वुभुक्षव इव, इतस्तत समवलोकयन्ति, तावदकस्मादेको वृद्ध करधृत-गात्रावलम्ब-दण्ड पिटकमेक वहन् दृष्ट । "अरे ! रे ! दशमिहतक ! किमास्ते पेटायाम् ? कुतो यासि ?" इति पृष्टोऽसौ ईषत त्रस्त इव, "न न न न किमपि, भ भ भगवन् !" इति कथयन् त्वरित चलित । ते तु सर्वे "गृह्णीध्व गृह्णीध्वम् हरध्व हरध्वम्, लुण्ठत लुण्ठत, हत हते"ति त वराकमह-

आयोज्य = सम्मिश्र्य । तत्परिसरवनभागे = तदन्तिकविपिनैकदेशे ।
समाच्छन्ना = निलीना । समतिष्ठन्त = स्थिता ।

सगणा = ससैन्या । रम्यम् = हृद्यम् । क्षणम् = मुहूर्त्तम् । परत = पश्चात्, यास्यते = गमिष्यते । रुन्धि रुन्धि = स्थगितो भव, स्थगितो भव । सम्भ्रमे द्विरुक्ति । विरेमु = यात्रा स्थगितामकार्षु । वुभुक्षव इव = भोक्तुमिच्छव इव । अकस्मात् = सहसा । करधृतगात्रावलम्बनदण्ड = हस्तगृहीतशरीरालम्बदण्ड । पिटकम् = मञ्जूषाम् । वहन् = नयन् । दशमिहतक ! = दशमीमवस्था गत ! वृद्ध नीच ! नवतित शतवर्षपर्यन्तमायुष दशमीति सज्ञा । ईषत् त्रस्त इव = किञ्चिद् भयाक्रान्त इव । हरध्वम् = चोरयध्वम् ।

तब तक पालकी ढोने वाले भी रक्षकों के साथ वही आ गये । 'अहा ! यह स्थान सुहावना है, क्षण भर रुक जाओ, जल पान कर लो, फिर आगे चला जाएगा, 'बैठो-बैठो, ठहरो-ठहरो', यह कहते हुए 'रुको-रुको' कहते हुए वे सभी वही रुक गये, और कुछ खाने की इच्छा से इधर-उधर देखने लगे, तब तक उन्हे हाथ मे सहारे की छडी लिये हुए, एक पेटी ले जाता हुआ एक वृद्ध पुरुष दिखाई दिया । 'अरे ओ बुड्ढे ! इस पेटी मे क्या है ? (जा रहा है' ? इस प्रकार पूछा जाने पर, वह वृद्ध कुछ डरा हुआ सा, 'न न नहीं, कुछ भी नहीं, भ-भ-भगवन्' कहते हुए तेजी से चल दिया । उन सभी (यवनो) ने, 'पकडो-पकडो,

म्पूर्विकया लुलुण्ठु । स च कृत्रिम-पथिक सकपट-क्रन्दन-गलज्जलैर्मुख क्षालयन् तिरोबभूव ।

एते च तत्पेटकाद् मधुर-मोदक-वृन्दमाप्य, परस्पर विभज्य, बुभुजिरे । तत्र प्रत्येक मूर्छक-द्रव्यमयमास्वाद्य सर्वेऽप्यशयिषत । तन्मण्डलाध्यक्षस्य तु समीपे शूलाकृत मास काच-पात्र-परिपूरित मद्य चाऽऽसीदिति स तदास्वादनमात्रासादिततृप्ति केवल जागर्ति स्म ।

हत = ताडयतेत्ययकमव्ययम् । अहम्पूर्विकया = अह पूवमह पूवमिति मनीषापूवम् । लुलुण्ठु = बलाच्चोरयामासु । सकपटम् = सव्याजम्, यत् क्रन्दनम् = रोदनम्, तस्मिन् गलद्भि = स्रसद्भि, जलै = अश्रुभि । तिरोबभूव = अन्तर्हित ।

मधुर-मोदक-वृन्दम् = सरसमिष्टसमूहम् । आप्य = लब्ध्वा, आङ्प्रश्लेषोऽत्र ध्येय । मूर्छकद्रव्यमयम् = मोहकविषमिश्रम् । आस्वाद्य = रसयित्वा । अशयिषत = निद्रामलमन्त । तन्मण्डलाध्यक्षस्य = सेनापते, शूलाकृतम् = शूले पक्वम् । काचपत्रे = वर्तुले, 'बोतल" इति हिन्दी । परिपूरितम् = भरितम् । मद्यम् = सुरा । तदास्वादनमात्रेण = ततूखादनपानमात्रेण, आसादिता = लब्धा, तृप्ति = परितोष, येन स । केवलम् = एकाकि, क्रियाविशेषणम् ।

छीनो छीनो, लूटो-लूटो, मारो-मारो', कह कर होड लगा कर उस वेचारे को लूट लिया, और वह बनावटी पथिक बनावटी रुदन के कारण बहते हुए आँसुओ से मुह घोता हुआ तिरोहित हो गया ।

इन सब लोगो ने, उसकी पेटी मे मीठे-मीठे लड्डू पाकर, आपस मे बॉट कर खाया । उन सारे लड्डुओ मे मूछित कर देने वाला विष था, जिसे खा जाने के कारण सबके सब सो गये । उनके नायक के पास कबाव (लोहे की सलाखो मे-लगा कर भूना गया मास) और बोतल मे भरी शराब रखी थी । अत केवल वही कबाब और शराब के आस्वादन मात्र से तृप्त होकर, (लड्डू न खाने के-कारण विष से अप्रभावित रह कर) जाग रहा था ।

अथाऽकस्मात् सतडतडाशब्द वर्षन् कश्चन मेघखण्ड उपरिष्टात् समायात । न कोऽप्युदस्थादित्यवलोक्य, अत्यन्त समशयिष्टाऽध्यक्ष । स्वय स्वास्तरणमेकस्याऽऽसन्नस्य च्छायातरोर्मूल आकृष्य, वाहकानाह्वमाना शिबिकान्तस्था रसनारीम्—"मन्ये न कोऽपि जागर्ति, सर्वेऽत्यन्तगाढनिद्रया सुप्ता एते दास्या पुत्रा" इति बोधयित्वा, अखिलान् पादाघातेन कराकर्षणेन चाऽऽलोक्य सत्य मूच्छितानवगत्य, शीतलयितु सुगन्धि-कुसुमानि जिघ्रापयिषु, पार्श्वपरिवर्ति-क्षुपाग्रात् गुच्छकमेकमाचिनोत्। तत्समीपे समागच्छश्च नव-कुसुम-स्तवक-रूप-दर्शन-

सतडतडाशब्दम् = सविद्युत्स्तनितध्वनि । समशयिष्ट = स्वापमकृत । स्वास्तरणम् = स्वविष्टरम् । च्छायातरो = च्छायादायिवृक्षस्य । वाहकान् = शिविकावोढृन् । अत्यन्तगाढनिद्रया = प्रवलस्वापेन । दास्या पुत्रा = नीचा । "षष्ठ्या आक्रोश" इति षष्ठ्या अलुक् । पादाघातेन = चरणताडनेन, कराकर्षणेन = हस्ताकृष्ट्या । शीतलयितुम् = शिशिरयितुम् । निद्रा दूरयितुमिति यावत्। सुगन्धिकुसुमानि = आमोदिपुष्पाणि । जिघ्रापयिषु = घ्रापयितुमिच्छु । पार्श्वपरिवर्त्तिन = समीपस्थस्य, क्षुपस्य = ह्रस्वशाखिन, अग्रात् = प्रान्तात् । गुच्छकम् = स्तवकम् । आचिनोत् = अत्रोटयत् । नव-

अकस्मात् तड-तड ध्वनि के साथ पानी बरसता हुआ एक मेघखण्ड आकाश पर आ गया । किसी को भी उठते न देखकर नायक को सन्देह हुआ, और उसने स्वय ही अपने बिस्तर को समीप के एक छायादार वृक्षके नीचे खीच कर, पालकी के अन्दर से कहारो को बुला रही रोशन आरा से, 'मालूम होता है कोई नही जाग रहा है, हरामजादे, सब के सब गाढी नीद मे सो रहे है', यह कहकर सभो को पैर की ठोकर मार कर तथा हाथ खीच कर, वस्तुत मूर्छित जानकर, शीतल करने के लिये सुगन्धित फूलो को सुँघाने की इच्छा से पास के पौधे से फूलो का एक गुच्छा तोड लिया । उनके समीप आते हुए, नवीन कुसुमो के गुच्छे

म्पूर्विकया लुलुण्ठु । स च कृत्रिम-पथिक सकपट-क्रन्दन-गलज्जलैर्मुख क्षालयन् तिरोबभूव ।

एते च तत्पेटकाद् मधुर-मोदक-वृन्दमाप्य, परस्पर विभज्य, बुभुजिरे । तत्र प्रत्येक मूर्छक-द्रव्यमयमास्वाद्य सर्वेऽप्यशयिषत । तन्मण्डलाध्यक्षस्य तु समीपे शूलाकृत मास काच-पात्र-परिपूरित मद्य चाऽऽसीदिति स तदास्वादनमात्रासादिततृप्ति केवल जागर्ति स्म ।

हत = ताडयतेत्यर्थकमव्ययम् । अहम्पूर्विकया = अह पूर्वमह पूर्वमिति मनीषापूर्वम् । लुलुण्ठु = बलाच्चोरयामासु । सकपटम् = सव्याजम्, यत् क्रन्दनम् = रोदनम्, तस्मिन् गलद्भि = स्रवद्भि, जलै = अश्रुभि । तिरोबभूव = अन्तर्हित ।

मधुर-मोदक-वृन्दम् = सरसमिष्टसमूहम् । आप्य = लब्ध्वा, आङ्प्रश्लेषोऽत्र ध्येय । मूर्छकद्रव्यमयम् = मोहकविषमिश्रम् । आस्वाद्य = रसयित्वा । अशयिषत = निद्रामलमन्त । तन्मण्डलाध्यक्षस्य = सेनापते, शूलाकृतम् = शूले पक्वम् । काचपत्रे = वर्तुले, "बोतल" इति हिन्दी । परिपूरितम् = भरितम् । मद्यम् = सुरा । तदास्वादनमात्रेण = तत्खादनपानमात्रेण, आसादिता = लब्धा, तृप्ति = परितोष, येन स । केवलम् = एकाकि, क्रियाविशेषणम् ।

छीनो-छीनो, लूटो-लूटो, मारो-मारो', कह कर होड लगा कर उस बेचारे को लूट लिया, और वह बनावटी पथिक बनावटी रुदन के कारण बहते हुए आँसुओ से मुंह धोता हुआ तिरोहित हो गया ।

इन सब लोगो ने, उसकी पेटी मे मीठे-मीठे लड्डू पाकर, आपस मे बाँट कर खाया । उन सारे लड्डुओ मे मूर्छित कर देने वाला विष था, जिसे खा जाने के कारण सबके सब सो गये । उनके नायक के पास कबाब (लोहे की सलाखो मे-लगा कर भूना गया मास) और बोतल मे भरी शराब रखी थी । अत केवल वही कबाब और शराब के आस्वादन मात्र से तृप्त होकर, (लड्डू न खाने के-कारण विष से अप्रभावित रह कर) जाग रहा था ।

अथाऽकस्मात् सतडतडाशब्द वर्षन् कश्चन मेघखण्ड उपरिष्टात् समायात । न कोऽप्युदस्थादित्यवलोक्य, अत्यन्त समशयिष्टाऽध्यक्ष । स्वय स्वास्तरणमेकस्याऽऽसन्नस्य च्छायातरोर्मूल आकृष्य, वाहकानाह्वमाना शिबिकान्तस्था रसनारीम्—"मन्ये न कोऽपि जार्गात, सर्वेऽत्यन्तगाढनिद्रया सुप्ता एते दास्या पुत्रा" इति बोधयित्वा, अखिलान् पादाघातेन कराकर्षणेन चाऽऽलोक्य सत्य मूर्च्छितानवगत्य, शीतलयितु सुगन्धि-कुसुमानि जिघ्रापयिषु, पार्श्वपरिवर्ति-क्षुपाग्रात् गुच्छकमेकमाचिनोत्। तत्समीपे समागच्छश्च नव-कुसुम-स्तवक-रूप-दर्शन-

---

सतडतडाशब्दम् = सविद्युत्स्तनितध्वनि । समशयिष्ट = स्वापमकृत । स्वास्तरणम् = स्वविष्टरम् । च्छायातरो = च्छायादायिवृक्षस्य । वाहकान् = शिबिकावोढॄन् । अत्यन्तगाढनिद्रया = प्रबलस्वापेन । दास्या पुत्रा = नीचा । "षष्ठ्या आक्रोश" इति षष्ठ्या अलुक् । पादाघातेन = चरणताडनेन, कराकर्षणेन = हस्ताकृष्ट्या । शीतलयितुम् = शिशिरयितुम् । निद्रा दूरयितुमिति यावत् । सुगन्धिकुसुमानि = आमोदिपुष्पाणि । जिघ्रापयिषु = घ्रापयितुमिच्छु । पार्श्वपरिवर्त्तिन = समीपस्थस्य, क्षुपस्य = ह्रस्वशाखिन, अग्रात् = प्रान्तात् । गुच्छकम् = स्तबकम् । आचिनोत् = अत्रोटयत् । नव-

---

अकस्मात् तड-तड ध्वनि के साथ पानी बरसता हुआ एक मेघखण्ड आकाश पर आ गया । किसी को भी उठते न देखकर नायक को सन्देह हुआ, और उसने स्वय ही अपने बिस्तर को समीप के एक छायादार वृक्षके नीचे खीच कर, पालकी के अन्दर से कहारो को बुला रही रोशन आरा से, 'मालूम होता है कोई नही जाग रहा है, हरामज़ादे, सब के सब गाढी नीद मे सो रहे हैं', यह कहकर सभी को पैर की ठोकर मार कर तथा हाथ खीच कर, वस्तुत मूर्छित जानकर, शीतल करने के लिये सुगन्धित फूलो को सुँघाने की इच्छा से पास के पौघे से फूलो का एक गुच्छा तोड लिया। उनके समीप आते हुए, नवीन कुसुमो के गुच्छे

मोहितो गाढ स्वयमेवाऽघ्रात्। तत्क्षणाच्च भूमौ पतितो मुमूर्च्छ। वृष्टिरप्यकस्मात् प्रशममाप।

तत्क्षणादेव सन्यासि–कदम्ब–सवलित, कतिपयै सादिभिरनुगतो गौरसिह समाजगाम। एते कपट-सन्यासिनस्तु यवन-स्पर्शे घृणामावहन्तोऽपि क्षात्र–धर्ममाकलय्य, झटिति तत्कञ्चुकैर्दिल्लीश्वर–नामाङ्कित–रजत–फलकालङ्कृतोष्णीषैस्तादृश – पित्तल–पट्टिकाङ्कित-कटिबन्धैश्चाऽऽत्मानमलञ्चक्रु। एव केचन तरुशाखालम्बितान् वाजिन उन्मुच्य, वल्गादि–योजनै सज्जीकृत्य, वलित–वारबाणा, सुप्त–

कुसुमस्तबकस्य, रूपदर्शनेन = शोभानिरीक्षणेन, मोहित = वशीकृतान्तरङ्ग। अघ्रात् = घ्राणविषयमकृत। मुमूर्च्छ = मूर्च्छामधिगतवान्। प्रशमम् = शान्तिम्। आप = लेभे।

सन्यासि-कदम्ब-सवलित = भस्करि-व्यूह-समेत। घृणाम् = जुगुप्साम्। झटिति = त्वरया। तत्कञ्चुकै = तेषा वसनै। दिल्लीश्वरनाम्ना, अङ्कितै = चिह्नितै, रजतफलकै = रौप्यपट्टिकाभि, अलङ्कृतै = भूषितै, उष्णीषै = शिरोवेष्टनै। तादृशीभि, पित्तलपट्टिकाभि = रीतिफलकै, अङ्कितै, कटिबन्धै = परिकरबन्धै। अलञ्चक्रु = भूषयामासु। तरुशाखालम्बितान् = वृक्ष-स्कन्ध-निबद्धान्। वल्गादीनाम् = कविकादीनाम्, योजनै = सश्लेषणै। वलिता = धारिता, वारबाणा = कवचानि यैस्ते। सुप्तसादि-

---

के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसने उसे स्वय ही जोर से सूँघा, और तत्काल ही पृथ्वी पर गिर पडा तथा मूच्छित हो गया। वर्षा भी एकाएक शान्त हो गई।

उसी समय गौरसिह सन्यासियो के समूह के साथ आ गया। उसके पीछे-पीछे कुछ अश्वारोही थे। इन बनावटी सन्यासियो ने यवनो के स्पर्श से घृणा करते हुए भी, क्षात्र-धर्म समझ कर, शीघ्रतापूवक, उन मूच्छित यवनो के वस्त्रो (कुर्तो), दिल्लीश्वर के नाम से अङ्कित रजत-पट्टो से अलङ्कृत पगडी तथा वैसी ही पीतल की पट्टियो से युक्त कमरबन्दो से अपने को अलङ्कृत कर लिया। इस प्रकार सन्यासी का वेष धारण कर आये हुए कुछ वीर वृक्षो की शाखा मे बँधे हुए घोडो को खोल कर, लगाम आदि लगाकर, उन्हे तैयार कर, कवच धारण

सादि-शस्त्रैरेव धानुष्का, काण्डीरा, शाक्तीका, याष्टीका, पारश्वधिका, प्रासिका, नैस्त्रिंशिका, कौन्तिका, फलकपाणयश्च भूत्वा तानारुरुहु। अपरे तथैव परिवर्तितवेषा जङ्घाला, इतरे च वाहकताम् अङ्गीकृत्य पालङ्कीमुत्थाप्य, सर्वे सह तोरणदुर्गाभिमुखमेव "चल चले' ति चेलु। एव रसनारीमेना तोरण-दुर्गं सस्थाप्य, दुर्गाध्यक्ष च यथोचिताऽऽदरे सत्कतु रक्षितु च प्रार्थ्य, जवन निजमाजानेयमारुह्य, तन्निगालमास्फोटय, सह रघुवीरेण क्वचिदास्कन्दितै, क्वचिद् धौरितकै,

---

शस्त्रै निद्रालु-घोटकवाहासिप्रभृतिभि। धानुष्का =धनुर्धारिण। काण्डीरा = बाणवन्त। शाक्तीका =शक्तिप्रहरणा। याष्टीका =यष्टिप्रहरणा। पारश्वधिका =परश्वधप्रहरणा। प्रासिका =प्रासहरणा। नैस्त्रिंशिका =खड्गप्रहरणा। कौन्तिका =भल्लधारिण। फलकपाणिन =चर्महस्ता। तान् =अश्वान्। परिवर्त्तितवेषा =अङ्गीकृतराजभटनेपथ्या। जङ्घाला =वेगेन धावका। वाहकताम् =शिविकावोढृताम्। पालङ्कीम् =शिविकाम्। "पालकी" इति हिन्दी। जवनम्=वेगवन्तम्। आजानेयम्=शोभनमश्वम्। तन्निगालम् =तद्गलोद्देशम्। आस्कन्दितै =उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमनै। "पाईया"

कर, सोए हुए अश्वारोहियो के शस्त्रो को लेकर, उन्ही (शस्त्रो) से, धनुर्धर, बाणधारी, शक्तिधारी, यष्टिधारी, परशुधारी, प्रासधारी, खड्गधारी और शूलधारी बनकर, हाथ मे ढाल आदि लेकर उन (घोडो) पर सवार हो गए। कुछ अन्य वीर, उसी प्रकार वेष बदल कर, पैदल चलने वाले और पालकी उठाने वाले कहार बन कर, पालकी उठाकर, सभी के साथ तोरण दुर्ग की ओर ही 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिये। इस प्रकार रोशन-आरा को तोरण दुर्ग मे पहुँचा कर दुर्गाध्यक्ष से उसका यथोचित आदर-सत्कार करने तथा उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करने की प्रार्थना कर गौरसिंह अपने तीव्र वेग वाले घोडे पर सवार होकर, उसकी गर्दन थपथपा कर, कही आस्कन्दित (सरपट), कही धौरितक

क्वचिद् वल्गितै, प्लुतै, निम्लोचति मार्तण्डमण्डले सपदि सिंहदुर्ग-मायातो गौरसिंह ।

अस्मिन् समये पश्चिमाशा-कुण्डलमिव मार्तण्ड-मण्डलमस्ताचल-चूडा-शोणोष्णीषता भेजे। सिंहदुर्ग-प्राचीराभ्यन्तर एव नि शब्द वीरा युद्धसज्जा विदधति स्म। भूषणकविर्वीररस-कविता-पाठैरखिलाना-मुत्साह द्विगुणयति स्म। वीरा अन्तर्लौह वर्म्म परिधाय, तदुपरि माङ्ग-लिक-वर्णैर्वारबाणैरङ्गरक्षिकाभिश्चाऽऽत्मानमाभूष्य, सारसन बध्द्वा, आयस-शीर्षच्छादकस्योपरि स्वदेशीय चक्रोष्णीष धारयन्ति स्म।

इति हिन्दी। धौरितकै =वेगात् गमनै। वल्गितै =उच्छालनविशेषै। "आस्क-न्दित धौरितक रेचित वल्गित प्लुतम्। गतयोऽमू पञ्चे" ति कोशेऽश्वगति पञ्च-प्रकारा प्रदर्शिता। निम्लोचति = अस्त गच्छति। मार्त्तण्डमण्डले = भास्कर-बिम्बे।

पश्चिमाशाया =वारुण्या दिश, कुण्डलमिवेत्युपमा। अस्ताचलस्य = चरमगिरे, चूडाया =मस्तकस्य, शोणोष्णीषताम् = रक्तशिरोवेष्टनताम्। भेजे = स्वीचकार। सिंहदुर्गस्य, प्राचीरस्य = प्रान्ततोवृते। अभ्यन्तरे = अन्तराले। युद्धसज्जाम् = सङ्ग्रामसन्नाहम्। अन्त =निम्नाशे। लौहम् = लोहनिर्मितम्। माङ्गलिकवर्णै =पीतादिभि। वारबाणै =कवचै। अङ्ग-रक्षिकाभि =शरीररक्षयित्रीभि। आभूष्य = भूषयित्वा। सारसनम् = कटि-बन्धनम्। आयसस्य = लोहनिर्मितस्य, शीर्षच्छादकस्य = शिरस्त्राणस्य।

(दुल्की) कहीं वल्गित और कहीं प्लुतगति से घोड़े को बढ़ाता हुआ, सूर्य-मण्डलके अस्त होते-होते, शीघ्र ही, रघुवीर के साथ, सिंहदुर्ग पहुँच गया।

इस समय पश्चिम दिशाके कर्णभूषण सा सूर्यमण्डल अस्ताचल के सिर की लालपगड़ी बन गया। सिंहदुर्ग की चहारदीवारी के भीतर ही वीर चुपचाप युद्ध की तैयारी कर रहे थे। भूषण कवि वीररस की कविताएँ सुनाकर सभी का उत्साह द्विगुणित कर रहे थे। वीर नीचे लौह-कवच पहन कर, उसके ऊपर (पीत आदि) माङ्गलिक वर्ण के कवचों तथा अँगरखो से अलङ्कृत होकर कमरबन्द बाँध कर, लोहे की टोपी के ऊपर, अपने देश की गोल-पगड़ी बाँध लिए थे।

अथोच्चाया एकस्या वेदिकाया उपरि समारूढो महाराष्ट्रराज शिववीर समवालोकयत् यत् पूर्वस्या रिङ्गत्-तरङ्ग-भङ्गाऽऽहत-तीरा शीतल-समीरा घलद्घलद्-ध्वनि-धीरा गम्भीरा नीरानाम्नी नदी प्रवहति । दक्षिणा प्रतीच्या च गिरिराजीना परतो गिरि-राजय, स्वकीयैरभ्रलिहैरुच्चोच्च सानुभिरधित्यकास्थैररण्यानी-सस्थानैर्मेघमाला-मण्डल-भ्रमसुत्पादयन्ति । उदीच्या च सुदूर-विस्तृत हरितशाद्वलम्, ततश्च पुण्यनगरमवलोक्यते । दुर्गमिद शैल-शिखरस्थमिति दूर-वीक्षण-नलिकातो वीक्षणेन विलिख्य स्थापित चित्रमिव साकल्येन नगर-

स्वदेशीयम्=महाराष्ट्रनिर्मितम् । चक्रोष्णीषम्=गोल शिरोवेष्टनम् । रिङ्गत्-तरङ्गभङ्गै =समुच्छलल्लहरिच्छेदै, आहतम्=ताडितम्, तीरम् = तटप्रदेशो यस्या सा । शीतलसमीरा = शिशिरवायुसमवेता । घलद्घलद्ध्वनिना = घलदित्यनुश्रूयमाणशब्देन, धीरा = मन्दगमना । गम्भीरा = अगाधजला । दक्षिणा = दक्षिणस्याम् । आजन्तमव्ययम् । प्रतीच्याम् = पश्चिमायाम् । गिरिराजीनाम्=पर्वतश्रेणीनाम् । स्वकीयै =निजै, अभ्रलिहै =मेघस्पर्शिभि । सानुभि =शृङ्गै । अधित्यकास्थै = पर्वतोर्ध्ववर्त्तिभि । अरण्यानी-सस्थानै = महारण्यनिवेशै । मेघमालामण्डलभ्रमम् = नीरदराजिविम्ब-भ्रान्तिम् । उदीच्याम्=उत्तरस्याम् । सुदूरविस्तृतम्=अतिविस्तीर्णम् । हरित-शाद्वलम्=हरिद्वर्णघासमयम् । हरितविशेषण घनहारित्यद्योतनाय । दूरवीक्षण-नलिकात = "दूरबीन" इति प्रसिद्धयन्त्रेण । वीक्षणेन = अवलोकनेन ।

तदनन्तर महाराष्ट्र नरेश शिवाजी ने एक ऊँचे चबतरे पर चढकर देखा कि पूर्व की ओर, उछलती हुई लहरो से तट पर आघात करने वाली, शीतल पवन युक्त, गम्भीर, नीरा नाम की नदी, घल्-घल् शब्दपूर्वक धीरे-धीरे वह रही है । दक्षिण तथा पश्चिम दिशाओ मे पहाडियो पर पहाडियाँ अपनी ऊँची गगनचुम्बी चोटियो तथा अधित्यकाओ मे स्थित-बडे-बडे जगलो के जाल से मेघमाला के समूह का भ्रम उत्पन्न कर रही हैं, तथा उत्तर दिशा मे दूर तक फैला हुआ हरी घास का मैदान और उसके बाद पूना नगर दिखाई पड रहा है । यह दुर्ग पर्वत की चोटी पर बना है । अत यहाँ से सारा नगर दूरबीन की नली से बनाये गये

मिदमालोक्यते स्म। शिववीर, तेन सह द्वित्राणि मित्राणि च, सतर्क सविविध-भाव-भङ्ग नगरमेनदालोकयन्ति। रजन्यामेतस्मिन् नगरे केव दुर्घटा घटना भवित्रीति च पर्य्यालोचयन्ति स्म।

अस्मिन् मण्डले बहुदर्शी शिव-पितृ-करपल्लव-च्छायाया यापित-बाल्य-वयस्को युद्ध-विद्या-निष्णात श्रीमुरेश्वराख्य एको वीरवर आसीत्। अपर आबाजीस्वर्णदेवाभिधो ब्राह्मण, येन स्वबाहुबलेन सर्वोऽपि कल्याणप्रदेश कल्याणदुर्ग च शिवस्य वशमानीतमासीत्। इतरश्च अन्नजीवदत्त, येन स्ववीर्येण वर्षचतुष्टयात् प्राक् पानालय-

---

विलिख्य=चित्रीकृत्य। स्थापितम् = रक्षितम्। साकल्येन=सम्भूय। सतर्कम् = सविचारम्। दुर्घटा = अभूतपूर्वा। घटना = दशा। पर्य्यालोचयन्ति स्म = व्यचारयन्।

बहुदर्शी = दीर्घदर्शी। शिव-पितृ-कर-पल्लव-च्छायायाम् = शिववीर-जनक-हस्त-किसलय-च्छायायाम्। तदाश्रये इति भाव। यापितम् = क्षपितम्, बाल्यम् = आद्यम्, वय = अवस्था येन स। युद्ध-विद्यायाम् = सङ्ग्रामकलायाम्, निष्णात = निपुण, श्रीमुरेश्वराख्य = "मोरेश्वर, मोरोपन्त" इति प्रसिद्ध। अन्नजीवदत्त = "अण्णाजी दत्तोबा" इति ख्यात। स्ववीर्येण = स्वबलेन।

चित्र की भाँति दिखाई पडता था। शिवाजी तथा उनके साथ दो-तीन मित्र भी ध्यान से विविध, भावभङ्गिमा-पूर्वक इस नगर को देख रहे थे और यह सोच रहे थे कि रात्रि मे इस नगर मे कौन सी दुर्घटना घटित होने वाली है।

इस मण्डली मे एक तो मुरेश्वर (मोरो पन्त) नाम का वीर था, जो दूर-दर्शी और युद्धविद्या मे निपुण था, तथा जिसने अपना लडकपन शिवाजी के पिताजी के करपल्लवो की छाया मे विताया था, दूसरा आबाजी स्वर्णदेव नामक ब्राह्मण, जिसने अपने बाहुबल से कल्याण दुर्ग सहित सम्पूर्ण कल्याण प्रदेश को शिवाजी के अधीन कर दिया था, और तीसरा वीर था अण्णाजी दत्तोवा, जिसने

दुर्ग यवन-दुर्ग च शिवस्य हस्तगत कृतम् । तदेते त्रयोऽपि सम्मुख-मायाता एवमालापमकार्षु —

मुरेश्वर –आर्य ! सत्यमेव स्थिरीकृतम्, यदद्य मा वा स्वर्णदेव वा न सह नेष्यति श्रीमान् ?

शिवराज –वीरवर ! क्षम्यताम्, नाह युष्माक धैर्य गाम्भीर्य चातुर्य वीर्य वा विस्मरामि। परमलमनुरोधैरद्य। केवलमाशीर्भिरेव सवर्द्धयतामेष जन । निश्चयेनाऽह युष्मदाशी सर्वाद्धतो विजेष्ये। दैवाद् वीरगति गतश्चेद्, भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र-राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्म ,पुनरपि च कम्प एव वक्ष सु भारत-प्रत्यर्थि-पत्नीनाम् । युष्मासु मया सह भारतभुव विरहयत्सु

धैर्यम् = धीरताम् । गाम्भीर्यम्=गूढप्रकृतिताम् । चातुर्यम् = कौशलम् । वीर्यम् = बलम् । विस्मरामि = विस्मृतिपथमानयामि । सवर्द्धयताम् = प्रोत्साह्यताम् । युष्माकम् = भवताम् । आशीर्भि = सदाशसनै , सर्वाद्धत = वृद्धि गमित । वीराणा गतिम् = सूर्यमण्डल भित्त्वोर्ध्वंगतिम् । प्राप्तशरण = लब्धरक्षण । "शरण गृहरक्षित्रो" इत्यमर । भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम्=हैन्दव-

---

अपने बल से चार वर्ष पहले पानालय (पन्हाला) दुर्ग तथा यवन दुर्ग शिवाजी के अधिकार मे कर दिये थे । ये तीनो वीर आगे आकर इस प्रकार बातचीत करने लगे—

मुरेश्वर—आर्य ! क्या सचमुच ही आपने आज मुझे या स्वर्णदेव को साथ न ले जाने का निर्णय कर लिया है ?

शिवाजी—वीरवर ! क्षमा करना । मैं आप लोगो के धैर्य, गाम्भीर्य, कौशल और वीरता को नही भूला हूँ। परन्तु आज (साथ चलने का) अनुरोध मत कीजिए । केवल आशीर्वादो से ही मुझे सर्वाद्धत कीजिये । मैं आप लोगो के आशीर्वाद के बल से निश्चय ही विजय प्राप्त करूँगा । सयोगवश यदि मुझे वीरगति भी प्राप्त हो जाएगी, तो भी आप लोगो के सकुशल रहने पर महाराष्ट्र राज्य फिर भी स्वतन्त्र ही रहेगा, पुन वैदिक धर्म को शरण मिलेगी, और पुन भारतवर्ष के शत्रुओ की पत्नियो के हृदय मे कम्पन होता रहेगा । किन्तु मेरे

च कस्मिन् धुर धारयिष्यति धर्म ? कमालम्बिष्यते भारताभिजन-स्वातन्त्र्य-भार ? कस्याग्रे च रोदिष्यति नवोन्नतिमासादयन्ती महा-राष्ट्र-जाति ? तदलमालप्यान्यत्। सहसहचराय मे स्वस्त्युच्यताम्, यथा लीलयैवैतान् प्रमत्त–हतकान् विजये।

ततस्तेष्वाशीराशीन् वदत्सु सपदि प्रविश्य प्रणनाम गौरसिंह। शिवेन सप्रेमाऽऽशीराश्युदन्त पृष्टश्चोवाच–"भगवन्! वरयात्रा-प्रस्थानात् प्रागेव वधू-प्रवेशो जात"। अथ "किमिति? किमिति?" पृच्छति सर्व-वीर-मण्डले, स विशकलय्य सर्वमकथयद् रसनारी-लाभचरितम्, कुशलेन तोरणदुर्गे स्थापन-वृत्तान्त च। तदाकर्ण्य

शत्रुस्त्रीणाम्। विरहयत्सु = विरहिता कुर्वत्सु। धुरम् = भारम्। भारता-ऽभिजनस्वातन्त्र्यभार = हैन्दवदेशस्वतन्त्रताधुरा। नवाम् = नवीनाम्, उन्न-तिम्, वृद्धिम्। आसादयन्ती = प्राप्नुवती। सहसहचराय = सहगणाय। "नम स्वस्ती"ति चतुर्थी स्वस्तियोगे। "प्रकृत्याशिषि" इत्यनेन सहस्य सादेश-निषेध। विजये = विजय करोमि। "विपराभ्या जेरि"त्यात्मनेपदम्। सप्रेमा-ऽऽशीराशि=सस्नेहमङ्गलोक्तिपुरस्सरम्। उदन्तम्=वृत्तान्तम्। विशकलय्य=

साथ ही आप लोगो के भी भारतभूमि को छोड देने पर धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा? भारतवासियो की स्वतन्त्रता का भार कौन सँभालेगा? और नवीन विकास प्राप्त कर रही मराठा जाति किसके आगे रोएगी? अत और कुछ भी मत कहिए। मेरे साथ जा रहे साथियो की तथा मेरी मङ्गल-कामना कीजिए, जिससे हम खेल-खेल मे ही इन नीच अहङ्कारियो को पराजित कर सकें।

उसके बाद, अभी वे सब आशीर्वाद दे ही रहे थे, कि सहसा गौरसिंह ने प्रवेश कर शिवाजी को प्रणाम किया। शिवाजी द्वारा प्रेम और आशीर्वचनो सहित वृत्तान्त पूछने पर गौरसिंह बोला—'महाराज! बारात के प्रस्थान करने के पूर्व ही वधू घर मे आ गई।' तब सभी वीरो के 'क्या है? क्या बात है?' इस प्रक र पूछने पर, उसने रोशन आरा की प्राप्ति और उसको तोरण दुर्ग मे पहुँचा देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर सभी लोग

च कस्मिन् धुर धारयिष्यति धर्मं ? कमालम्बिष्यते भारताभिजन-स्वातन्त्र्य-भार ? कस्याग्रे च रोदिष्यति नवोन्नतिमासादयन्ती महाराष्ट्र-जाति ? तदलमालप्यान्यत्। सहसहचराय मे स्वस्त्युच्यताम्, यथा लीलयैवैतान् प्रमत्त-हतकान् विजये।

ततस्तेष्वाशीराशीन् वदत्सु सपदि प्रविश्य प्रणनाम गौरसिंह। शिवेन सप्रेमाऽऽशीराश्युदन्त पृष्टश्चोवाच—"भगवन्! वरयात्रा-प्रस्थानात् प्रागेव वधू-प्रवेशो जात"। अथ "किमिति? किमिति?" पृच्छति सर्व-वीर-मण्डले, स विशकलय्य सर्वमकथयद् रसनारी-लाभचरितम्, कुशलेन तोरणदुर्गे स्थापन-वृत्तान्त च। तदाकर्ण्य

शत्रुस्त्रीणाम्। विरहयत्सु = विरहिता कुर्वत्सु। धुरम् = भारम्। भारताऽभिजनस्वातन्त्र्यभार = हैन्दवदेशस्वतन्त्रताधुरा। नवाम् = नवीनाम्, उन्नतिम्, वृद्धिम्। आसादयन्ती = प्राप्नुवती। सहसहचराय = सहगणाय। "नम स्वस्ती"ति चतुर्थी स्वस्तियोगे। "प्रकृत्याशिषि" इत्यनेन सहस्य सादेशनिषेध। विजये = विजय करोमि। "विपराभ्या जेरि"त्यात्मनेपदम्। सप्रेमाऽऽशीराशि=सस्नेहमङ्गलोक्तिपुरस्सरम्। उदन्तम्=वृत्तान्तम्। विशकलय्य=

साथ ही आप लोगो के भी भारतभूमि को छोड देने पर धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा? भारतवासियो की स्वतन्त्रता का भार कौन सँभालेगा? और नवीन विकास प्राप्त कर रही मराठा जाति किसके आगे रोएगी? अत और कुछ भी मत कहिए। मेरे साथ जा रहे साथियो की तथा मेरी मङ्गल-कामना कीजिए, जिससे हम खेल-खेल मे ही इन नीच अहङ्कारियो को पराजित

चाऽत्यन्त-प्रमुदिता सर्वे "अतिमाङ्गलिकमिद, मूर्तिमतीय जयश्री, निश्चितो जय आर्यचरणानाम्" इति प्रोचु ।

शिवराजस्तु "गौर ! यद्यप्यल्प ते वय, तथाऽपि युद्धकार्येष्वनियुक्तोऽपि बहुधा मा तोषितवानसि, तदस्मिन् युद्धयात्रा-समये मङ्गलमाचक्षाणोऽवश्यं पुरस्कार्यं इति सादिना पञ्चसहस्र्या अध्यक्षताया त्वा विनियुनज्मि, अङ्गीकुरु" इत्यगादीत् ।

अथ समस्तक-नमनमङ्गीकुर्वति गौरे शिवेङ्गितेन तत्पदार्हाणि वासासि विश्राणयति मुरेश्वरे, तत्पदसूचकमेक सुवर्ण-पट्टक वक्षसि,

---

स्पष्टीकृत्य । रसनारी-लाभ-चरितम् = "रोशन आरा" प्राप्तिवृत्तम् । जयश्री = विजयलक्ष्मी ।

अनियुक्तोऽपि = अप्रेरितोऽपि । आचक्षाण = कथयन् । पुरस्कार्य = पारितोषिकदानार्ह । अध्यक्षतायाम् = स्वाम्ये, सैनापत्ये । विनियुनज्मि = स्थापयामि ।

तत्पदार्हाणि = तत्स्थानयोग्यानि । तादृशसेनापतिधारणीयानीति यावत् । विश्राणयति = ददति । सुवर्णपट्टकम् = हैरण्यपट्टिकाम् । ससुवर्णकोशम् =

अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"यह तो बहुत ही शुभ लक्षण है, इस महिला के रूप मे तो मूर्तिमती विजयश्री ही प्राप्त हुई है । महाराज की विजय निश्चित है ।"

शिवाजी ने कहा—"गौरसिंह ! यद्यपि तुम्हारी उम्र कम है, और तुम युद्ध कार्य मे नियुक्त भी नही किये गये हो, तो भी तुमने मुझे अनेक वार सन्तुष्ट किया है, और इस युद्धयात्रा के अवसर पर मङ्गल सूचक समाचार सुनाया है, अत तुम्हे कुछ पुरस्कार अवश्य मिलना चाहिये । मैं तुम्हे पाँच हजार अश्वारोहियो का सेनापति नियुक्त करता हूँ, स्वीकार करो ।"

गौरसिंह के सिर झुकाकर स्वीकार कर लेने पर, शिवाजी के सकेत से, मुरेश्वर द्वारा उस पद के उपयुक्त वस्त्रो के दिये जाने पर, स्वय शिवाजी ने अपने हाथो से गौरसिंह के वक्षस्थल पर उस पद का सूचक एक स्वर्णपदक

ससुवर्णकोश खड्ग च कटिप्रदेशे शिव स्वहस्तेन स्वयमायोजयत्। तदुदारता–वर्णन–कविता रचयन्त पठन्त च भूषण मौक्तिक-मालया सम्मान्य यावत् पुर पश्यति, तावद् दृष्टम्—पुरतश्चिर-सहचरो माल्यश्रीको नयन-जल-क्षालित-कपोल सहगमनानुमति वाञ्छतीति। तन्निषेधमनुचित मन्यमानस्तत्प्रार्थनामङ्गीकृत्य चरणयो पतित रघुवीरमपश्यत्। "कि किं? कथनीय वा किमपि?" इति पृष्ट स प्रावोचत्–"महाराज! तद्दिने तोरण-दुर्गात् सपदि पत्रादिकमानीतवन्त मामवलोक्य प्रसन्न पारितोषिक प्रत्यज्ञासीदार्य।"

तत शिवराज प्राह–"सत्य दास्यते, किन्तु त्वरासमये साम्प्रतमसाम्प्रत तद् याचनम्। तथाऽपि कथय कि याचसे?" रघुवीर उवाच-

---

सुवर्णनिर्मितेन आच्छादकेन सहितम्। आयोजयत् = योजितवान्। तदुदारताया = तदीयमुक्तहस्तविश्राणनस्य, वर्णने, कविता = काव्यानि। नयनजलेन = अस्रेण, क्षालितौ = धौतौ, कपोलौ = गण्डस्थले यस्य स। प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञातवान्।

असाम्प्रतम् = अयुक्तम्। "युक्ते द्वे साम्प्रत स्थाने" इत्यमर। आज्ञाप्य

और कमर मे सोने की म्यान सहित तलवार बाँधी। शिवाजी ने, अपनी उदारता का वर्णन करनेवाली कविता की रचना कर उसका पाठ करने वाले भूषण कवि को मोतियो की माला से सम्मानित कर ज्यो ही सामने दृष्टि डाली, तो देखा कि सामने खडा उनका पुराना साथी माल्यश्रीक आँसुओ से अपने कपोलो को धोता हुआ उनसे (शिवाजी से आज के युद्ध मे), साथ जाने की अनुमति माँग रहा है। उसको मना करना अनुचित समझते हुए उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उन्होंने चरणो पर पडे हुए रघुवीर की ओर देखा। उनके 'क्या है? क्या है? कुछ कहना है क्या ?' यह पूछने पर रघुवीर ने कहा—'महाराज! उस दिन तोरण दुर्ग से अतिशीघ्र पत्र आदि ले आने पर प्रसन्न होकर आपने मुझे पुरस्कार देने का वचन दिया था।'

तब शिवाजी ने कहा—"अवश्य दूँगा, परन्तु शीघ्रता मे इस समय उसकी याचना करना ठीक नही, फिर भी कहो, क्या चाहते हो ?"

"भगवन्निदमेवाभ्यर्थये यदनुगन्तुमाज्ञाप्योऽय विधेय ।" तदाकर्ण्या-ऽत्यन्तचकित शिवराज प्राह—'चित्रम् ! सन्देश-हर-पदे नियुक्तोऽसि, अतिशिक्षित–वीर–कार्य–प्रवाहे च पतितु साहसमाधत्से ! कथ-मेतत् ?'

रघुवीर आह—"महाराज ! स्वकुटुम्बेऽहमेकोऽस्मि, विनष्ट माम-वगत्य न कोपि रोदिष्यति, प्रभु तोषयितु शक्ष्यामि चेत्, आयतिर्मे मङ्गलमयी ।"

शिवस्तु विलम्बस्याऽनवसरमाकलयन् झटित्योमित्युवाच । स च शिरसा भुव स्पृशन् प्रणम्य युद्धसज्जोऽभूत् । अथाऽऽपिप्रच्छिषमाण गौर सम्बोध्य शिवराजेनाऽभाणि—

=आदेशयितव्य । चित्रम्=आश्चयम् । सन्देशहर-पदे=वार्त्ताहर-स्थाने । अतिशिक्षिताना वीराणा कार्यप्रवाहे=कर्त्तव्यधारायाम् । साहसकार्य इति यावत् ।

विनष्टम्=अदृष्टम् । 'नश अदर्शने' । क्त, मरण तु नार्थो मङ्गलवेलाया-ममङ्गलाभिधानस्य कविसमयख्यातिविरुद्धत्वात् । आयति=उत्तरकाल । "उत्तर काल आयतिरि"त्यमर ।

अनवसरम्=असमयम् । आकलयन्=विचारयन् । ओम्, अङ्गीकार-सूचकमव्ययम् । आपिप्रच्छिषमाणम्=आप्रष्टुमिच्छन्तम्, अहमप्यागच्छामीति शेष ।

रघुवीर ने कहा—'महाराज ! यही निवेदन है कि साथ चलने के लिये इस दास को भी अनुमति दीजिए ।'

यह सुनकर अत्यन्त विस्मय से शिवाजी ने पूछा—'आश्चर्य है ! तुम दूत के पद पर नियुक्त हो, और अत्यन्त अभ्यस्त वीरो की कर्तव्यधारा मे कूदने का साहस कर रहे हो । यह कैसे ?'

रघुवीर ने कहा—'महाराज ! अपने कुल मे मैं अकेला हूँ । मुझे मारा गया जानकर कोई भी रोने वाला नही है, और यदि मैं स्वामी को सन्तुष्ट कर सका तो मेरा भविष्य मङ्गलमय होगा ।'

शिवाजी ने विलम्ब का अवसर न समझ कर झटपट 'हाँ' कर दिया । रघुवीर भी सिर से पृथिवी का स्पर्श करते हुए प्रणाम कर युद्ध के लिये सुसज्जित

"त्वं तु सादिना पञ्चशती सह नीत्वा पुण्यनगरस्य पूर्वतः प्रतीक्षस्व, यदि रक्तमेकमग्निपुष्पं गगने समुड्डीयमानं पश्ये, ततस्त्वं बलात् प्रविश्य प्रत्यर्थिनामाक्रमणं विधास्यसि, इतश्च पश्चिमतः स्वर्णदेव आर्यः"।

स च 'तथे'त्युक्त्वा तथा कर्तुं प्रचलितः, स्वर्णदेवोऽपि चोमिति स्वीचकार।

शिवराजोऽपि—"प्रतीक्ष्यताम्, जननीं प्रणम्याऽऽगच्छामि" इति व्याहृत्याऽन्तः प्रविष्टो मुहूर्तानन्तरं च पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन् निरगात्, आललाप च—

शिव —अपि सज्जा यूयम्?

माल्यश्रीक —आम्! प्रस्तुता वयम्।

प्रतीक्षस्व = प्रतीक्षां कुरु। रक्तम् = शोणम्। अग्निपुष्पम् = "गुब्बारा" इति हिन्दी। समुड्डीयमानम् = समुत्पतत्।

चोमिति, "ओमाङोश्चे"ति पररूपम्। परिमृशन् = प्रोञ्छन्। निरगात् = निष्क्रान्तः।

हो गया। उसके बाद कुछ पूछने की इच्छा वाले गौरसिंह को सम्बोधित कर शिवाजी ने कहा—'तुम पाँच सौ अश्वारोहियों को साथ लेकर पूना नगर के पूर्व की ओर प्रतीक्षा करो, जब एक लाल रंग का अग्निपुष्प आकाश में देखना तब तुम बलपूर्वक प्रवेश कर शत्रुओं पर आक्रमण कर देना, और इधर पश्चिम से आर्य स्वर्णदेव आक्रमण कर देंगे।'

गौरसिंह—'ठीक है ऐसा ही करूँगा', कह कर, वैसा करने के लिये चल दिया। और स्वर्णदेव ने भी 'हाँ' कह कर स्वीकार किया।

शिवाजी भी, 'प्रतीक्षा करो, माताजी को प्रणाम कर मैं अभी आता हूँ' यह कह कर अन्दर गये और क्षण भर बाद वस्त्र के छोर से आँखें पोंछते हुए बाहर आए और बोले—

शिवाजी—आप लोग तैयार हैं न?

माल्यश्रीक—जी हाँ, हम लोग प्रस्तुत हैं।

शिव —अथ विजयता त्रिपुरमथनो देवदेव ।

सर्वे—विजयते महादेव ! विजयते सनातनधर्म ! विजयते च श्रीमान् महाराष्ट्रराज !

रघुवीर —[पुष्पमालामर्पयन्] तोरण–दुर्गस्थ—मारुतिमन्दिरा-ऽध्यक्षेणार्पितेयम् ।

शिव —जय जय हनूमन् ! त्रायस्व ! ! [इति सादर प्रसादमाला कण्ठे स्थापयति स्म ।]

ब्राह्मणा —[कुङ्कुमाक्षत–दान–पुर सरम्]

"अक्षतान् विप्रहस्तेभ्यो नित्य विन्दन्ति ये नरा ।
तेषा विवृद्धिमायान्ति लक्ष्मीरायुर्यशो बलम् ॥"

त्रयाणा पुराणा समाहारस्त्रिपुरम् तत्र विद्यमानोऽसुरो लक्षणया त्रिपुर, अथवा त्रीणि पुराणि यस्येति बहुव्रीहि, तन्मथन =तन्मर्दक । प्रसाद-मालाम् = हनूमदर्पितमालिकाम् ।

अक्षतान् = क्षतशून्यान् तण्डुलकणान् । "लाजा पुभूम्नि चाक्षता" इत्य-

---

शिवाजी—तो फिर, बोलो त्रिपुरविनाशक देवदेव महादेव की जय !

सभी—महादेव की जय ! सनातन धर्म की जय ! ! महाराष्ट्रराज की जय ! ! !

रघुवीर—[शिवाजी को फूलो की एक माला देते हुए] यह माला तोरण-दुर्ग के महावीर मन्दिर के अध्यक्ष ने महाराज के लिये भेजी है ।

शिवाजी—जय जय हनुमान् ! भगवन् ! रक्षा करो । [शिवाजी ने प्रसाद के रूप मे प्राप्त माला को सादर गले मे पहन लिया ।]

ब्राह्मणसमूह—[शिवाजी के हाथ मे कुकुम अक्षत देते हुए] 'जो मनुष्य नित्य ब्राह्मणो के हाथो से अक्षत ग्रहण करते हैं, उनकी लक्ष्मी, आयु,

"शत्रव पराभव यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, हताश्च ब्रह्म-द्विष, हताश्च परिपन्थिन, हताश्च विघ्नकर्तार, श्रीरस्तु"।

माल्यश्रीक—"यतो धर्मस्तत कृष्णो यत कृष्णस्ततो जय"

एव सर्वे इष्टदेव स्मरन्तो माङ्गलिक-शब्दानुच्चारयन्तो महता कोपेन रिपुनिकर दिधक्षन्त इव दुर्गादवातरन्।

सिंहदुर्गात् पुण्यनगरपर्य्यन्त शिवराजेन तूष्णीमदीपप्रकाशा अवाग्विलासा सेना सन्निवेशिता। स्वय च पञ्चविंशति वा त्रिंशद् वा उत्साहधनान् धीरान् वीरान् सह नीत्वा, पुण्यनगर-प्रवेश-द्वार-

---

मर। विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, हस्तेभ्य। नित्यम् = सततम्। विन्दन्ति = प्राप्नुवन्ति, "विद्लृ लाभे"। विवृद्धिम् = विपुला वृद्धिम्। शाम्यन्तु = शान्ति गच्छन्तु। घोराणि = उपद्रवकराणि। ब्रह्मद्विष = वेद-शत्रवो ब्राह्मण-शत्रवश्च।

रिपुनिकरम् = शत्रुव्रातम्। दिधक्षन्त = दग्धुमिच्छन्त।

अदीपप्रकाशा = आलोकरहिता। अवाग्विलासा = भाषणरहिता।

सन्निवेशिता = सस्थापिता। उत्साहधनान् = सोत्साहान्। धीरान् =

यश और शक्ति मे वृद्धि होती है।' 'आप के शत्रु पराजित हो, उपद्रव शान्त हो, पापो का दमन हो, ब्राह्मणद्वेषी विनष्ट हो, प्रतिद्वन्द्वियो का विनाश हो, विघ्नकारियो का दमन हो, और आप को लक्ष्मी प्राप्त हो।'

माल्यश्रीक—'जिसके पक्ष मे धर्म है, उसी के पक्ष मे कृष्ण है, और जिसके पक्ष मे कृष्ण है, उसी को विजय प्राप्त होती है।'

इस प्रकार सभी लोग इष्टदेव का स्मरण करते हुए, माङ्गलिक शब्दो का उच्चारण करते हुए, भयङ्कर क्रोध से मानो शत्रुसमूह को जला देने की इच्छा से दुर्ग से उतर पडे।

शिवाजी ने सिंहदुर्ग से पूना नगर तक अपनी सेना लगा दी। उनकी सेना एक दम शान्त (मौन) थी। उसमे दीपक का प्रकाश तक न था और कोई भी सैनिक बातचीत नही कर रहा था। वे स्वय पच्चीस-तीस

समीप एव गहने गाढान्धकारे आम्रवणे प्रतीक्षमाणः समतिष्ठत।

तावत् "ढ ढ ढम्" इत्यश्रावि वाद्य-निनद, आलोकिषत च स्थूलवर्त्तिकामहाद्युतयो दीपा। परस्परमालोक्य तैः कथितमिय सा वरयात्रेति। अथ समीपमायाते तस्मिन् वरयात्रामण्डले शनैः शनैरेते सर्वेऽपि तैरेव सह मिलिता सुखेन पुण्यनगर प्रविष्टा।

यत एव सपादाता, सवाडवा, घाण्टिक-चाक्रिकाऽऽयुधिक-वैजयन्तिक-वादकादि-सहिता कृशानुक्रीडा-कलन-कौतुकिन एते यान्ति स्म, तत एव गवाक्षेभ्य क्रोड-स्थापित-स्तनन्धया गृहिण्य, उच्च-

धैर्यशालिन। गहने = अविरलवृक्षके। गाढोऽन्धकारो यस्मिस्तस्मिन्। आम्र-वणे = रसालविपिने।

वाद्यनिनद = भेरीध्वनि। आलोकिषत = दृष्टा। स्थूलवर्त्तिकया, महाद्युतय = विशिष्टकान्तिशालिनो दीपा = "मशाल" इति ख्याता।

सपादाता = सपदातिसैनिका, सवाडवा = सघोटका। घाण्टिका = घण्टया चरन्त, चाक्रिका = चक्रेण चरन्त, आयुधिका = आयुध-जीविन, वैजयन्तिका = ध्वजधारका। वादका = वाद्यवादनपटव, एतदादिभि सहिता = समेता। कृशानुक्रीडाया = "आतिशबाजी" इति ख्याताया, कलने = करणे, कौतुकिन = सकुतूहला, यान्ति स्म = अगच्छन्। क्रोड-स्थापितस्तनन्धया = भुजाभ्यन्तरनिवेशितपय पायिबाला:, उच्चकुचाग्रे =

उत्साही और धैर्यशाली वीरो को साथ लेकर, पूना नगर के प्रवेश द्वार के पास ही घने अन्धकार से युक्त आम्र वन मे प्रतीक्षा करने लगे।

तब तक 'ढ ढ ढम्' करके बाजे का शब्द सुनाई दिया, और मोटी बत्तियो वाले, तथा तीव्र प्रकाश वाले दीपक दिखाई पडे। एक दूसरे की ओर देखते हुए उन (आम्र-वन मे छिपे) सैनिको ने कहा, 'यह वही बारात है'। तदनन्तर उस बारात के, पास आ जाने पर, धीरे-धीरे वे सभी उन बारातियो मे मिलकर आसानी से पूना नगर मे प्रविष्ट हो गए।

आतिशबाजी के कौतुकी ये बाराती पैदलो, घुडसवारो, घण्टा वालो, चक्र धारण करने वालो और बाजा वालो के साथ, जिधर से ही निकल आते

"शत्रव पराभव यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, हताश्च ब्रह्मद्विष, हताश्च परिपन्थिन, हताश्च विघ्नकर्तार, श्रीरस्तु"।

माल्यश्रीक—"यतो धर्मस्तत कृष्णो यत कृष्णस्ततो जय"

एव सर्वे इष्टदेव स्मरन्तो माङ्गलिक-शब्दानुच्चारयन्तो महता कोपेन रिपुनिकर दिधक्षन्त इव दुर्गादवातरन्।

सिहदुर्गात् पुण्यनगरपर्य्यन्त शिवराजेन तूष्णीमदीपप्रकाशा अवाग्विलासा सेना सन्निवेशिता। स्वय च पञ्चविंशति वा त्रिंशद् वा उत्साहधनान् धीरान् वीरान् सह नीत्वा, पुण्यनगर-प्रवेश-द्वार-

---

मर। विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, हस्तेभ्य। नित्यम् = सततम्। विन्दन्ति = प्राप्नुवन्ति, "विद्लृ लाभे"। विवृद्धिम् = विपुला वृद्धिम्। शाम्यन्तु = शान्ति गच्छन्तु। घोराणि = उपद्रवकराणि। ब्रह्मद्विष = वेद-शत्रवो ब्राह्मण-शत्रवश्च।

रिपुनिकरम् = शत्रुव्रातम्। दिधक्षन्त = दग्धुमिच्छन्त।

अदीपप्रकाशा = आलोकरहिता। अवाग्विलासा = भाषणरहिता।

सन्निवेशिता = सस्थापिता। उत्साहधनान् = सोत्साहान्। धीरान् =

यश और शक्ति मे वृद्धि होती है।' 'आप के शत्रु पराजित हो, उपद्रव शान्त हो, पापो का दमन हो, ब्राह्मणद्वेषी विनष्ट हो, प्रतिद्वन्द्वियो का विनाश हो, विघ्नकारियो का दमन हो, और आप को लक्ष्मी प्राप्त हो।'

माल्यश्रीक—'जिसके पक्ष मे धर्म है, उसी के पक्ष मे कृष्ण हैं, और जिसके पक्ष मे कृष्ण हैं, उसी को विजय प्राप्त होती है।'

इस प्रकार सभी लोग इष्टदेव का स्मरण करते हुए, माङ्गलिक शब्दो का उच्चारण करते हुए, भयङ्कर क्रोध से मानो शत्रुसमूह को जला देने की इच्छा से दुर्ग से उतर पडे।

शिवाजी ने सिंहदुर्ग से पूना नगर तक अपनी सेना लगा दी। उनकी सेना एक दम शान्त (मौन) थी। उसमे दीपक का प्रकाश तक न था और कोई भी सैनिक बातचीत नही कर रहा था। वे स्वय पच्चीस-तीस

समीप एव गहने गाढान्धकारे आम्रवणे प्रतीक्षमाण समतिष्ठत।

तावत् "ढ ढ ढम्" इत्यश्रावि वाद्य-निनद, आलोकिषत च स्थूलवर्तिकामहाद्युतयो दीपा । परस्परमालोक्य तै कथितमिय सा वरयात्रेति । अथ समीपमायाते तस्मिन् वरयात्रामण्डले शनै शनैरेते सर्वेऽपि तैरेव सह मिलिता सुखेन पुण्यनगर प्रविष्टा ।

यत्र एव सपादाता, सवाडवा, घाण्टिक-चाक्रिकाऽऽयुधिक-वैजयन्तिक-वादकादि-सहिता कृशानुक्रीडा-कलन-कौतुकिन एते यान्ति स्म, तत एव गवाक्षेभ्य क्रोड-स्थापित-स्तनन्धया गृहिण्य, उच्च-

धैयशालिन । गहने = अविरलवृक्षके । गाढोऽन्धकारो यस्मिस्तस्मिन् । आम्रवणे = रसालविपिने ।

वाद्यनिनद = भेरीध्वनि । आलोकिषत = दृष्टा । स्थूलवर्त्तिकया, महाद्युतय = विशिष्टकान्तिशालिनो दीपा = "मशाल" इति ख्याता ।

सपादाता = सपदातिसैनिका, सवाडवा = सघोटका । घाण्टिका = घण्टया चरन्त, चाक्रिका = चक्रेण चरन्त, आयुधिका = आयुध- जीविन, वैजयन्तिका = ध्वजधारका । वादका = वाद्यवादनपटव, एतदादिभि सहिता = समेता । कृशानुक्रीडाया = "आतिशबाजी" इति ख्यातायां, कलने = करणे, कौतुकिन = सकुतूहला, यान्ति स्म = अगच्छन् । क्रोड-स्थापितस्तनन्धया = भुजाभ्यन्तरनिवेशितपय पायिबाला, उच्चकुचाग्रे =

उत्साही और धैर्यशाली वीरो को साथ लेकर, पूना नगर के प्रवेश द्वार के पास ही घने अन्धकार से युक्त आम्र वन मे प्रतीक्षा करने लगे।

तब तक 'ढ ढ ढम्' करके बाजे का शब्द सुनाई दिया, और मोटी बत्तियो वाले, तथा तीव्र प्रकाश वाले दीपक दिखाई पडे। एक दूसरे की ओर देखते हुए उन (आम्र-वन मे छिपे) सैनिको ने कहा, 'यह वही बारात है'। तदनन्तर उस बारात के, पास आ जाने पर, धीरे-धीरे वे सभी उन बारातियो मे मिलकर आसानी से पूना नगर मे प्रविष्ट हो गए।

आतिशबाजी के कौतुकी ये बाराती पैदलो, घुडसवारो, घण्टा वालो, चक्र धारण करने वालो और बाजा वालो के साथ, जिधर से ही निकल जाते

कुन्ताग्राऽऽस्फालित–गवाक्ष–दण्डा स्वप्रेमपात्र–प्रियजन–दन्तक्षतव्रण–विषम–ताम्बूलराग–रञ्जिताधराश्चिरण्टश्च अङ्गुल्या 'इदमिदमि'ति निर्दिशन्त्य पश्यन्ति स्म ।

शनैरायात एष समारोह शास्तिखानाध्युषित-गृह-द्वार-पर्य्यन्तम् । शास्तिखान-सीमन्तिन्योऽपि धमद्धमध्वनि-समाकर्णन-जात-कुतूहला, निरादृततन्द्रा, मन्दाक्ष-मन्द-प्रचारा प्रतिसीरा अपसारमपसारम्, लशुन-पलाण्डु-गन्ध-कटुभिर्जम्भा-परम्पराभिर्नासा-मौक्तिकानि मलि-

---

उन्नतचूचुकै, आस्फालिता =ताडिता, गवाक्षदण्डा =वातायनदण्डा याभिस्ता । स्वप्रेमपात्रस्य =स्वस्नेहाधारस्य प्रियजनस्य, दन्तक्षतव्रणेन = दशनखण्डनव्रणेन, विषमा =उच्चावचा, चिह्निता इति यावत् । ताम्बूल-रागेण =ताम्बूलभक्षणजेन लौहित्येन, रञ्जिता =रक्तिमातिशय प्रापिता, अधरा यासा ता । चिरण्टश्च =वधूटच । "चिरण्टी तु स्ववासिनी' इत्यमर ।

समारोह =जनसम्मर्द । शास्तिखानस्य, सीमन्तिन्य =सुकेशवेशवत्यो वनिता 'नारी सीमन्तिनी' इत्यमर । धमद्धमद्ध्वने समाकर्णनेन =श्रवणेन, जातम् =उत्पन्नम्, कुतूहलम् =कुतुक यासा ता । निरादृता =परित्यक्ता, तन्द्रा =आलस्य याभिस्ता । मन्दाक्षेण =लज्जया, मन्द प्रचार =सञ्चरण यत्र तत्र, यासा ता, प्रतिसीरा =यवनिका । अपसारमपसारम् =दूरीकृत्य

थे, उधर ही खिडकियो से गोद मे दूध-पीते बच्चो को लिए हुए गृहिणियाँ तथा उठे हुए चूचुको से खिडकियो की छडो पर आघात करती हुई, अपने प्रेम-पात्र प्रियतम के दन्तक्षत के व्रण से अङ्कित (विषम या उच्चावच) तथा ताम्बूल के रग से रँगे हुए अधरो वाली बहुएँ, उँगली से, 'यह देखो, यह देखो', इस प्रकार निर्देश करती हुई, देखने लगती थी ।

धीरे-धीरे यह जुलूस शाइस्ता खाँ के निवास भवन के द्वार तक आ गया । 'धम-धम' की ध्वनि सुनकर, कुतूहलवश, आलस्य का तिरस्कार कर, लज्जा के कारण मन्द गति से चलकर, चिक हटा कर, लहसुन और प्याज की गन्ध से कडवी जँभाइयो से नाक मे पहने आभूषण मे मोलगे तियो को मलिन करती

नयन्त्य लोलत्कुण्डला, दोलल्लन्तिका, स्खलद्वसना, वलद्धसना, मदव्याघूर्णितनयना, विहित-मेचक-कुञ्चित-कच-प्रचय-सञ्चयना, अञ्जन नरञ्जिताभिर्दृग्भिरिन्दीवरमाला इव वर्षन्त्य, रोलम्ब-कदम्बमिव क्षिपन्त्य, वीक्षितुमारेभिरे। समारोह एष शनै शनै परतो निर्यात, किन्तु अन्यूनास्त्रिशद्वीरास्तद्भवन-नेदिष्ठ-वाटिका-विटपान्धतमसच्छायास्वेव समलीयन्त।

दूरीकृत्य। लशुनस्य = रसोनस्य, पलाण्डो = "प्याज" इति ख्यातस्य, गन्धेन कटुभि। जृम्भापरम्पराभि = गात्रविनामसमूहै। नासामौक्तिकानि = नासिकामणीन्। मलिनयन्त्य = मलिनता नयन्त्य। लोलत्कुण्डला = चलत्कर्णभूषणा। दोलल्लन्तिका = हिल्लोलत्कण्ठिका। स्खलद्वसना = गलद्वस्त्रा। वलद्धसना = एधमानहासा। मदव्याघूर्णितनयना = मद्यादिपानभ्रमन्नेत्रा। विहितम् = सम्पादितम्, मेचकस्य = श्यामस्य, कुञ्चितस्य = गुच्छितस्य, कचप्रचयस्य = केशसमूहस्य, सञ्चयनम् = बन्धनम्, याभिस्ता। अञ्जनरञ्जिताभि = कज्जलाक्ताभि, इन्दीवर-माला = पद्मश्रेणी। वर्षन्त्य इव = प्रकिरन्त्य इवेत्युत्प्रेक्षा। रोलम्ब-कदम्बमिव = द्विरेफव्रातमिवेत्युत्प्रेक्षा। क्षिपन्त्य = प्रसारयन्त्य। वीक्षितुम् = द्रष्टुम्। आरेभिरे = प्रारब्धवत्य। परत = अन्यस्या दिशि। तद्-भवनस्य = तत्सदनस्य, नेदिष्ठाया = नितान्तान्तिकस्थाया, वाटिकाया = उद्यानस्य, विटपानाम् = शाखानाम्, अन्धतमसच्छायासु = गाढान्धकार-प्रतिबिम्बेषु। समलीयन्त = अन्तर्हिता।

हुई, हिलते कुण्डलो वाली, डोलते हुए हारो वाली, सरकते हुए वस्त्रो वाली, हँसती हुई, मद से अलसाई आँखो वाली, काले और घुँघराले केशपाशो को बाँधे हुए, अञ्जन लगे नेत्रो से नीलकमलो की माला की वर्षा सी करती हुई, भ्रमरो के समूह को फेंकती हुई सी, शाइस्ता खाँ की स्त्रियाँ भी, इस जुलूस को देखने लगी। यह जुलूस धीरे-धीरे दूसरी ओर निकल गया, परन्तु पूरे तीस वीर इस भवन के समीप की वाटिका के वृक्षो के घने अन्धकार की छाया मे ही छिप गये।

वरयात्रा-कलकल शान्त, स्त्रिय पुन स्व-शयनीयेपु शयिता । अन्धकारो ववृधे । नागरिक-जनरवोऽस्त । पथि पथिकाना गतागत निवृत्तम् । श्यामश्यामैर्मेघैस्तिमिर-सान्द्रता द्विगुणिता । झिल्लीरवाऽनुसृतो नैशीथ स्वभावसिद्धोऽनाहतानुकारी ध्वनिरश्रूयत । प्रतीहारा अपि गृहीतभित्तिकाश्रया घुरघुरायित-घोर-घोणा श्लथत्करवाला समशयिषत ।

अथाऽर्द्धसुप्ताभिर्महामद-महिलाभि प्रासाद-पृष्ठत सीत्कारमय खटखट-प्रधान किञ्चन शब्दजातमिवाऽश्रावि, किन्तु निद्रया गाढ-

---

स्वशयनीयेपु = स्वपर्यङ्केषु । ववृधे = एधामास । अस्त = समाप्ति गत, पथिकानाम् = यात्रिणाम् । श्यामश्यामै = अतिमेचकै । तिमिर-सान्द्रता = अन्धकारघनता । द्विगुणिता = ववृधे । झिल्लीरवानुसृत = झिण्टिकाशब्दपृष्ठग । नैशीथ = आर्धरात्रिक । स्वभावसिद्ध = प्राकृतिक । अनाहतस्य = योगशास्त्रप्रसिद्धध्वनिविशेषस्य, अनुकारी = अनुकरणशील, प्रतीहारा = दौवारिका । गृहीतभित्तिकाश्रया = अवलम्बितकुड्याधारा । घुरघुरायितघोरघोणा = घुरघुरशब्दनिस्सरणभयङ्करनासा । गाढनिद्राक्रान्ता इति भाव । श्लथत्करवाला = स्थानभ्रष्टतरवारय । समशयिषत = सुप्ता ।

अर्धसुप्ताभि = अपूर्णस्वापाभि, महामदमहिलाभि = शास्तिखान-

बारात का कोलाहल शान्त हो गया । स्त्रियाँ पुन अपने पलँगो पर सो गई । नागरिको का शोरगुल समाप्त हो गया । रास्तो पर पथिको का आना-जाना बन्द हो गया । काले-काले बादलो से अँधेरे की गहनता और दूनी हो गई । झिल्लियो की झङ्कार के साथ ही, अनाहत नाद का अनुकरण करने वाला अर्धरात्रि का प्राकृतिक शब्द सुनाई पडने लगा । पहरेदार भी दीवार का सहारा लेकर सो गये, उनकी नासिकाएँ खर्राटे भरने की आवाज के कारण भयङ्कर लगने लगी, और उनके हाथो की तलवारे शिथिल हो गई ।

तदनन्तर शाइस्ता खाँ की स्त्रियो ने अर्धनिद्रित अवस्था मे, महल के पिछवाडे से आती हुई सीत्कारयुक्त खट्-खट् की आवाज सी सुनी, परन्तु नीद मे

नाक्रान्ताभिर्नाऽपार्यतोत्थातु निर्णेतु वा । घमघमाध्वनिरेष द्वैगुण्य प्राप्त, महानस-गृहे इष्टकाग्रावपात इव चाऽन्वभावि । ततस्तु भीता स्त्रिय उत्थाय पल्यङ्केषूपविश्य "किमिद कुत ?" इति परस्परमालप्य दासी प्रोचु —"हण्डे ! हण्डे ! गत्वाऽवधेहि, रन्धन-गृहे किमिव सशब्दमास्खलितम् ?"

सा तु निद्रा-भर-मन्थरा प्रावोचत्—"भट्टिनि ! शेष्व, कोऽपि बिडाल आखु गृह्णन् समापतितो भवेत्" ।

क्षणानन्तर पुनराकर्णि तथैवेष्टका-पात-घात । अथ द्वित्रा स्त्रियो भीत-भीता रन्धनालय-द्वार-देशमुद्घाटय मन्दालोकेन दीपेना-ऽऽलोकन्त—यत् पञ्चषा महाराष्ट्र वीरा भित्ति भित्त्वा, अन्त-

गोपायामि । प्रासादपृष्ठत =हर्म्यपश्चाद्भागे । शब्दजातमिव=ध्वनिसमूह इव । अश्रावि=श्रुतम् । आक्रान्ताभि =व्याप्ताभि । नाऽपार्यत=न पारितम् । द्वैगुण्यन्=बाहुल्यम । महानसगृहे=पाकस्थाने । इष्टकाना ग्राव्णा च पात इव=पतनमिव । अन्वभावि=अनुभूत । पल्यङ्केषु=पर्यङ्केषु । हण्डे, दास्यादिनीचसम्बोधनम् । अवधेहि=जानीहि । रन्धनगृहे=महानसे । सशब्दम्=सध्वनि । आस्खलितम्=पतितम् ।

निद्राभरमन्थरा=स्वापभारसालस्या । भट्टिनि=राज्ञि । शेष्व=शयन कुरु । आखुम्=मूषकम् । समापतित =कूर्दित ।

मन्दालोकेन=अल्पप्रकाशजनकेन शयनसमयार्थरक्षितेन । भित्तिम्=

माती होने के कारण वे न तो उठ ही सकी, और न निर्णय करने का साहस ही कर सकी । धम्-धम् की ध्वनि दूनी हो गई, तथा रसोईघर मे ईंट-पत्थरो के गिरने का सा अनुभव हुआ । तब वे भयभीत होकर, उठकर, पलँग पर बैठ कर, 'यह क्या है (यह आवाज़ कैसी है) ? कहाँ से (आ रही है) ?' इस प्रकार एक दूसरे से पूछती हुई दासी से बोलीं—'अरी जाकर देख तो, रसोई-घर मे धमाके के साथ क्या गिरा हे ?'

निद्रा के भार से अलसाई दासी ने कहा—'रानी जी, सो जाइये, कोई बिडाल चूहे को पकडता हुआ कूदा होगा ।'

क्षण भर के बाद पुन उसी प्रकार ईंटे गिरने की ध्वनि सुनाई दी । तब दो-तीन स्त्रियो ने डरते-डरते रसोईघर का किवाड खोल कर, क्षीण प्रकाश

रायाता सन्ति, अन्ये चैकस्मात् परमपर, ततोऽपि परमपर —इति विकोशखड्गा प्रविशन्ति, तास्तु सचीत्कार प्रतिनिवृत्ता, गृहावग्रहणी-समुद्घाताहत-प्रपदा प्रघाणे निपतन्त्य कान्दिशीका अट्टेष्वितस्ततो धावन्त्यो घोरनिद्रया सुप्त सेनान्य समबूबुधन्नचकथश्च यद्—"नग्नासिहस्ता महाराष्ट्रा गृहे प्रविष्टा" इति।

सेनानीस्तु महादेव-पण्डितालाप स्मरन् सुप्त, इति स्वप्नेऽपि बद्धकरसम्पुट सन्धि प्रार्थयमान स्वाग्रत स्थित शिवराज पश्यन्नासीत्। अकस्मादुत्थापितश्च क्षणमुपधानम्, क्षण पल्यङ्क-पट्टिकाम्, क्षण सीमन्तिनी-जन-ग्रीवा समालिङ्गन्, परत प्राप्तचेतन सम-

---

कुडचम्। **भित्त्वा** = विदार्य, सन्धि कृत्वेति यावत्। **अन्त** = अभ्यन्तरे। **एकस्मात् परमपर** = "एक के बाद दूसरा" इति हिन्दी। **विकोशखड्गा** = नग्नासय। **गृहावग्रहणीषु** = सदनदेहलीषु, **समुद्घातेन** = समुच्छलनेन, **आहतानि** = ताडितानि, **प्रपदानि** = पादाग्राणि यासा ता। **प्रघाणे** = बहिर्द्वारप्रकोष्ठके। **कान्दिशीका** = भयद्रुता। **अट्टेषु** = अट्टालिकासु। **सेनान्यम्** = सेनापतिम्। **समबूबुधन्** = अजागरयन्।

बद्धकरसम्पुटम् = कृताञ्जलिम्। **पल्यङ्कपट्टिकाम्** = पर्यङ्कस्य वामीय दक्षीय वा काष्ठम्, "पाटी" हिन्दी। **सीमन्तिनीजनस्य** = नारीवर्गस्य, **ग्रीवाम्**

वाले दीपक की सहायता से देखा कि पाँच-छ मराठे सैनिक दीवार तोडकर भीतर आ गये हैं, और अन्य सैनिक भी एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस प्रकार एक के बाद एक, नगी तलवार लिये अन्दर आते जा रहे है। वे चिल्लाती हुई लौट गई। घर की चौखट से पैरो के अग्रभाग मे ठोकर खाकर, बाहरी कमरे मे गिरती-संभलती, भयवश अटारियो पर इधर से उधर दौडती हुई, उन स्त्रियो ने गहरी नीद मे सोए हुए सेनापति शाइस्ता खाँ को जगाया और बताया कि नगी तलवारे लिये मराठे घर मे घुस आए हैं।

सेनापति शाइस्ता खाँ महादेव पण्डित की बात का स्मरण करता हुआ सोया था, अत स्वप्न मे भी, हाथ जोडे हुए सन्धि के लिए प्रार्थना कर रहे शिवाजी को अपने आगे खडा देख रहा था। एकाएक जगाए गए शाइस्ता खाँ ने कभी तकिया, कभी पलंग की पाटी और कभी स्त्रियो के कण्ठ को ग्रहण करते

ज्ञासीद्—यत् पुण्यनगर वशवद विधाय महाराष्ट्रा अन्त पुराक्रमणमपि व्यधुरिति। अथैष सपदि समुत्थाय येनैव पथा पलायितुमियेष, तत एव सखड्ग महाराष्ट्र-वीर मूर्तिमन्तमिव मृत्युमुपस्थितमवलोक्य पुन प्रविश्य स्वाधिष्ठित-विशाल-कोष्ठस्य प्रधान-द्वार पक्ष-द्वाराणि च प्यधात्। स्त्रीभि सहित स्वयमेकल एव च पुरुषोऽन्त स्थ प्रच्छन्नतया पलायितु व्यचेष्टिष्ट।

इतस्तु कञ्चित् कोलाहलमिवाऽऽकर्ण्य द्वार-देशस्था रक्षका पार्श्वकोष्ठेषु चन्द्रशालासु मण्डपेषु च सुप्ता अपरे वीरा समुत्थाय श्येना इव समापतन्। महाराष्ट्रै "हर हर महादेव" इति, यवनैश्च

= कन्धराम्। समालिङ्गन् = समाश्लिषन्। वशवदम् = स्वाधीनम्। व्यधुः = कृतवन्त.। स्वेन अधिष्ठितस्य = अध्युषितस्य, विशालप्रकोष्ठस्य = महत्या शयनकक्षाया। प्रधानमार्गम्=गमागमपथम्। पक्षद्वाराणि="खिडकी" इति ख्यातानि। प्यधात् = अर्गलितवान्। एकल = एकाकी। अन्तस्थ = कोष्ठस्य, लुक्कायित इति यावत्। प्रच्छन्नतया = गुप्ततया। व्यचेष्टिष्ट = यतितवान्।

पार्श्वकोष्ठेषु = द्वारपार्श्वयो रक्षकनिवासाय रचितेषु लघुसदनेषु। चन्द्र-शालासु = शिरोगृहेषु। मण्डपेषु = अङ्गनान्तरालशयनीयसदनेषु। तृणादि-

---

हुए, अन्तत चेतना प्राप्त करने पर समझा कि पूना नगर को अपने अधिकार मे करके मराठो ने हरम पर भी हमला कर दिया है। उसके बाद उसने झटपट उठकर, जिधर से भी भागना चाहा, उधर ही तलवार लिए मूर्तिमान् मृत्यु की भाँति मराठे वीर को उपस्थित देखकर, पुन प्रवेश कर, अपने रहने के विशाल कक्ष के मुख्य द्वार को तथा किनारे के छोटे दरवाज़ो को भी बन्द कर लिया, और स्त्रियो के साथ अकेले ही, छिप कर, गुप्त रूप से भाग जाने की कोशिश करने लगा।

इधर कुछ कोलाहल सा सुनकर द्वारपाल तथा पार्श्वभाग की ओर ऊपर की कोठरियो तथा बरामदो मे सोए हुए सैनिक उठकर बाज़पक्षी की तरह

"अल्ला अल्ला" इति युद्धारम्भसूचको महानिनदोऽक्रियत। तस्मिन् घोरेऽन्धकारे दीप-प्रकाश-साक्षिक कुट्टिमेऽट्टे प्राङ्गणे च खङ्ग-खणत्कार-क्ष्वेडा-हुङ्कार-ध्वनि-प्रतिध्वनि-धर्षित-प्रतिवेशि-निचय मुहूर्त्त यावत् तुमुल युद्धमभूत्। "आक्रान्तमाक्रान्तम्, जित जितम्" इति वर्द्धितोत्साहै-र्महाराष्ट्रै -"आक्रान्ता आक्रान्ता , जिता जिता "-इति भग्नोत्साहा यवना परितो विशस्यमाना स्वमज्जरुधिरमेदोनिचयैर्मेदिनी मेद-स्विनी पङ्किला च समकार्षु ।

निर्मितेषु लोकप्रसिद्धस्य तादृशसदनमात्रे प्रयोग इति बोधयति। महानिनाद = विशिष्टो ध्वनि । दीपप्रकाशसाक्षिकम् = प्रदीपालोकसम्मुखे। कुट्टिमे = निबद्धभूमौ। 'कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूरि'त्यमर । प्राङ्गणे = चत्वरे। 'अङ्गण चत्वराजिरे' इत्यमर । खङ्गखणत्कारस्य = असिखडखडाशब्दस्य, क्ष्वेडाया = सिंहनादस्य, हुङ्कारस्य = हुशब्दस्य च, ध्वनिप्रतिध्वनिभि = शब्दप्रति-शब्दै, धर्षित = भयाकुलीकृत । प्रतिवेशिनिचय = पार्श्वसदनीयजनव्रातो यस्मिन् कर्मणि तादृशम्। येन तदिति युद्धविशेषण वा। मुहूर्त्त यावत् = घटिका-द्वयपर्यन्तम्। तुमुलम् = सङ्कुलम्। भग्नोत्साहाः = विनष्टहर्षा, विशस्य-माना = हिंस्यमाना । मज्जा = शरीरगतधातुविशेष, रुधिरम् = लोहितम्, मेद = अस्थिसारो धातुविशेष, तेषा निचयै = समूहै । मेदस्विनीम् = मेदसा बहुलाम्। पङ्किलाम् = कर्दमवतीम्।

झपटे। मराठो ने 'हर-हर महादेव', और यवनो ने 'अल्ला, अल्ला' की युद्ध प्रारम्भ होने की सूचक महागर्जना की। उस घोर अन्धकार मे, दीपक के प्रकाश मे ही, फर्श पर, अटारियो पर, और आँगन मे, थोडी देर तक, तलवारो की खनखनाहट, सिंहनाद तथा हुंकार की ध्वनि-प्रतिध्वनि से पडोसियो को भयभीत करने वाला घमासान युद्ध हुआ। 'घेर लिया, घेर लिया, जीत लिया, जीत लिया', इस प्रकार कहते हुए, वढे हुए, उत्साह वाले मराठो द्वारा चारो ओर काटे जाते हुए, 'घिर गए, घिर गए हार गए, हार गए', इस प्रकार चिल्लाते हुए उत्साहहीन यवनो ने अपनी मज्जा, रक्त तथा चर्वी के ढेरो से पृथिवी को पङ्किल वना दिया।

तावत् प्रासादबहिर्भागे एकमग्निमय रक्त कुसुमाकार स्फुलिङ्ग-निकुरम्बकमपि गगन चुचुम्ब ।

शिवराजस्तु सेनापतिमेवान्विष्यन् शुद्धान्तदिश्यापतितो मार्ग-मवरुध्य स्थित द्वाविंशतिवर्षदेश्यमेक सुन्दर यवनयुवकमवलोक्य चान्द्रेण सवादिनीमिव तदाकृति निर्धारयन् उक्तवान् यद् "मन्ये, चान्द्रखानस्य पुत्रोऽसि" । स ऊचे—"ओम्" इति ।

शिवोऽभाणीद्—"अपसराऽपसर, किमिति मृषा स्वपितृ-शोणित-दिग्ध-मत्करवाल-धारा-तीर्थे शरीर विसिसृक्षसि ? समालोक्य तव मुग्ध मुखमण्डल करुणा-परवश क्रौर्यमाचरितु नोत्सहे"

कुसुमाकारम् = पुष्पाकृति । स्फुलिङ्गनिकुरम्बकम् = अग्निकणव्रज । गगन चुचुम्ब = नभ पस्पर्श । पूर्वनिश्चयानुसार दूरस्थितभटसूचनाय सङ्केतोऽयम् ।

शुद्धान्तदिशि = अन्त पुरमार्गे । आपतित = वेगाच्चालित । द्वाविंशति-वर्षदेश्यम् = प्रायो द्वाविंशतिहायनवय कम् । चान्द्रेण = चान्द्रखानेन । सवादिनीम् = सदृशीम् । तदाकृतिम् = तदाकारम् । ओम् = एवम् । अङ्गी-कारेऽय शब्द ।

स्वपितृशोणितेन = त्वज्जनकलोहितेन, दिग्धे = छुरिते, मत्करवाल-धारातीर्थे = मत्खड्गधारा-पुण्यस्थले । विसिसृक्षसि = विस्रष्टुमिच्छसि । यदि नापसरसि नून तदा मया हन्यसे इत्यर्थ । मुग्धम् = सुन्दरम् । करुणापरवश = दयाधीन । क्रौर्यम् = क्रूरताम् ।

इसी बीच राजमहल के बाहर वाले प्रदेश मे एक अग्निमय रक्तिम पुष्प के आकार का अङ्गारपुञ्ज आकाश मे ऊपर जाता दिखाई दिया ।

शिवाजी शाइस्ता खाँ को ही खोजते हुए अन्त पुर की ओर आ गए, और वहाँ माग रोक कर खडे हुए करीब बाईस वर्ष के एक सुन्दर युवक को देखकर, उसकी आकृति को चाँद खाँ से मिलती-जुलती पाकर बोले 'मालूम होता है कि तुम चाँद खाँ के पुत्र हो' । उस युवक ने कहा 'हाँ' ।

शिवाजी ने कहा—'हट जाओ, हट जाओ, अपने पिता के खून से सनी मेरी तलवार की धारा के तीर्थ पर अपने शरीर को व्यर्थ ही क्यो छोडना चाहते

इति कथयत एव तस्याऽकस्मादुत्प्लुत्य शितधार खड्ग मूर्द्धनि प्राहिणोत् स रिपुबाल । शिवस्तु स्तिमित उत्प्लुत्य यावदेकतस्तिष्ठन् स्व–खड्ग–त्सरु दृढ करेणाऽऽकलयति, तावदद्राक्षीद् यद् भयानक-शल्यया कयाचित् हृदय भित्त्वा परतोऽपि निस्सृताग्रया शक्त्या तीव्र विद्धो भूमौ शायितोऽस्ति शत्रुरिति। तावद् दृष्टवान्—यत् पिचण्डिल एकोऽपर कृष्ण–कूर्च–प्रचय–चुम्बित–वक्षोभागो ज्वलद्भ्यामिव विस्फारिताभ्या नयनाभ्या दिधक्षन्निव सक्ष्वेडम्–"अरे रे ! अपसद !

उत्प्लुत्य=उच्छाल कृत्वा। शितधारम्=तीक्ष्णाग्रम्। प्राहिणोत्=प्रैरयद्। रिपुबाल =शत्रुसूनु । स्तिमित =स्तब्धीभूत । स्वखड्गत्सरुम् =स्वासिमुष्टिम्। दृढम्=अशिथिलम्। भयानकम्=भीतिजनकम्, शल्यम् =भल्लम्, यस्यामेवम्भूतया शक्त्येति विशेष्यम्। हृदयम्=वक्ष । भित्त्वा= विदार्य। परतोऽपि=हृदयद्वितीयपार्श्वेऽपि, पृष्ठेऽपीति यावत्। नि सृता-ग्रया=समुद्गताग्रभागया । विद्ध =क्षत । पिचण्डिल =दीर्घोदर । "बृहत्कुक्षि पिचण्डिल" इत्यमर । कृष्णकूर्चप्रचयेन=कालवालसमूहेन, चुम्बित =स्पृष्ट, वक्षोभागो यस्य स । ज्वलद्भ्यामिव=वह्निमुद्गिर-द्भ्यामिव। दिधक्षन्निव=दग्धुमभिलषन्निव। सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम्।

हो ? तुम्हारे भोले-भाले मुखमण्डल को देखकर मुझे दया आती है, और मैं क्रूरता नहीं करना चाहता।'

शिवाजी यह कह ही रहे थे कि चाँद खाँ के लडके ने सहसा उछल कर अपनी तेज धार वाली तलवार उनके सिर पर चला दी। शिवाजी ने स्तब्ध होकर, उछल कर, एक तरफ खडे होते हुए, अपनी तलवार की मूँठ को मजबूती से पकडते हुए देखा कि उनके शत्रु को भयानक अग्रभाग वाली एक बर्छी ने, छाती चीर कर, बुरी तरह बीध कर, धराशायी कर दिया है, और उस बर्छी की नोक (शत्रु की छाती चीर कर उसके शरीर के) दूसरी ओर भी निकल आई है। तब तक उन्होने (शिवाजी ने) देखा कि एक दूसरे, बडी तोंद वाले, अपनी काली दाढी के बालो द्वारा चुम्बित वक्षस्थल वाले (अर्थात् जिसकी काली दाढी छाती तक लटक रही थी ऐसे), जलते हुए से, विस्फा-

गास्तिखान-पुत्र-हस्तेनैव ते निधन स्थिरीकृत धात्रेति प्रकटमव-लोकयन्तु सर्वे" इति कथयन् शक्तिमुदतूतुलत्। तच्छक्ति छेत्तु खङ्ग सज्जीकुर्वन्नेव च केनापि भूमौ निपात्य च्छुरिका-विदार्यमाण वेपमानावयव शत्रुमपश्यत्।

एवमुत्थित च विघ्न-हर्तार शत्रु-शोणित-शोणीकृत-करद्वयम् इन्द्रगोप-द्युति-द्योतित-बिन्दु-वृन्दाच्छादित-वारवाण निपुणमवलोक्य "रघुवीर" इति पर्य्यचेष्ट।

ततश्च "साधु रघुवीर! साधु, न विस्मरिष्यामि ते वीरताकार्य-मिदम्"—इति व्याहृत्य प्रणमत पृष्ठ स्पृष्ट्वा पुनरग्रतो याव-

---

उदतूतुलत् = उदस्थापयत्। छेत्तुम् = द्विधा कर्तुम्। सज्जीकुर्वन् = सन्नह्यन्। शिववीर इति कर्त्ता। छुरिकया = असिधेन्वा, विदार्यमाण = स्फार्यमाण, वेप-मानावयवम् = कम्पमानगात्रम्।

विघ्नहर्त्तारम् = प्रत्यूहवारकम्। शत्रुशोणितशोणीकृतकरद्वयम् = रिपुलोहितरक्तीकृतहस्तयुगलम्। इन्द्र, गोपा = रक्षको यस्य स, इन्द्रगोप = वर्षाकालिको रक्त कीटविशेष, तद्द्युतिद्योतितै = तत्कान्तिभासितै, बिन्दु-वृन्दै = पृषद्व्रजै। आच्छादितम् = प्रावृतम्, वारवाणम् = कवचो यस्य तम्। निपुणम् = विचारपूर्वकम्। पर्यचेष्ट = परिचितवान्।

ग्नि नेत्रो मे उन्हें (शिवाजी को) भस्म कर देने की इच्छा रखने वाले यवन ने शेर की तरह गरजते हुए, 'अरे कम्बख्त तेरी मौत खुदा ने शाइस्ता खाँ के लड़के के हाथो ही लिखी है, इसे सब लोग जाहिर देख लें', यह कहते हुए, बर्छी तान ली। उस बर्छी को काटने के लिये तलवार सँभालते हुए ही शिवाजी ने, किसी के द्वारा पृथ्वी पर लटक कर छुरे से फाड़े जा रहे और काँपते हुए अगो वाले अपने शत्रु को देखा।

अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को दूर करने वाले योद्धा के उठकर खड़े होने पर, उसके शत्रु (यवन) के रक्त से रञ्जित दोनो हाथ और बीरबहूटियो की कान्ति को प्रकट कर रहे रक्त बिन्दुओ के समूह से व्याप्त कवच को अच्छी प्रकार देखकर शिवाजी ने पहचान लिया कि वह रघुवीर है।

तदनन्तर, 'शाबाश, रघुवीर! शाबाश! मैं तुम्हारे इस वीरता के कार्य

जिजगमिषति, तावदकस्मादट्टालिकातो भटाना विंशतिरिव सोत्फाल शिवस्य परित समापतत्।

शिवस्तु चन्द्रहास-चालने अद्वितीय इति झटिति केषाञ्चिदविहितोत्फालानामस्पृष्टतलाना गगन एवोदर सविदरमकार्षीत्। परेषा परिपत्योत्तिष्ठासतामेव शिरोधरामशिरोधरा व्यधित। अन्येषा मेदोमास-पिच्छिल-कर्दम-चलितान् चरणानसञ्चरणानकृत, इतरेषा च खड्गोत्क्षेपणोत्क्षिप्तान् करान् निजासि-वृक्ण-बाहुमूलानुदक्षैप्सीत्।

जिगमिषति = गन्तुमिच्छति। विंशतिरिव = प्रायो विंशतिसङ्ख्याका। अपरिगणितत्वादिव। सोत्फालम् = सकूर्दनम्।

चन्द्रहासचालने = असिमारणे। अस्पृष्टतलानाम् = भूतलमनुपेयुषाम्। गगन एव = नमस्येव। विदरम् = विदीर्णम्। परिपत्य = ऊर्ध्वाद् भूमिमागत्य। उत्तिष्ठासताम् = उत्थातुमिच्छताम्। शिरोधराम् = ग्रीवाम्। अशिरोधराम् = शिरोधारणकर्मरहिताम्, खण्डितकण्ठामिति यावत्। व्यधित = अकार्षीत्। मेदोमासपिच्छिले कर्दमे चलितान् = स्खलितान्। चरणान् = पद, "पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमर। असञ्चरणान् = गन्तुमनर्हान्। खड्गोत्क्षेपणाय = करवालसञ्चालनाय, उत्क्षिप्तान् = उत्थापितान्। निजासिना, वृक्णम् = खण्डितम्, बाहुमूल येषा तान्। उदक्षैप्सीत् = उत्क्षिप्तवान्।

को कभी नही भूलूँगा', इतना कह कर शिवाजी ने प्रणाम कर रहे रघुवीर की पीठ का स्पर्श कर पुन ज्यो ही आगे बढ़ना चाहा, तब तक एकाएक लगभग बीस सैनिको ने अट्टालिका से कूद कर उन्हें चारो ओर से घेर लिया।

शिवाजी तलवार चलाने मे अप्रतिम थे। अत उन्होने शीघ्रता से कई ऐसे यवन सैनिको के, जो अभी कूदे भी नही थे, और पृथ्वी का स्पर्श भी नही कर सकते थे, उनके पेट आकाश मे ही चीर डाले, कूद कर उठने की चेष्टा कर रहे अन्य यवन सैनिको की शिरोधरा (गर्दन) को अशिरोधरा (शिर से रहित) बना दिया, कुछ अन्य यवन सैनिको के मज्जा और मास से पिच्छिल कीचड मे चलने वाले चरणो को चलने फिरने के अयोग्य कर दिया, और अन्य यवन सैनिको के तलवार चलाने के लिए उठे हुए हाथो को अपनी तलवार से

क्रमतश्च रघुवीरोऽपि द्वित्रानपातयन् । तस्मिन् समिद्धक्रोधा पञ्चषा युगपदेव परित समापतन् यवन-भटा । त चाभिमन्युमिव महारथै-राक्रान्तमालोक्य सगर्जन चन्द्रहासचक्रेणेव समावृत समापतत् शिववीर । चन्द्रहास-चालन-चातुरी-महिम्ना च खड्गेनैव तेषा-माघातान् प्रतिरुन्धन्, तेषु वहून् यम-सदनमनैषीत् । तावदन्येऽपि महाराष्ट्रा परित श्येना इवाऽभिपत्य काकोलाऽनिवातिलोलास्तान् दोला-योग्यानकार्षु । एव हतेषु वहुषु, परेषु पतितेषु, आर्तनादेन प्रासाद ध्वनयत्सु, उपद्रव प्रशशाम । पुनरग्रेऽवरोधमवरोद्धु प्रचचाल

अपातयत्=अपोथयत् । तस्मिन्=रघुवीरे । समिद्धक्रोधा =विवृद्धकोपा । अभिमन्युमिव=उत्तरागर्भजमर्जुनसूनुमिवेत्युपमा । महारथै =अतिवलै । य एकल एव हस्त्यश्वरथपादातैरनेकसह्व्यैर्योद्धु शक्नोति स महारथ इति पारि-भाषिका । चन्द्रहासचक्रेणेव=करवालसहस्रेणेव । चन्द्रहासचालने या चातुरी=कुशलता । तन्महिम्ना=तत्प्रभावेण । श्येना इव=पक्षिमारका इवेत्युपमा । काकोलान्=कृष्णकाकान् । 'डोम कौआ" इति हिन्दी । अति-लोलान्=परमचञ्चलान् । दोलाया =शिबिकाया, "डोली" इति हिन्दी, योग्यान् । स्वयचलितुमसमर्थत्वादिति भाव । आर्तनाद =पीडिताना क्रन्दन-

कन्धे पर से ही काट डाला । रघुवीर सिह ने भी दो-तीन यवनो को एक-एक करके क्रम से गिरा दिया । पाँच-छ अत्यन्त क्रुद्ध यवन सैनिक उसके ऊपर चारो ओर से एक साथ ही टूट पडे । रघुवीर को महारथियो से घिरे हुए अभिमन्यु की भाँति यवन सैनिको से घिरा हुआ देख कर, गरजते हुए तलवारो के समूह से घिरे हुए से शिवाजी कूद पडे, और उन्होने तलवार चलाने की अपनी निपुणता की महिमा से उन यवन सैनिको के आघातो को अपनी तलवार से ही रोकते हुए उनमे से बहुतो को यमराज के घर भेज दिया । तब तक अन्य मराठे सैनिक भी चारो ओर से बाज की तरह झपट पडे, और उन्होने काकोल (डोम कौओ) की भाँति अति चञ्चल यवन सैनिको को डोली मे चढ कर चलने योग्य कर दिया । इस प्रकार बहुत से यवन सैनिको के मार डाले जाने और अन्य यवन सैनिको के गिर कर करुण चीत्कार से महल को गुँजा देने के बाद उपद्रव शान्त

ध्वनि । महाराष्ट्रमण्डलीमण्डन । तत्र रुद्धान्यरराणि पादाघातै प्रास-निपातैश्च भित्त्वा, "हर हर महादेव" इति गर्ज्जनैरन्तर्निविश्याऽपश्यत्–यद् गवाक्षिकान्त सर्वा स्त्रिय पूर्वमुत्तार्य पश्चात् सेनानीरप्युत्तरतीति। शिवराजस्यैकेन चरेण खड्ग क्षिप्त। तस्य च प्रसारित–करस्याऽङ्गुलि-द्वयमेव च्छिन्नम्, तावत् सोत्फालमन्धकार–महोदधौ निमग्न ।

इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्ती-त्यालोक्य व्यर्थहत्या शिवेन निवारिता। "विजित सनातनधर्मेण, विजित महाराष्ट्रराजेन" इति महानभूज्जयध्वनि ।

"सम्प्रति साधनीयम्, पलायित शास्तिखानो नाऽऽयास्यति सम्मुखमिति क्षिप्र सिंहदुर्ग आसादनीय "–इति शिवेनाऽऽज्ञप्तास्त्यक्त-

---

उपद्रव =हिंसादिरूप , अवरोधम्=अन्त पुरम् । महाराष्ट्रमण्डलीमण्डनः= मरहट्टसमुदायभूषण । अरराणि=कपाटानि । "कपाटमरर तुल्ये" इत्यमर । प्रासनिपातै =भल्लपातनै । गवाक्षिकात =वातायनिकात । स्त्रिय = नारी । चरेण=दूतेन । तस्य=सेनापते शास्तिखानस्य। सोत्फालम्= सकूर्दनम् । अन्धकारमहोदधौ=तमोवारिधौ । दानवा =दनुतनं इवेनोपमा । व्यर्थहत्या=अनावश्यकमारणम् । जयध्वनि =जय

साधितम्=विहितम् । साधनीयम्=कार्यम् । आसादनीय

हो गया, और मराठो के दल के शृगार शिवाजी हरम को घेरने बढे । वहाँ बन्द किवाडो को पैरो तथा भालो के प्रहार से तो महादेव' की गर्जना करते हुए भीतर प्रवेश कर शिवाजी ने देख।

रुधिराऽऽरक्त-वसना, प्रासाद-नागदन्तिकावलम्बितैरेव बहुभिर्वसनै-र्वेष्टिता, कतिचन प्रत्यर्थि-परिचारक-वसनपट्टिका-शस्त्रै रालोचकाना यवन-भृत्य-भ्रममुत्पादयन्त, निर्भया सर्वेऽपि घोरान्धकाराया यामिन्या प्रचलिता । निर्विघ्न पुण्यनगराद् बहिरागत्य, यथासङ्केत-माक्रमणेन विजित-बाह्य-सेना-सन्निवेश सम्यगुन्मुद्रित-सर्वगोपुर सस्था-पित-निज-यामिक-द्वार-रक्षक स्वर्णदेव-गौरसिंहाधिष्ठित बल साक्षात्-कुर्वन्त, गव्यूति यावदन्धतमस एवोच्चावच पाणिन्धमममध्वान व्यतीत्य,

---

त्यक्तानि=दूरीकृतानि, रुधिरारक्तानि=लोहिताप्लुतानि, वसनानि यैस्ते । प्रासादस्य=हर्म्यस्य, नागदन्तिकासु=कीलिकासु, अवलम्बितै=स्थापितै, वेष्टिता =परिहितवसना, प्रत्यर्थिन =शत्रो, परिचारकाणाम् =भृत्यानाम्, वसनपट्टिकाशस्त्रै । आलोचकानाम् =द्रष्टृणाम् । यवनभृत्यभ्रमम् = म्लेच्छ-परिचारकभ्रान्तिम् । यामिन्याम् =रात्रौ । निर्विघ्नम् =निष्प्रत्यूहम् । विजितबाह्यसेनासन्निवेशम् =स्वायत्तीकृतबहिर्गतबलशिविरम् । उन्मुद्रित-सर्वगोपुरम् =उद्घाटितनिखिलपुरद्वारम् । बलम् =सेनाम् । अन्धतमसे = गाढान्धकारे । उच्चावचम् =निम्नोन्नतम् । पाणयो ध्मायन्ते सर्पाद्यपनोदाय

अत शीघ्र ही सिंहदुर्ग पहुँच जाना चाहिए" इस प्रकार शिवाजी की आज्ञा पाकर योद्धाओ ने अपने रक्तरञ्जित वस्त्रो को उतार कर, महल की खूँटियो पर टँगे हुए अनेक वस्त्रो को लपेट (पहन) लिया, कुछ योद्धा शाइस्ता खाँ के परि-चारको के वस्त्रो, कमरबन्दो और शस्त्रो को धारण कर दर्शको मे यवनो के सेवक होने का भ्रम पैदा करते हुए निर्भीक होकर घोर अन्धकारवाली रात्रि मे चल दिए, और बिना किसी विघ्न के पूना नगर से बाहर आकर स्वर्णदेव तथा गौर-सिंह द्वारा सरक्षित सेना से मिले । स्वर्णदेव गौरसिंह की सेनाओ ने पूर्वनिश्चित सकेत के अनुसार ही आक्रमण कर शाइस्ता खाँ की बाहरी (नगर से बाहर तैनात) सेना के शिविर पर धावा बोलकर उसे जीत लिया था, और पूना नगर के सारे बाहरी दरवाजे खोल रखे थे, और उन दरवाजो पर अपने ही पहरेदार तथा दरबान नियुक्त कर दिए थे । तदनन्तर वे मराठा योद्धा दो कोस तक घने

ध्वनि । महाराष्ट्रमण्डलीमण्डन । तत्र रुद्धान्यरराणि पादाघातै प्रासनिपातैश्च भित्त्वा, "हर हर महादेव" इति गर्जनैरन्तर्निविश्याऽपश्यत्–यद् गवाक्षिकान्त सर्वा स्त्रिय पूर्वमुत्तार्य पश्चात् सेनानीरप्युत्तरतीति। शिवराजस्यैकेन चरेण खड्ग क्षिप्त । तस्य च प्रसारित–करस्याऽङ्गुलिद्वयमेव च्छिन्नम्, तावत् सोत्फालमन्धकार–महोदधौ निमग्न ।

इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्तीत्यालोक्य व्यर्थहत्या शिवेन निवारिता । "विजित सनातनधर्मेण, विजित महाराष्ट्रराजेन" इति महानभूज्जयध्वनि ।

"सम्प्रति साधनीयम्, पलायित शास्तिखानो नाऽऽयास्यति सम्मुखमिति क्षिप्र सिंहदुर्ग आसादनीय "–इति शिवेनाऽऽज्ञप्तास्त्यक्त–

उपद्रव =हिंसादिरूप , अवरोधम्=अन्त पुरम् । महाराष्ट्रमण्डलीमण्डनः= मरहट्टसमुदायभूषण । अरराणि=कपाटानि । "कपाटमरर तुल्ये" इत्यमर । प्रासनिपातै =भल्लपातनै । गवाक्षिकात =वातायनिकात । स्त्रिय = नारी । चरेण=दूतेन । तस्य=सेनापते शास्तिखानस्य । सोत्फालम्= सकूर्दनम् । अन्धकारमहोदधौ=तमोवारिधौ । दानवा =दनुतनया राक्षसा । इवेनोपमा । व्यर्थहत्या=अनावश्यकमारणम् । जयध्वनि =जयशब्द ।

साधितम्=विहितम् । साधनीयम्=कार्यम् । आसादनीय =प्राप्तव्य ,

हो गया, और मराठो के दल के शृंगार शिवाजी हरम को घेरने के लिए आगे बढे । वहाँ बन्द किवाडो को पैरो तथा भालो के प्रहार से तोडकर 'हर हर महादेव' की गर्जना करते हुए भीतर प्रवेश कर शिवाजी ने देखा कि पहले सभी स्त्रियो को खिडकी से उतार कर बाद मे उसी खिडकी से स्वय सेनापति शाइस्ता खाँ भी उतर रहा है। शिवाजी के एक गुप्तचर ने तलवार फेंककर मारी । शाइस्ता खाँ के हाथ फैले हुए थे उसकी दो उँगलियाँ ही कटी, तब तक वह कूद कर अन्धकार के समुद्र मे लीन हो गया ।

इधर शिवाजी ने यह देख कर कि मराठे यवनो को उसी प्रकार मार रहे है, जैसे दानव मनुष्यो को मारते हैं, निरर्थक हिंसा रोक दी, और 'सनातन धर्म की विजय हुई ! शिवाजी की विजय हुई !' का जयघोष होने लगा ।

"अब चलना चाहिये, शाइस्ता खाँ भाग गया, अब सामने नही आयेगा,

रुधिराऽऽरक्त–वसना , प्रासाद–नागदन्तिकावलम्बितैरेव वहुभिर्वसनै-र्वेष्टिता , कतिचन प्रत्यर्थि-परिचारक-वसनपट्टिका-शस्त्रै रालोचकाना यवन-भृत्य-भ्रममुत्पादयन्त , निर्भया सर्वेऽपि घोरान्धकाराया यामिन्या प्रचलिता । निर्विघ्न पुण्यनगराद् वहिरागत्य, यथासङ्केत-माक्रमणेन विजित-वाह्य-सेना-सन्निवेश सम्यगुन्मुद्रित-सर्वगोपुर सस्था-पित-निज-यामिक-द्वार-रक्षक स्वर्णदेव-गौरसिंहाधिष्ठित वल साक्षात्-कुर्वन्त , गव्यूति यावदन्धतमस एवोच्चावच पाणिन्घमम्ध्वान व्यतीत्य,

---

त्यक्तानि=दूरीकृतानि, रुधिरारक्तानि=लोहिताप्लुतानि, वसनानि यैस्ते । प्रासादस्य=हर्म्यस्य, नागदन्तिकासु=कीलिकासु, अवलम्बितै =स्थापितै , वेष्टिता =परिहितवसना , प्रत्यर्थिन =शत्रो , परिचारकाणाम् =भृत्यानाम्, वसनपट्टिकाशस्त्रै । आलोचकानाम् = द्रष्टृणाम् । यवनभृत्यभ्रमम् = म्लेच्छ-परिचारकभ्रान्तिम् । यामिन्याम् = रात्रौ । निर्विघ्नम् = निष्प्रत्यूहम् । विजितवाह्यसेनासन्निवेशम् = स्वायत्तीकृतवहिर्गतवलशिविरम् । उन्मुद्रित-सर्वगोपुरम् = उद्घाटितनिखिलपुरद्वारम् । वलम् = सेनाम् । अन्धतमसे = गाढान्धकारे । उच्चावचम् = निम्नोन्नतम् । पाणयो ध्मायन्ते सर्पाद्यपनोदाय

अत शीघ्र ही सिंहदुर्ग पहुँच जाना चाहिए” इस प्रकार शिवाजी की आज्ञा पाकर योद्धाओ ने अपने रक्तरञ्जित वस्त्रो को उतार कर, महल की खूटियो पर टँगे हुए अनेक वस्त्रो को लपेट (पहन) लिया, कुछ योद्धा शाइस्ता खाँ के परि-चारको के वस्त्रो, कमरवन्दो और शस्त्रो को धारण कर दशको मे यवनो के सेवक होने का भ्रम पैदा करते हुए निर्भीक होकर घोर अन्धकारवाली रात्रि मे चल दिए, और विना किसी विघ्न के पूना नगर से वाहर आकर स्वर्णदेव तथा गौर-सिंह द्वारा सरक्षित सेना से मिले । स्वर्णदेव गौरसिंह की सेनाओ ने पूर्वनिश्चित सकेत के अनुसार ही आक्रमण कर शाइस्ता खाँ की वाहरी (नगर से वाहर तैनात) सेना के शिविर पर धावा वोलकर उसे जीत लिया था, और पूना नगर के सारे वाहरी दरवाजे खोल रखे थे, और उन दरवाजो पर अपने ही पहरेदार तथा दरवान नियुक्त कर दिए थे । तदनन्तर वे मराठा योद्धा दो कोस तक घने

तत शतशो दीपान् सज्वल्य, पुण्यनगरस्थै कान्दिशीकै पराजित-प्रत्यर्थिभि प्रजाभिश्च वीक्ष्यमाणा कुशलेन सिंहदुर्गमारुरुहु ।

इति सप्तमो निश्वासः

यस्मिस्तम्, पाणिन्धमम् । अध्वानम् = मार्गम् । पाणिन्धमपदार्थकुक्षौ नाध्व-प्रवेशो योगमात्राथप्रवृत्तिनिमित्तकत्वात् । कान्दिशीकै = भीतै । पराजितै = परास्तै, प्रत्यर्थिभि = शत्रुभि । प्रजाभि, सानन्दाभिरति शेष । वीक्ष्य-माणा = दृश्यमाना । कुशलेन = क्षेमेण । आरुरुहु = आरूढवन्त ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या सप्तमनिश्वासविवरणम्

अधेरे मे ही टटोल-टटोल कर चलते हुए ऊँचे-नीचे रास्ते को पार कर, पूना नगर मे स्थित युद्ध से भागे हुए, हारे हुए शत्रुओ द्वारा सैकडो दीपक जलाकर और पूना की प्रजा द्वारा देखे जाते हुए सकुशल सिह दुर्ग पर चढ गये ।

शिवराजविजय का सातवां निश्वास समाप्त

॥ श्री ॥

अष्टमो निश्वास

"वेधा द्वेधा भ्रम चक्रे कान्तासु कनकेषु च ।
तासु तेष्वप्यनासक्त साक्षाद् भर्गो नराकृति ॥"

—कुवलयानन्दे

तोरणदुर्गे तु रसनारी काभिश्चन मूर्छितप्रायाभिरुत्थाप्य समानीताभि पुन प्राप्तसञ्ज्ञाभि चेटीभि सहिता, मञ्चासन्दी-पल्यङ्क-

---

अष्टमेऽवरङ्गजीवतनयाया रसनार्या श्रीशिववीरेऽनुराग विवाहेच्छा च वर्णयिष्यति कवि, तत्र च नायकोदात्तत्वरक्षणाय सत्यमेव श्रीशिववीरानङ्गीकरण प्रदर्शयिष्यति, तदेतदुपक्षेप्तु कुवलयानन्दीय पद्यमुपक्षिपति—वेधा इत्यादि । वेधा =जगन्निर्माता । द्वेधा=द्वाभ्या प्रकाराभ्याम् । भ्रम चक्रे=भ्रान्तिमुत्पादयामास । कान्तासु=आपाततो रमणीयासु रमणीषु । कनकेषु=धत्तूरविषायमाणेषु हिरण्येषु च । तासु=रमणीषु । तेषु=कनकेषु । अपि समुच्चये । अनासक्त =असलग्न । नराकृति =मानवदेहधारी । साक्षात्=प्रत्यक्षता गत, भर्जयति कामादीनिति भर्ग =शङ्कर । नोभयोरणुतरोपि भेद आकृतिविभिन्नत्वातिरिक्त इति तत्त्वम् । रूपकालङ्कार ।

तोरणदुर्गे तु रसनारी न वेत्ति स्मेति सम्बन्ध । मूर्छितप्रायाभि =प्रायो गतचैतन्याभि । प्राप्तसञ्ज्ञाभि =लब्धचैतन्याभि । मञ्च =लघुसुखा-

---

विधाता ने दो प्रकार से भ्रम की रचना की है, एक तो सुन्दरियो मे तथा दूसरे सुवर्ण मे । इन दोनो मे अनासक्त रहनेवाला व्यक्ति मनुष्य के रूप मे शरीरधारी साक्षात् शकर ही है ।

तोरणदुर्ग मे लगभग मूर्च्छित हो जाने पर उठाकर लाई गई और फिर होश मे आ गई अपनी कुछ परिचारिकाओ सहित राजमहल की मचिया

वितान-तूलिकोपबर्हादि-सकल-परिच्छद-परिष्कृतायाम् अतिरम्य-हर्म्याट्टालिकायामवरुद्धा 'क्वाऽऽयाता ? केन सयता ? कि भावि ?' इति किमपि न वेत्ति स्म । तत्परिचर्य्यायामितरा महाराष्ट्र-देशीया अपि दास्य आसन्, किन्तु ता अपि रसनार्या बहुश प्रलोभिना अपि सप्रश्रय पृष्टा अपि तेषु तेषु विषयेषु वाचमेव न यच्छन्ति स्म ।

रसनारी हि नित्य प्रातर्निर्मल कोष्ण यूथिका-मल्लिका-चन्दना-ऽऽदिवासितम् आवीय स्थापित स्नानीय पानीयम्, कर्पूरकाश्मीर-

---

सनिका, "मचिया" इति हिन्दी । आसन्दी = "कुर्सी" इति ख्याता, पल्यङ्क = पर्यङ्क, वितानम् = उल्लोच, "चन्दोवा" इति हिन्दी । तूलिका = तूल-विष्टरम्, उपबर्ह = उपधानम्, एवमादिभि सकलपरिच्छदै = समस्तावश्यक-वस्तुजातै, 'परिच्छदो नृपार्हेऽर्थे' इत्यमर । परिष्कृतायाम् = भूषिता-याम् । अतिरम्यायाम् = अतिहृद्यायाम् । हर्म्याट्टालिकायाम् = प्रासादाट्टे । अवरुद्धा = निगृहीता । सयता = बद्धा, वन्दीकृतेति यावत् । तत्परिचर्य्या-याम् = तत्सेवायाम् । दास्य = भृत्या । प्रलोभिता = गर्द्धिता । सप्रश्रयम् = सविनयम् । तेषु विषयेषु = प्रश्नगोचरेषु । यच्छन्ति स्म = ददति स्म । मौनिन्योऽवर्तन्तेति भाव ।

निर्मलम् = पवित्रम्, कोष्णम् = ईषदुष्णम् । शिरोऽतिरिक्तस्य शरीरस्य पावनाय कोष्णमेव वारि भवत्युपयुक्तम्, रोमच्छिद्रप्रविष्टमलापकर्षकत्वात् । शिरसो धावन तु शीतलवारिणेति वैद्यकग्रन्थेषु स्फुटम् । यूथिकादिभि वासितम्

कुर्सी, पलँग, चँदोवा, तोशक, रजाई, मसनद इत्यादि समस्त वस्तुओ से सजाई गई अत्यन्त रमणीक अट्टालिका मे बन्दी बनाकर रखी गई रोशन आरा, वह कहाँ आ गई है ? उसे किसने बन्दी बनाया है ? और अब क्या होने वाला है ? इत्यादि कुछ भी नही जानती थी । उसकी सेवा मे कुछ अन्य महाराष्ट्रदेश की दासियाँ थी, परन्तु वे भी उसके द्वारा अनेक बार प्रलोभन देने तथा विनम्रतापूर्वक पूछने पर भी उन विषयो का उत्तर ही नही देती थी ।

रोशन आरा प्रात काल निमल, कुछ उष्ण, जूही, चमेली चन्दन इत्यादि से सुवासितकर स्नान के लिये लाकर रखा गया जल, कपूर, केसर, तथा चन्दन

पाटीर-क्षोद-रचितमुद्वर्त्तनं च रजत-पात्रेषु विन्यस्तम्, पटवास-वासितानि सुसूक्ष्माणि सौवर्ण-प्रान्तानि नानावर्ण-कौशेय-कुसुम-रचना-विचित्रितानि वासांसि प्रसाधनी दर्पण धूप सिन्दूर कुसुममालाः अङ्गराग चूडाबन्ध च प्रस्तुतमेवाऽवलोकयति स्म। विविधासु दासीषु सतैलाभ्यङ्ग मोत्सादनमर्दन सकेशमार्जन च स्नानसेवा विहितवतीषु, धारितकौशेया द्राक्षा-द्रव-दाडिम्ब-दुग्धादिमहामधुर-महोपस्कारमयीम्

=सुरभीकृतम्। आनीय=सम्प्रापय्य। स्थापितम्=निहितम्। स्नानीयम् =स्नानयोग्यम्। कर्पूर =हिमवालुका, काश्मीरम्=कश्मीरदेशोद्भव केसरम्।

"सहोदरा कुङ्कुमकेसराणा भवन्ति नून कविताविलासा।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषा यदन्यत्र मया प्ररोह ॥"

इति बिह्लण। पाटीरम्=चन्दनम्। एतेषा क्षोदेन=चूर्णेन, रचितम् =निर्मितम्। उद्वर्त्तनम्=देहनिर्मलीकरणद्रव्यम्, "उवटन" इति हिन्दी। रजतपात्रेषु=रौप्यभाजनेषु। विन्यस्तम्=स्थापितम्। पटवासै =वसनवासकै कुङ्कुमादिचूर्णविशेषै। वासितानि=कृतसुगन्धीनि। सौवर्णप्रान्तानि =सुवर्णविकारतन्तुनिर्मितदशानि। "सुनहली जरी की किनारी" इति हिन्दी। नानावर्णानाम्=अनेकरङ्गाणाम्, कौशेयकुसुमानाम्=पट्टसूत्ररचितपुष्पाणाम्, रचनया, विचित्राणि=दर्शनीयानि, प्रसाधनीम्=कङ्कतिकाम्, "कघी" इति हिन्दी। दर्पणम्=आदर्शम्। धूपम्=केशवासकम्। अङ्गरागम्=शरीरानुलेपनद्रव्यम्। चूडाबन्धनम्=जूटिकाबन्धनम्। सतैलाभ्यङ्गम्=तैलमर्दनपूर्वकम्। सोत्सादनमर्दनम्=सोद्वर्त्तनलेपनम्। "उद्वर्त्तनोत्सादने द्वे" इत्यमर। सकेशमार्जनम्=सकचक्षालनम्।

धारितकौशेया =परिहितपट्टवस्त्रा। द्राक्षाद्रव =गोस्तनीरस, दाडिम्बम्

के चूर्ण से बनाया गया और चाँदी के बर्तन मे रखा गया उबटन, इत्र से सुगन्धित, अत्यन्त सूक्ष्म, सुनहले किनारे वाले, विविध रग के रेशमी फूलो की कढाई से चित्रित वस्त्र, कघी, दर्पण, धूप, सिन्दूर, पुष्पमालाएँ, अङ्गराग तथा चूडाबन्ध आदि प्रस्तुत ही पाती थी। अनेक दासियाँ तेल की मालिश करके, उबटन मलकर और बालो को साफ कर उसे नहलाती थी। तदनन्तर

आहार-सामग्रीमुपलभते स्म। क्षणे क्षणे जातीपत्र-केसर-कर्पूर-लवङ्गैला-सुवासितानि ताम्बूलानि, प्रहरे प्रहरे च पाटल-सुगन्धि-ताम्रक-पिष्टकाऽङ्गारक-परिपूर्ण-साच्छादनक-हाटकामत्रिकाऽलङ्कृतोर्ध्वभाग केतक-तोय-पूरित-पय पात्र-परि-लसित-मूल काञ्चन-चञ्चू-चमत्कृत-प्रलम्ब-नलिका-सवलित धूमपानयन्त्रम्,

=दाडिमीफलम्, दुग्घम्=पय, एवमादिका, महामधुरा=अतिमिष्टा, महोपस्कारमयी=विशिष्टोपकरणयुता, ताम्। आहारसामग्रीम्=भोजनपदार्थम्। जातीपत्रम्=जातीदलम्, केसर=काश्मीरज, कर्पूर=हिमवालुका, लवङ्गम्=देवकुसुमम्, एला=चन्द्रवाला, आभि सुवासितानि=सुरभीणि। पाटलसुगन्धि=आशुव्रीहिसुरभि, यत् ताम्रकम्="तमाखू" इति ख्यातम्, तस्य पिष्टकस्य="टिकिया" इति ख्यातस्य, अङ्गारकेण='अङ्गार' इति हिन्दीप्रसिद्धेन। परिपूर्णया=युतया, साच्छादनिकया=सप्रावरणिकया, "ढकी हुई" इति हिन्दी। हाटकामत्रिकया=सुवर्णनिर्मितधूमपानसाधनिकया, 'सोने की चिलम" इति हिन्दी। अलङ्कृत=भूषित, ऊर्ध्वभागो यस्य तत्। केतकतोयेन="केवडा" इति प्रसिद्धपुष्पवासितेन वारिणा, पूरितेन=भरितेन, पय पात्रेण=जलपात्रेण, परिलसितम्=अतिशोभितम्, मूल यस्य तत्। काञ्चनचञ्च्वा=सुवर्णनिर्मिताग्रभागेन, चमत्कृतया=सुसज्जितया, प्रलम्बया=सुदीर्घया, नलिकया=धूमाकर्षिकया, "हुक्के की नली" इति हिन्दी। सवलितम्=विशिष्टम्। धूमपानयन्त्रम्="हुक्का" इति प्रसिद्धम्।

वह रेशमी वस्त्र पहन कर, अँगूर के रस, अनार, दूध इत्यादि अत्यन्त मधुर विविध पदार्थों से युक्त भोजन सामग्री प्रस्तुत पाती थी। क्षण-क्षण पर जातीपत्र, केसर, कर्पूर, लवङ्ग, इलायची से सुगन्धित ताम्बूल, घडी-घडी पर गुलाब की सुगन्ध वाली तम्बाकू की टिकिया तथा अङ्गारो से भरी, ढक्कन सहित सोने की चिलम से अलङ्कृत ऊर्ध्वभाग वाला, केवडे के जल से पूर्ण जल-पात्र से सुशोभित अधोभाग वाला, सोने के अग्रभागवाली नली के कारण चमकती

सर्वदा च व्यजन-चामर-पतद्ग्राह-हस्ता दास्य इत्यादि सुसज्ज-मेवाऽवलोकयति स्म ।

क एवमाद्रियते ? कस्य कक्षे आपतिता ? कोऽधुनाऽपि मर्यादा न भनक्ति ? इति तया किमपि ज्ञातु न शक्यते स्म ।

पुरुष कोऽपि निकट एव नाऽऽयाति । निज-चेटी-द्वारा कथं कथमपि पृष्टश्च मूक इव न किमपि वक्ति, इति विचित्र चरित्र पश्यन्ती 'विलक्षणमिद कारागारम्, अलौकिका अत्रत्या मानवा' इति मनस्येव तर्कवितर्कैश्चिर-चिन्ता-निमग्ना अभूत् ।

अथैकदाऽट्टालिकाया पर्यटन्त्या, दक्षिणस्या सुदूर विस्तृताना कानना-

---

व्यजन-चामर-पतद्ग्राहा हस्ते यासा ता । पतद्ग्राह =पतद्ग्रह, "पतद्ग्राह पतद्ग्रह" इत्यमर । "पीकदान" इति हिन्दी । सुसज्जम्=सन्नद्धम् । अवलोकयति स्म=अपश्यत् ।

आद्रियते=आदर करोति । कक्षे=बाहुमूले । सर्वविधाधिकार इति यावत् । मर्यादाम्=सीमानम्, परदारदूषणरूपाम् । न भनक्ति=न त्रोटयति । मूक इव=वाक्शक्तिशून्य इव । विलक्षणम्=विचित्रम्, अलौकिका =दिव्या । असाधारणा इति यावत् ।

'अथैकदाऽट्टालिकाया पर्यटन्त्या बहूना पादध्वनिरिवाश्रावि' इति सम्बन्धः ।

हुई लम्बी निगाली (नली) से युक्त हुक्का तथा हर समय पखा, चामर तथा पीकदान लिए हुए दासियाँ, सब तैयार ही देखती (पाती) थी ।

इस प्रकार मेरा सम्मान कौन कर रहा है ? मैं किसके कक्ष मे पहुँच गई हूँ ? वह कौन जो अब भी मर्यादा को नही तोड रहा है ? इत्यादि कुछ भी वह नही जान सकी थी ।

कोई पुरुष तो उसके पास ही नही जा पाता था, और उसकी दासियो द्वारा किसी प्रकार पूछने पर भी कोई कुछ भी नही बोलता था, मानो सभी मूक हों । यह अद्भुत आचरण देखती हुई, "यह कारागार विलक्षण है, यहाँ के मनुष्य अलौकिक हैं" इस प्रकार मन ही मन तर्क-वितर्क करती हुई रोशनआरा बहुत देर तक चिन्ता मे डूबी रहती थी ।

नाम्, अभ्रंलिहाना शैल-शिखराणाम्, कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य्य-विजित्वराऽतिहरित-वनौषधि-वृन्द-व्याप्तानामुच्चावच-तलाऽन्त-स्रवत्-प्रस्रवण-स्रोतस्समीप-नरीनृत्यमान-मेघनादानुलासि-लास्य-ललितानामुपत्यकानाम्, द्रुमाद् द्रुमम्, शाखात शाखाम्, गण्ड-शैलाद् गण्ड-शैलम्, दन्तकाद् दन्तकम्, पादाच्च पादम्, सपत्र-कम्पनम्, सचञ्चु-चाञ्चल्यम्, सग्रीवाभङ्गम्, सपक्षति-कण्डूयनम्, सतनूरुह-स्फुरणम्, सकूजन च प्रडीनोड्डीन-सण्डीनैरुड्डीय गच्छता कल-

सुदूरम्=अतिविस्तीर्णप्रदेशम्। अभ्रंलिहानाम्=मेघस्पर्शकारिणाम्। अत्युच्चानामिति यावत्। शैलशिखराणाम्=पर्वतशृङ्गाणाम्। कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य-विजित्वरेण=यमुनाम्भोलावण्यविजयकारिणा, अति-हरितेन=अतितरा हरिद्वर्णेन, वनौषधिवृन्देन व्याप्तानाम्, उच्चावच-तलानाम्=निम्नोन्नतभूभागानाम्, अन्त स्रवताम्=प्रवहताम्, प्रस्रवणा-नाम्=निझराणाम्, स्रोतसाम्=प्रवाहाणाम्, समीपे=अन्तिके, नरीनृत्य-मानानाम्=भृश नृत्यताम्, मेघनादानुलासिनाम्=मयूराणाम्, "मेघनादा-नुलास्यपि" इत्यमर। लास्यै =नर्त्तनै, ललितानाम्=मनोहराणाम्। दन्त-कात्=अद्रिकटकात्। "दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे दशनेऽथौषधौ स्त्रियामि"ति। पादात्=प्रत्यन्तपर्वतात्। सपत्र-कम्पनम्=पक्षधूननसहितम्। सचञ्चु-चाञ्चल्यम्=सत्रोटिचापल्यम्। सपक्षतिकण्डूयनम्=सपक्षमूल-खर्जनम्। सतनूरुह-स्फुरणम्=सरोमहर्षम्। सकूजनम्=सशब्दम्। प्रडीनोड्डीन-

तदनन्तर एक बार अटारी पर टहलती हुई, दक्षिण दिशा मे दूर तक फैले हुए जङ्गलो, गगनचुम्बी पर्वतशृङ्गो यमुना के जल के सौन्दय को पराजित करने वाली अत्यन्त हरी भरी जङ्गली औषधियो के समूह से व्याप्त ऊँचे-नीचे धरातलो के वीच बहने वाले झरनो के प्रवाहो के समीप नृत्य कर रहे मयूरो के नर्तन से मनोहर लगनेवाली उपत्यकाओ, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक डाली से दूसरी डाली पर, एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर, एक दन्तक (पहाड के बीच से निकले टेढे पत्थर) से दूसरे दन्तक पर और एक तलहटी से दूसरी तलहटी पर, पङ्खो को हिलाते हुए, चोच चलाते हुए, गर्दन टेढी करते हुए, डैनो को खुजलाते हुए, रोमाञ्चित होते हुए, तथा कूजते हुए, प्रडीन, उड्डीन

विङ्कानाम्, कर्करेटूनाम् किकीदिवीनाम्, कपोतानाम्, कोकानाम्, काकानाम्, कीराणाम्, कौञ्चानाम्, कुरराणा च शोभा पश्यन्त्या अकस्मादश्रावि पादध्वनिरिव बहूनाम्।

झटिति तत आगत्य द्वारोपरिस्थ-गवाक्षाच्चाऽऽलोकितवती—यदेक ईषच्छ्यामल सुन्दरो विधृत-मौक्तिक-माणिक्य-मरकतगुच्छाङ्कितोष्णीष सौवर्ण-सूत्र-रचित-कञ्चुको जाम्बूनद-कौशेय-कुसुम-

सण्डीनै =पक्षिणा गतिविशेषै। "प्रडीनोड्डीनसण्डीनान्येता खगगतिक्रिया" इत्यमर। कलविङ्कानाम् = चटकानाम्। कर्करेटूनाम् = करेटूनाम्। "कर्करेटु करेटु स्यादि"इत्यमर। किकीदिवीनाम् = चाषाणाम्। "अथ चाष किकीदिविरि"त्यमर। कपोतानाम् = पारावतानाम्। कोकानाम् = चक्रवाकाणाम्। काकानाम्=वायसानाम्। कीराणाम्=शुकानाम्। कौञ्चानाम्= चक्रवाकविशेषाणाम्। कुरराणाम् = उत्क्रोशकारिणा पक्षिणाम्। पादध्वनि = चरणशब्द। बहूनामिव = अनेकेषामिव। अदृश्यत्वादनुमेयत्व बहुत्वस्येतीवशब्द।

झटिति=त्वरितम्। द्वारोपरिस्थगवाक्षात्=निर्गममार्गोपरिविद्यमानाद् वातायनात्। ईषत् श्यामल =किञ्चित् कृष्णवर्ण। विधृतम्=शिरसि स्थापितम्, मौक्तिकमाणिक्यमरकतगुच्छै अङ्कितम्, उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, येन स। मौक्तिकम् = हस्त्यादिलब्धमणि। माणिक्यम्=खनिप्राप्तमणि। मरकतस्य मणिविशेषत्वेऽपि ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन पृथगुक्ति। सौवर्णसूत्ररचित-कञ्चुक =हैरण्यतन्तुनिर्मितचोलक। जाम्बूनदै =सुवर्णरचितै, कौशेयै =

और सण्डीन गतियो से उडकर जाते हुए गौरैया, कर्करेटु, नीलकण्ठ, कबूतर, चक्रवाक, काक, शुक, कौञ्च, और कुरर पक्षियो की शोभा देखती हुई रोशन-आरा ने अकस्मात् अनेक व्यक्तियो के आने की पदध्वनि सुनी।

रोशन आरा ने शीघ्रतापूर्वक वहाँ से आकर द्वार की ऊपरवाली खिडकी से देखा कि एक साँवला, सुन्दर, मोती, मानिक और मरकत मणियो के गुच्छो से अलकृत पगडी धारण किए, सुनहले सूत्रो से निर्मित कञ्चुक (कुर्ता)

चित्राऽञ्चित-प्रावार-परिलसित-वामस्कन्धो महार्ह-वज्रक-प्रचया-ऽऽकलितकोशस्थ-चञ्चच्चन्द्रहासाऽवलम्बित-कटि-तटो मरकतमणि-महामाला-लसित-गल-कमनीयो युवाऽऽगच्छतीति । तस्याग्रे पश्चात् पार्श्वयोश्च समागच्छत शतशो भुशुण्डिका-तोमर-पट्टिश-सौवर्ण-दण्ड-कलितकरान् भटान्, अपराश्च च्छत्र-चामर-वेत्र-व्यजन-हस्ता-ननुचरान आलोक्य निश्चितमेष एवाऽध्यक्षो दुर्गस्यैतस्य, एष एव च सम्भोभोति परिवृढोऽस्मल्लुण्ठकगणस्येति मन्यमाना, किञ्चिद् भीतेव, स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त ।

पट्टसूत्ररचितैश्च, कुसुमचित्रै =पुष्पाकृतिनिर्माणै, अञ्चितेन = भूषितेन, प्रावारेण=उत्तरासङ्गेन, "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ" इत्यमर । परिलसित =शोभित, वाम =दक्षेतर, स्कन्धो यस्य स । महार्हवज्रकप्रचयेन=बहुमूल्यहीरकव्रजेन, आकलिते=युते, कोशे=असिधान्याम्, तिष्ठतीति तथाभूतेन, चञ्चता=चमत्कुर्वता, चन्द्रहासेन, अवलम्बितम=आश्रितम्, कटितट यस्य स । मरकत-मणिमहामालमा लसितेन=मण्डितेन, गलेन कमनीय =मनोहर । भुशुण्डिका ="बन्दूक" इति ख्याता, तोमरम्, पट्टिशम्, सौवर्णदण्डा =हैरण्ययष्टय, एभि कलिता. =युक्ता करा येषा तान् । सम्बोभोति=अतिशयेन भवति । परिवृढ =प्रभु । "प्रभौ परिवृढ" । अस्माकम्, कर्मणि षष्ठी, लुण्ठकस्य=चोरयितु, गणस्य=समूहस्य । भीता= भयाक्रान्ता । अन्तिमनिर्णयकर्त्ताऽयाति, किमनुष्ठास्यतीति विचारेण । स्तब्धा=निश्चेष्टा । खिन्ना=खेदाक्रान्ता । क्षुभिता=

धारण किए, सुवर्णसूत्र तथा रेशम से कढे पुष्पाकार बूटो वाली चादर से सुशोभित वाम स्कन्ध वाला बहुमूल्य हीरो से जडी म्यान मे रखी हुई चमचमाती तलवार कमर मे लटकाए हुए, मरकत मणियो की लम्बी माला से सुशोभित कण्ठवाला युवक आ रहा है । उसके आगे-पीछे और दायें-बाये आते हुए, हाथो मे बन्दूक, तोमर, पट्टिश और स्वर्ण दण्ड लिए सैकडो सैनिको तथा छत्र-चामर और पखा लिये नौकरो को देखकर, निश्चय ही यही व्यक्ति इस दुर्ग का अध्यक्ष है, और बहुत सम्भव है कि यही हम लोगो को लूटने वालो

अथ रसनारी स्वोपवेश-देश प्रविश्य स्विन्ना गण्डस्थली यावत् पटान्तेन परिमार्ष्टि, तावत् प्रतिसीरामुत्क्षिप्य झटिति प्रविश्य शिरोनमन-पुर.सरमादराचार विदधदवलोकित स एव वीरवर । इय तम् आदरेङ्गितै प्रत्यर्च्य, तद्वचन-सुधाधारा-पिपासिताभ्यामिव कर्णाभ्या परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव नयनाभ्या चित्रार्पितेवाभूत् । महाराष्ट्रराजस्तु बद्धकरसम्पुट समवर्तत । न च बिन्दुमपि विसर्गमपि

सञ्चलिता । व्याकुलेति भाव । उद्विग्ना=मानसिकोद्वेगवती । समवित्त= अज्ञासीत् ।

स्वोपवेशदेशम्=स्वावासभूमिम् । स्विन्नाम्=चिन्तासञ्जातघर्मजलवतीम् । गण्डस्थलीम्=कपोलपालिम् । परिमार्ष्टि=प्रोञ्छति । प्रतिसीराम्=यवनिकाम् । "प्रतिसीरा यवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा" इत्यमर । उत्क्षिप्य=उत्थाप्य । शिरोनमनपुरस्सरम्=मस्तकनतिपूर्वकम् । आदरेङ्गितै =आदरसूचकचेष्टाभि । तद्वचनसुधाधारापिपासिताभ्यामिव= तदुक्तिपीयूषप्रवाहपानाभिलाषुकाभ्यामिव, उत्प्रेक्षा । परमैकतानताजडीकृताभ्यामिव=अत्यन्तैकाग्रीकृतिनिश्चेष्टीकृताभ्यामिव । "एकतानोऽनन्यवृत्तिरि"-त्यमर । चित्रार्पितेव=चित्रलिखितेव । बद्धकरसम्पुट =कृताञ्जलि ।

बिन्दुमपि विसर्गमपि=उच्चारयितुमनर्हं केवलो बिन्दुरूपोऽनुनासिको

का मुखिया हो, यह समझती हुई रोशन आरा कुछ डर सी गई, और स्तम्भित-सी, उदास सी, व्याकुल सी तथा उद्विग्न सी हो गई।

तदनन्तर रोशन आरा अपने बैठने के कमरे मे जाकर, स्वेदयुक्त कपोलस्थल को पोछ ही रही थी कि चिक हटाकर, शीघ्रता से प्रवेश कर सिर झुकाकर, सम्मान प्रदर्शित करता हुआ वही वीर युवक दिखाई पडा । उसे सम्मान सूचक सकेतो से अभिनन्दित कर, उसकी वाणी रूपी अमृत की धारा के पिपासु कर्णो तथा अत्यन्त एकाग्रता के कारण निश्चेष्ट से हो गए नेत्रो वाली रोशन आरा चित्रलिखित सी हो गई। शिवाजी हाथ जोडे खडे रहे और बिन्दु या विसर्ग

चित्राऽञ्चित-प्रावार-परिलसित-वामस्कन्धो महार्ह-वज्रक-प्रचया-ऽऽकलितकोशस्थ-चञ्चच्चन्द्रहासाऽवलम्बित-कटि-तटो मरकतमणि-महामाला-लसित-गल-कमनीयो युवाऽऽगच्छतीति। तस्याग्रे पश्चात् पार्श्वयोश्च समागच्छत शतशो भुशुण्डिका-तोमर-पट्टिश-सौवर्ण-दण्ड-कलितकरान् भटान्, अपराश्च च्छत्र-चामर-वेत्र-व्यजन-हस्ता-ननुचरान् आलोक्य निश्चितमेष एवाऽध्यक्षो दुर्गस्यैतस्य, एष एव च सम्भोभोति परिवृढोऽस्मल्लुण्ठकगणस्येति मन्यमाना, किञ्चिद् भीतेव, स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त।

पट्टसूत्ररचितैश्च, कुसुमचित्रै =पुष्पाकृतिनिर्माणै, अञ्चितेन = भूषितेन, प्रावारेण=उत्तरासङ्गेन, "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ" इत्यमर। परिलसित =शोभित, वाम =दक्षेतर, स्कन्धो यस्य स। महार्हवज्रकप्रचयेन=बहुमूल्यहीरकव्रजेन, आकलिते=युते, कोशे=असिधान्याम्, तिष्ठतीति तथाभूतेन, चञ्चता=चमत्कुर्वता, चन्द्रहासेन, अवलम्बितम=आश्रितम्, कटितट यस्य स। मरकतमणिमहामालमा लसितेन=मण्डितेन, गलेन कमनीय =मनोहर। भुशुण्डिका="बन्दूक" इति ख्याता, तोमरम्, पट्टिशम्, सौवर्णदण्डा =हैरण्ययष्टय, एभि कलिता॰ =युक्ता करा येषा तान्। सम्भोभोति=अतिशयेन भवति। परिवृढ =प्रभु। "प्रभौ परिवृढ"। अस्माकम्, कर्मणि षष्ठी, लुण्ठकस्य=चोरयितु, गणस्य=समूहस्य। भीता= भयाक्रान्ता। अन्तिमनिर्णयकर्त्ताऽयाति, किमनुष्ठास्यतीति विचारेण। स्तब्धा=निश्चेष्टा। खिन्ना=खेदाक्रान्ता। क्षुभिता=

धारण किए, सुवर्णसूत्र तथा रेशम से कढे पुष्पाकार बूटो वाली चादर से सुशोभित वाम स्कन्ध वाला बहुमूल्य हीरो से जडी म्यान मे रखी हुई चमचमाती तलवार कमर मे लटकाए हुए, मरकत मणियो की लम्बी माला से सुशोभित कण्ठवाला युवक आ रहा है। उसके आगे-पीछे और दायें-बाये आते हुए, हाथो मे बन्दूक, तोमर, पट्टिश और स्वर्ण दण्ड लिए सैकडो सैनिको तथा छत्र-चामर और पखा लिये नौकरो को देखकर, निश्चय ही यही व्यक्ति इस दुर्ग का अध्यक्ष है, और बहुत सम्भव है कि यही हम लोगो को लूटने वालो

अथ रसनारी स्वोपवेश-देश प्रविश्य स्विन्ना गण्डस्थली यावत् पटान्तेन परिमार्ष्टि, तावत् प्रतिसीरामुत्क्षिप्य झटिति प्रविश्य शिरोनमन-पुर.सरमादराचार विदधदवलोकित स एव वीरवर । इय तम् आदरेङ्गितैः प्रत्यर्च्य, तद्वचन-सुधाधारा-पिपासिताभ्यामिव कर्णाभ्या परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव नयनाभ्या चित्रार्पितेवाभूत् । महाराष्ट्रराजस्तु बद्धकरसम्पुट समवर्तत । न च बिन्दुमपि विसर्गमपि

सञ्चलिता । व्याकुलेति भाव । उद्विग्ना=मानसिकोद्वेगवती । समवित्त=अज्ञासीत् ।

स्वोपवेशदेशम्=स्वावासभूमिम् । स्विन्नाम्=चिन्तासञ्जातघर्मजलवतीम् । गण्डस्थलीम्=कपोलपालिम् । परिमार्ष्टि=प्रोञ्छति । प्रतिसीराम्=यवनिकाम् । "प्रतिसीरा यवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा" इत्यमर । उत्क्षिप्य=उत्थाप्य । शिरोनमनपुरस्सरम्=मस्तकनतिपूर्वकम् । आदरेङ्गितै=आदरसूचकचेष्टाभि । तद्वचनसुधाधारापिपासिताभ्यामिव=तदुक्तिपीयूषप्रवाहपानाभिलाषुकाभ्यामिव, उत्प्रेक्षा । परमैकतानताजडीकृताभ्यामिव=अत्यन्तैकाग्रीकृतिनिश्चेष्टीकृताभ्यामिव । "एकतानोऽनन्यवृत्तिरि"-त्यमर । चित्रार्पितेव=चित्रलिखितेव । बद्धकरसम्पुट=कृताञ्जलि ।

बिन्दुमपि विसर्गमपि=उच्चारयितुमनर्हं केवलो बिन्दुरूपोऽनुनासिको

का मुखिया हो, यह समझती हुई रोशन आरा कुछ डर सी गई, और स्तम्भित-सी, उदास सी, व्याकुल सी तथा उद्विग्न सी हो गई ।

तदनन्तर रोशन आरा अपने बैठने के कमरे मे जाकर, स्वेदयुक्त कपोलस्थल को पोछ ही रही थी कि चिक हटाकर, शीघ्रता से प्रवेश कर सिर झुकाकर, सम्मान प्रदर्शित करता हुआ वही वीर युवक दिखाई पडा । उसे सम्मान सूचक सकेतो से अभिनन्दित कर, उसकी वाणी रूपी अमृत की धारा के पिपासु कर्णो तथा अत्यन्त एकाग्रता के कारण निश्चेष्ट से हो गए नेत्रो वाली रोशन आरा चित्रलिखित सी हो गई । शिवाजी हाथ जोडे खडे रहे और बिन्दु या विसर्ग

चाऽब्रूत । तत पराधीना तदाकार-सौजन्य-लावण्य-गाम्भीर्याऽऽदरा-चाराद्यवलोकन-मोहिता रसनारी स्वयमेवाऽऽरभ्य एवमालपत्—

रसनारी—आगम्यतामियमासन्दी सनाथ्यताम् ।

शिवराज —यदाज्ञाप्यतेऽत्रभवत्या ।

(इत्येकस्यामासन्द्या महाराष्ट्रराज , अपरस्या च रसनारी, सार्द्धहस्तोच्छ्राया कौशेय-वसनाच्छन्नाया सजल-कुसुम-स्तबकालङ्कृतमध्याया वर्तुल-पीठिकाया प्राक् प्रत्यक् चोपाविक्षताम् ।)

विन्दुद्वयरूपो विसर्जनीयश्चापि यदा नोक्तस्तदा वर्णसमूहरूपपदाद्युच्चारणचर्चैव केति कैमुतिकन्यायेन किमपि नाकथयदित्यत्र तात्पर्यम् । भाषणभङ्गीपाटवप्रदर्शनाय त्वेवमभिधानम् । अनुनासिकविसर्जनीययोर्लिपिरेव विन्द्वात्मिका, तौ तु वर्णाविवेत्य-योगवाहनामट्सु शर्पु चोपसङ्ख्यानेन भाष्ये दर्शितमित्यादिक शाब्दिकशैलीविदा नातितिरोहितमिति शम् ।

पराधीना = अस्वतन्त्रा । **तदाकारस्य** = तदाकृते , **सौजन्यस्य**=सज्जनताया, **लावण्यस्य**=सौन्दयस्य, **गाम्भीर्यस्य**=प्रच्छन्नभावस्य । **आदराचारादेश्च** = आदृतिशिष्टाचरणादेश्च, अवलोकनेन, **मोहिता** = वशीकृता ।

आसन्दी = आसनविशेष । **सनाथ्यताम्** = सस्वामिकीक्रियताम् । उपविश्यतामिति यावत् । आदरातिशयद्योतनायैवमुक्ति ।

आज्ञाप्यते = आदिश्यते । अतिशयनम्रताध्वननायेदम् ।

सार्धहस्तोच्छ्रायाया = अर्धेन सह विद्यमानो हस्त , अर्धादेक , उच्छ्राय

भी नही बोले । तदनन्तर उनकी (शिवाजी की) आकृति तथा उनका सौजन्य, लावण्य, गाम्भीर्य और शिष्ट व्यवहार आदि देखकर मुग्ध हो गई परतन्त्र रोशन-आरा स्वय ही बातचीत का आरम्भ करती हुई बोली—

रोशनआरा—आइये, इस कुर्सी को सनाथ कीजिए ।

शिवाजी—जैसी आपकी आज्ञा ।

[तदनन्तर डेढ हाथ ऊँची, रेशमी मेजपोश से ढकी हुई, जलयुक्त फूलो के गुच्छो से अलकृत (गुलदस्तो से अलकृत) मध्य भाग वाली वर्तुलाकार मेज के आमने-सामने एक कुर्सी पर शिवाजी बैठ गए, तथा दूसरी पर रोशन आरा बैठ गई ।]

रसनारी—वीर! अतिसमादृताऽपि सुख स्थापिताऽपि दु खिताऽस्मितमाम्, यतो यत्नैरपि न ज्ञातुमशक निज-धन्यवाद-भाजन धन्य-धन्य कमपि मान्य-वदान्यम्, यत्प्रदत्त द्राक्षा-दाडिम-जातमास्वाद-मास्वाद केकि-केका-कोकिल-कूजितानि श्राव श्राव दर्श दर्श चोपत्यका-शाद्वलेषु शम्बर—शल्लकी—शशक—शिवा—पलायनानि दिनानि गमयामि।

शिवराज—आर्ये! अपि कस्यापि महाराष्ट्र—वीरस्य शिवराज इति नामधेय श्रीमत्या कर्ण—शष्कुलीमस्पार्क्षीत्?

=औन्नत्य यस्यास्तस्या। कौशेयवसनाच्छन्नाया=पट्टवस्त्रप्रावृताया। सजलकुसुमस्तबकै =सवारिपुष्पगुच्छै, अलङ्कृत मध्यम्=मध्यभागो यस्यास्तस्या वर्तुलपीठिकाया=गोलाकृतिकाष्ठपीठिकाया, "मेज" इत्याङ्ग्ल-शब्दस्य हिन्दीप्रयोगविषयस्याऽभिधेयाया। उपाविक्षताम्=आसिषाताम्। केकि-केका =मयूररुतानि, कोकिलकूजितानि=परभृतरणितानि। श्राव श्रावम् =श्रुत्वा श्रुत्वा। शम्बरस्य=मृगविशेषस्य, शल्लक्या =श्वाविध, "साही" इति हिन्दी। शशकस्य, शिवाया =शृगाल्याश्च, पलायनानि=धावनानि। दिनानि गमयामि=दिवसान् क्षपयामि। निरर्थ यापयामि कालमिति यावत्।

कर्णशष्कुलीम्=श्रवणझिल्लीम्। श्रोत्ररन्ध्रम्। अस्पार्क्षीत्=स्पशन-

---

रोशन आरा—वीर! अत्यन्त सम्मानित की जाती हुई भी, सुखपूर्वक रखी जाती हुई भी मैं दु खी हूँ, क्योकि कोशिश करने पर भी मै अपने धन्यवाद के पात्र, अतिशय धन्य उस माननीय आश्रयदाता को नही जान सकी, जिसके दिये गए अंगूर, अनार आदि का आस्वादन कर मयूरो की केका, तथा कोयलो की काकली को सुन-सुनकर तथा उपत्यकाओ के घास के मैदानो मे हरिणो, शल्लकियो(साहियो) खरगोशो तथा शृगालियो का भागना देख-देखकर दिन काट रही हूँ।

शिवाजी—आर्ये! क्या किसी महाराष्ट्र वीर के 'शिवाजी' इस नाम ने आपके कानो का स्पर्श किया है?

चाऽब्रूत। तत पराधीना तदाकार-सौजन्य-लावण्य-गाम्भीर्याऽऽदराचाराद्यवलोकन-मोहिता रमनारी स्वयमेवाऽऽरभ्य एवमालपत्—

रसनारी—आगम्यतामियमासन्दी सनाथ्यताम्।

शिवराज —यदाज्ञाप्यतेऽत्रभवत्या।

(इत्येकस्यामासन्द्या महाराष्ट्रराज, अपरस्या च रसनारी, सार्द्धहस्तोच्छ्रायाया कौशेय-वसनाच्छन्नाया सजल-कुसुम-स्तबकालङ्कृतमध्याया वर्तुल-पीठिकाया प्राक् प्रत्यक् चोपाविक्षताम्।)

विन्दुद्वयरूपो विसर्जनीयश्चापि यदा नोक्तस्तदा वर्णसमूहरूपपदाद्युच्चारणचर्चैव केति कैमुतिकन्यायेन किमपि नाकथयदित्यत्र तात्पर्यम्। भाषणभङ्गीपाटवप्रदर्शनाय त्वेवमभिधानम्। अनुनासिकविसर्जनीययोर्लिपिरेव विन्द्वात्मिका, तौ तु वर्णावेवेत्य-योगवाहनामट्सु शर्षु चोपसङ्ख्यानेन भाष्ये दर्शितमित्यादिक शाब्दिकशैलीविदा नातितिरोहितमिति शम्।

पराधीना = अस्वतन्त्रा। तदाकारस्य = तदाकृते, सौजन्यस्य=सज्जनताया, लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य, गाम्भीर्यस्य=प्रच्छन्नभावस्य। आदराचारादेश्च = आदृतिशिष्टाचरणादेश्च, अवलोकनेन, मोहिता = वशीकृता।

आसन्दी = आसनविशेष। सनाथ्यताम् = सस्वामिकीक्रियताम्। उपविश्यतामिति यावत्। आदरातिशयद्योतनायैवमुक्ति।

आज्ञाप्यते = आदिश्यते। अतिशयनम्रताध्वननायेदम्।

सार्धहस्तोच्छ्रायाया = अर्धेन सह विद्यमानो हस्त, अर्धाधिक, उच्छ्राय

भी नही बोले। तदनन्तर उनकी (शिवाजी की) आकृति तथा उनका सौजन्य, लावण्य, गाम्भीर्य और शिष्ट व्यवहार आदि देखकर मुग्ध हो गई परतन्त्र रोशन-आरा स्वय ही बातचीत का आरम्भ करती हुई बोली—

रोशनआरा—आइये, इस कुर्सी को सनाथ कीजिए।

शिवाजी—जैसी आपकी आज्ञा।

[तदनन्तर डेढ हाथ ऊँची, रेशमी मेजपोश से ढकी हुई, जलयुक्त फूलो के गुच्छो से अलकृत (गुलदस्तो से अलकृत) मध्य भाग वाली वर्तुलाकार मेज के आमने-सामने एक कुर्सी पर शिवाजी बैठ गए, तथा दूसरी पर रोशन आरा बैठ गई।]

रसनारी-वीर ! अतिसमादृताऽपि सुख स्थापिताऽपि दु खिता-ऽस्मितमाम्, यतो यत्नैरपि न ज्ञातुमशक निज-धन्यवाद-भाजन धन्य-धन्य कमपि मान्य-वदान्यम् , यत्प्रदत्त द्राक्षा-दाडिम-जातमास्वाद-मास्वाद केकि-केका-कोकिल-कूजितानि श्राव श्राव दर्श दर्श चोपत्यका-शाद्वलेपु शम्वर-शल्लकी-शशक-शिवा-पलायनानि दिनानि गमयामि।

शिवराज -आर्ये ! अपि कस्यापि महाराष्ट्र-वीरस्य शिवराज इति नामधेय श्रीमत्या कर्ण-शष्कुलीमस्पार्क्षीत् ?

=औन्नत्य यस्यास्तस्या । **कौशेयवसनाच्छन्नाया** =पट्टवस्त्रप्रावृताया । **सजलकुसुमस्तबकै** =सवारिपुष्पगुच्छै , अलङ्कृत **मध्यम्** =मध्यभागो यस्यास्तस्या **वर्तुलपीठिकाया** =गोलाकृतिकाष्ठपीठिकाया , "मेज" इत्याङ्गल-शब्दस्य हिन्दीप्रयोगविषयस्याऽभिधेयाया । **उपाविक्षताम्**=आसिषाताम् । **केकि-केका** =मयूररुतानि, **कोकिलकूजितानि** =परभृतरणितानि । **श्राव श्रावम्** =श्रुत्वा श्रुत्वा । **शम्वरस्य** =मृगविशेषस्य, **शल्लक्या** =श्वाविध , "साही" इति हिन्दी । शशकस्य, **शिवाया** =शृगाल्याश्च, **पलायनानि**=धावनानि । **दिनानि गमयामि**=दिवसान् क्षपयामि । निरर्थ यापयामि कालमिति यावत् ।

कर्णशष्कुलीम्=श्रवणशिल्लीम् । श्रोत्ररन्ध्रम् । **अस्पार्क्षीत्**=स्पर्शन-

रोशन आरा—वीर ! अत्यन्त सम्मानित की जाती हुई भी, सुखपूर्वक रखी जाती हुई भी मै दु खी हूँ, क्योकि कोशिश करने पर भी मै अपने धन्यवाद के पात्र, अतिशय धन्य उस माननीय आश्रयदाता को नही जान सकी, जिसके दिये गए अगूर, अनार आदि का आस्वादन कर मयूरो की केका, तथा कोयलो की काकली को सुन-सुनकर तथा उपत्यकाओ के घास के मैदानो मे हरिणो, शल्लकियो(साहियो) खरगोशो तथा शृगालियो का भागना देख-देखकर दिन काट रही हूँ।

शिवाजी—आर्ये ! क्या किसी महाराष्ट्र वीर के 'शिवाजी' इस नाम ने आपके कानो का स्पर्श किया है ?

रस०—(क्षण चिन्तयित्वेव) कि पार्वतोन्दुरु शिव इति ?

शिवराज –[दिल्ली-कलङ्का वराका एते मा पार्वतोन्दुरुमेवाऽऽख्यान्ति" इति स्वगतमेव विचार्य किञ्चिद् ह्रीण इव पुनरुन्नतीभूय] भद्रे ! महाराष्ट्रराज शिववीर ।

रसनारी—[समौग्ध्यम्] तत् किं पार्वतोन्दुरु कोऽप्यन्य ?

शिव०—अत्र भवती न वेत्ति मर्म्मैतस्य । अस्माक सदैव युद्धानि भवन्ति श्रीमत्यास्तातचरणै सह। वय सदैव तान् विजयामहे । तदीयानि कदर्य्याणि आचरणान्यवलोक्य च 'दिल्ली–कलङ्का इमे' इति कथयाम । ते च दग्धहृदया अस्मान् 'पार्वतोन्दुरून्' प्रचक्षते, परन्तु यथा तव तातस्तत्र राजा, तथा शिववीरोऽत्र राजा। तव तातस्तत्र प्रजासु तु, येषा दारा अपह्रियन्ते, येषा देवमन्दिराणि निपात्यन्ते, येषा च तीर्थस्थानानि बलाद् विलोप्यन्ते, ते प्रतिप्रभात प्रतिसाय च

मकार्षीत् शिवराज इति नाम कर्णयोर्गत श्रुतमिति प्रश्न । पार्वतोन्दुरु =पर्वतीयाखु. । आख्यान्ति=कथयन्ति ।

मर्म्म=रहस्यम्। कदर्य्याणि=अतिनिन्द्यानि । आचरणानि=कर्त्तव्यानि। दग्धहृदया =ज्वलितान्त करणा । प्रचक्षते=कथयन्ति । दारा = वनिता । अपह्रियन्ते=चोर्यन्ते । विलोप्यन्ते=अदृश्यता नीयन्ते । प्रतिप्रभा-

रोशन आरा—[क्षण भर सोचती हुई सी] क्या पहाडी चूहा शिवाजी ?

शिवाजी—[मन मे 'यवन मुझे पहाडी चूहा ही कहते हैं' यह सोचकर कुछ लज्जित से होकर पुन सिर उठाकर] भद्रे ! महाराष्ट्र के राजा शिवाजी।

रोशन आरा—[भोलेपन से] तो क्या पहाडी चूहा कोई और है ?

शिवाजी—आप इसका रहस्य नही जानती हैं। हमलोगो का आपके पिताजी के साथ सदा ही युद्ध हुआ करता है, हमलोग सदैव उन्हे पराजित करते हैं, और उनके निन्दनाय कुकृत्यो को देखकर, 'ये दिल्ली के कलङ्क हैं,' ऐसा कहा करते हैं, परन्तु जैसे आपके पिता वहाँ राजा हैं, वैसे ही शिवाजी यहाँ के राजा हैं। आपके पिताजी के राज्य मे जिन लोगो की स्त्रियो का अपहरण कर लिया जाता है, जिनके देवमन्दिर गिरा दिये जाते हैं तथा जिनके तीर्थ स्थान बलपूर्वक लुप्त किये जाते है, वे लोग प्रतिदिन प्रात काल और सन्ध्या के

बाष्प-वारि-बिन्दु-सन्दोहैराननं क्षालयन्त', दग्धहृदया , धमद्धमद्-धमनी-धावमान-रुधिर-धारा-दुर्धर्ष-वदना ,हस्तावुन्नमय्य तव तात-स्योच्छेदाय शपन्ते, शिवराज्ये तु प्रजा प्रतिक्षणमाशीराशीनुच्चार-यन्ति । त्वत्पितृराज्य बहिरेव, न तु प्रजानामन्त.करणे । शिवस्य तु राज्य महाराष्ट्र-देशीय-प्रजानामन्तर्बहिश्च ।

रस०—[सलज्जम्] तत् किं शिवराज्ये यवना अपि मोदन्ते ?

शिव०—सर्वासा प्रजाना समान एव मोद , न भवति शासनकाले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम् ।

रस०—तत किमित्यहमपहारिताऽस्मि ?

तम् = प्रतिप्रात । प्रतिसायम् = प्रतिसूर्यास्तमनवेलम् । बाष्पवारिबिन्दु-सन्दोहै = अस्रजलपृषत्समूहै । क्षालयन्त = धावयन्त । धमद्धमन्तीषु = भीत्याऽतितरा धडत्कुर्वंतीषु, धमनीषु = नाडीषु, धावमानस्य = शीघ्रगते , रुधिरस्य, धाराभि = प्रवाहै दुर्धर्षाणि, वदनानि = लपनानि येषा ते । उच्छे-दाय = नाशाय, शपन्ते = अनिष्टमाशसन्ते । उन्नमय्य = ऊर्ध्वीकृत्य । आशी-राशीन् = आशीर्वादततो । अन्त करणे = चेतसि ।

मोदन्ते = प्रसन्नतामनुभवन्ति । शासनकाले = रक्षणवेलायाम् । जाति-नामादीनाम् , उट्टङ्कनम् = प्रकटीकरणम् । अपहारिता = चोरिता ।

समय आँसुओ की बूंदो के समूह से मुख धोते हुए, जले हृदय से, धमकती हुई धमनियो मे दौडते हुए रक्त की धारा से, कठोर मुख से अपने दोनो हाथ उठा-कर आपके पिता के विनाश के लिये शाप दिया करते है । किन्तु शिवा-जी के राज्य मे तो प्रजा प्रतिक्षण आशीर्वादो का उच्चारण करती रहती है। आपके पिता का राज्य बाहर ही है, प्रजा के अन्त करण मे नही। शिवाजी का राज्य तो महाराष्ट्र की प्रजा के हृदय पर भी है और बाहर भी ।

रोशन आरा—[लज्जापूर्वक] तो क्या शिवाजी के राज्य मे यवन लोग भी प्रसन्न रहते हैं ?

शिवाजी—सारी प्रजा समान रूप से प्रसन्न है। शासन के समय जाति नाम आदि का उल्लेख आवश्यक नही होता ।

रोशन आरा—तो फिर मुझे क्यो अपहृत किया गया ?

शिव०—मा स्म भूच्छ्रीमत्या काचन बलात्कार-भीति । बहुभी रुधिर-प्रवाहैर्भगवती विश्वम्भरा स्नापिता, बह्वश्च युद्धाऽऽहत-वीर-रमण्यो रोदिता , इति यदि भवतीमाश्रित्य भवत्या पित्रा सह सन्धातु शक्येत, तद्यत्नायैव समानीता मङ्गलमय्यत्र भवती। नैतद् मौद्गल-राज्यम्, यत्र प्रजानामपि भवेद् बलात्कार-साध्वसम् । अत्र तु महा-राष्ट्राणा राज्यम्, यत्र परिपन्थिनामपि युव-जन-मनो-मोहनेनाऽति-मधुरेण कौमारात् परेण वयसाऽऽलिङ्गिता अपि सौन्दर्य-सार-विरचिता इवापि दुहितर सम्मान्यन्ते, न त्ववहेल्यन्ते । अत्रभवत्येवात्र प्रमाणम् ।

रस०—[तदाकर्ण्य शिरो नमयित्वा, अपाङ्ग-क्षिप्त-लोल-तारकेण लोचनेन

विश्वम्भरा = धरणी । स्नपिता = निर्णेजिता । युद्धे आहतानाम् = मारितानाम्, वीराणा, रमण्य = स्त्रिय । मङ्गलमयी = माङ्गल्यकारिणी । बलात्कारात् साध्वसम् = भीति । परिपन्थिनाम् = लुण्ठकानाम् । युवजन-मनोमोहनेन = नववयस्कचेतस्समाकर्षकेण, कौमारात् परेण वयसा=यौवनेन। आलिङ्गिता आश्लिष्टा । नवयुवत्य इति यावत् । सौन्दर्यसारविरचिता = लावण्यतत्त्वनिर्मिता , दुहितर = कन्यका । अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते । अत्र-भवती = माननीया । अत्र = अस्मिन् विषये । अतो न पौनरुक्त्यम् । प्रमाणम् = प्रमाकरणम् । मदुक्तिसत्यतासाधकमिति यावत् ।

अपाङ्गे = नेत्रप्रान्ते, क्षिप्ता = प्रेरिता, लोला = चञ्चला, तारका =

शिवाजी—आप किसी बलात्कार का भय न करे । रक्त की अनेक धाराओ से भगवती वसुन्धरा को स्नान कराया जा चुका है, युद्ध मे मारे गये सैनिको की अनेक स्त्रियाँ रोने के लिए विवश की जा चुकी है, अत शायद आपके सहारे आपके पिता से सन्धि हो सके, यही सोचकर सन्धि के लिए प्रयत्न करने के लिए मङ्गलमयी आप यहाँ लाई गई है । यह मुगलसाम्राज्य नही है, जहाँ प्रजा को भी बलात्कार का भय रहे । यहाँ मराठो का राज्य है, जहाँ युवको के मन को मुग्ध करने वाले अत्यन्त मधुर यौवन से आलिङ्गित मानो सौन्दर्य के सार से बनी शत्रु की भी लडकियाँ सम्मानित की जाती है, उनकी अवहेलना नही की जाती । इस सम्बन्ध मे आप ही स्वय एक प्रमाण हैं ।

रोशन आरा—[यह सुनकर, सिर झुकाकर, जिनकी चञ्चल पुतलियाँ

शिव-मुखमसकृदीक्षमाणा, उरोजयो स्रसदिव वस्त्र पुन स्कन्वयो क्षिप्त्वा]
अथ क्वाऽसौ महाराष्ट्रराजो मोदित-सकल-समाजो रणधीर शिव-वीर. ? त दिदृक्षत एष जन. ।

शिव०—[समुत्थाय] एषोऽत्र भवत्या सम्मुख एव वद्धकरसम्पुट उपतिष्ठते शिव , तदाज्ञाप्यता काचन सेवा ।

रस०—[ससम्भ्रममुत्थाय] आ ! एवमेतत् ? अपि श्रीमानेव महाराष्ट्रराज , यो मामेव धृष्टवादिनी मनोरमैर्नम्रालापैर्लज्जयते ? उपविश्यतामुपविश्यताम् । मनसाऽप्यकल्पनीयोऽयमीदृश स्वभाव , यत् सपत्नोऽप्यादरेष्वेव सयत्नो भवान् ।

कनीनिका, यस्य तेन, लोचनेन = नयनेन । असकृत् = अनेकवारम् । ईक्षमाणा = अवलोकयन्ती । उरोजयो = स्तनयो । स्रसदिव = स्खलदिव । इवेन न स्वय वस्त्रस्खलनमपि तु शिवासक्तिसूचनाय रसनार्यैवपातितमिति ध्वनितम् । स्कधयो असयो । क्षिप्त्वा = अस्तव्यस्त सस्थाप्य । "फेक कर" इति हिन्दी ।

मोदितसकलसमाज = प्रसन्नीकृतसमस्तजनसमूह । दिदृक्षते = द्रष्टुमिच्छति ।

धृष्टवादिनीम्—धाष्टर्येन भाषमाणाम् । मनोरमै = चेतोहरै । नम्रालापै = कोमलभाषण । लज्जयते = लज्जिता करोति । अकल्पनीय =

कोनो मे जा लगी थी, ऐसे नेत्रो से शिवाजी के मुख को बार बार देखती हुई, स्तनो से सरकत हुए से वस्त्र को पुन कन्धो पर डालकर] अच्छा, समस्त प्रजा को प्रसन्न करने वाले महाराष्ट्र के राजा रणधीर शिवाजी कहाँ हे ? मै उन्हे देखना चाहती हूँ ।

शिवाजी—(उठकर) यह आपके सामने ही हाथ जोडे शिवाजी सेवा मे उपस्थित है, कोई सेवा का आदेश दीजिए ।

रोशन आरा—[घवराहट के माथ उठकर] अहा ! ऐसी वात हे ? क्या आप ही महाराष्ट्र के नरेश है, जो उच्छृङ्खलता पूर्वक बोलने वाली मुझको मनोरम नम्र वचनो से लज्जित कर रहे है । वैठिए, बैठिए, ऐसा स्वभाव तो मन से

तत परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहव आलापास्तयो परस्पर चकितयोर्मुदितयोरनुरक्तयोश्चाऽभूवन् ।

अथ समार्दव तदनुमतिमासाद्य, सिंहदुर्गं प्रति निवर्तमानो मार्ग एव महता हिमगिरि-खण्डेनेव कर्पूर-पूर-निर्मितेनेव चन्द्रचन्द्रिका-चय-रचितेनेव मूर्तनेव महाराष्ट्र-यशसा दुग्ध-धवलेन घोटकेन धावमान, कतिभिश्चन सप्रसाद-नयनैरुत्साहमिव वमद्भि, प्रत्यर्थि-प्रतापमिवाऽरुण-रश्मिबन्ध सव्येन करेण वशयद्भि, निज-विजय-ध्वजेनेव

अननुमेय । **सपत्न॰** = अरि । **आदरेषु** = सम्मानेषु । **सयत्न** = सश्रम ।

चकितयो = साश्चर्ययो । **मुदितयो** = प्रसन्नयो । **अनुरक्तयो** = अन्योन्यासक्तिमतो । सर्वत्रात्र 'पुमान् स्त्रिये'त्येकशेषो बोध्य ।

समार्दवम् = सकोमलतम् । **हिमगिरिखण्डेनेव** = प्रालेयाचलांशेनेव । **कर्पूरपूरनिर्मितेनेव** = हिमवालुकाधूलिरचितेनेव । **चन्द्रचन्द्रिका-चयरचितेनेव** = शशाङ्कदीधितिनिकरर्निर्मितेनेव । **दुग्धधवलेन** = पय श्वेतेन । **सप्रसाद-नयनै** = प्रसन्ननेत्रै । **वमद्भि** = उद्गिरद्भि, प्रकटयद्भिरिति यावत् । **प्रत्यर्थि-प्रतापमिव** = शात्रवतेज इव । **अरुणम्** = ईषद् रक्तम्, **रश्मिबन्धम्** = प्रग्रहम् । **सव्येन** = वामेन । **वशयद्भि** = स्वायत्तीकुर्वद्भि । पुष्टतया गृह्यद्भिरिति

भी नही सोचा जा सकता कि मेरे शत्रु होते हुए भी आप मेरे सम्मान के लिए सचेष्ट हैं ।

उसके बाद दोनो के बैठ जाने पर क्षण भर चकित, प्रसन्न तथा अनुरक्त उन दोनो की परस्पर बहुत सी बाते हुई ।

तदनन्तर रोशन आरा से विनम्रता पूर्वक अनुमति लेकर सिंहदुर्ग को लौटते हुए शिवाजी ने मार्ग मे ही हिमगिरि के टुकडे के समान, कर्पूर के समूह से बने हुये से, चन्द्रमा की चाँदनी के पुञ्ज मे निर्मित किए गए से, मराठो के मूर्तिमान यश के से, दुग्ध के समान सफेद घोडे पर सवार, प्रसन्नता भरी आंखो से उत्साह उगलते हुए से, शत्रु के प्रताप की सी लाल लगाम को बांये हाथ से नियन्त्रित किए हुए, अपनी विजयपताका के समान

मन्दमाघूर्णमानेन कशाग्रेण हयान् हेषयद्भि, कटितट-विलम्बि-विलोल-करवालैरुष्णीष-पर-प्रान्त-दोदुल्यमानाऽनिल-वल-विलोल-बाल-जालै सादिभिरनुगम्यमानो माल्यश्रीक समागच्छन्नालोकि। समीपमागतास्ते सर्वे 'जय जीव !' इत्युच्चै शिवराजमाचाराशीर्याशिभि सममानयन्। माल्यश्रीकस्तु "विजयता श्रीमान् ! प्रतिहतममङ्गलम्, हता परिपन्थिन" इत्युदीर्य किञ्चन रहस्य निवेदनीयम्न्यवीविदत्।

अथ शिवेङ्गितमासाद्य सर्वेष्वश्वारोहेषु धनुषा विशत्यामिव दूरत

यावत्। निज-विजय-ध्वजेनेव = स्वजयवैजयन्त्येव। आघूर्णमानेन = सञ्चलता। कशाग्रेण = अश्वताडनीप्रान्तेन। "अश्वादेस्ताडनी कशा" इत्यमर। हेषयद्भि = हिणत्कार कारयद्भि। कटितट-विलम्बि-विलोल-करवालै = मध्यभागावलम्बिचञ्चलचन्द्रहासै। उष्णीषपरप्रान्ते = शिरोवेष्टनद्वितीयाञ्चले, दोदुल्यमानस्य = अतिशयेनोड्डीयमानस्य, अनिलस्य = वायो, बलेन, विलोलानि = चञ्चलानि, बालजालानि = केशवृन्दानि, येषा तै। आलोकि = दृष्ट। प्रतिहतम् = विध्वस्तम्। अमङ्गलम् = अशुभम्। न्यवीविदत् = न्यवेदयत्।

शिवेङ्गितम् = शिववीरचेष्टाम्। धनुषा विशत्यामिव = प्रायो विश-

धीरे-धीरे हिलने वाले चाबुक के अग्रभाग से घोडो को हिनहिनाने के लिए प्रेरित करते हुए, कमर मे चञ्चल तलवारो को लटकाए, तथा पगडी की दूसरी ओर उडने वाले, पवन के वेग से चञ्चल केश समूहो वाले, कुछ अश्वारोहियो से अनुगत माल्यश्रीक को आते हुए देखा। समीप आने पर अश्वारोहियो ने जोर से, 'जय जीव !' कहकर शिवाजी को आचारानुकूल आशीर्वादो से सम्मानित किया, ओर माल्यश्रीक ने "महाराजकी जय हो, अमङ्गल का नाश हुआ और शत्रु मारे गए" यह कहकर निवेदन किया कि कुछ रहस्य की बाते बतानी हैं।

अनन्तर शिवाजी का सकेत पाकर सभी अश्वारोहियो के, लगभग बीस धनुष

कृतमण्डलेषु, मन्दमन्द तुरग-निगालाऽऽस्फोटन-पुरस्सर प्रचलत्सु, शिवस्य वामत शनै स्वमश्व चालयन् मन्द मन्दमगादीन्माल्यश्रीक ।

माल्यश्रीक —[जनान्तिकम्] न्यवेदयमेव ह्यो रात्रौ श्रीमच्चरणेषु यत् पुरुषमय पारावार-प्रवाहमिव सह नयन् दिल्लीकलङ्कस्याऽवरङ्गजीवस्य तनयो मायाजिह्मो महाराष्ट्रै सह योद्धुमायातीति ।

शिव०—आम् ! तत परमुच्यताम् !

माल्य०—स त्वितो गव्यूति-सप्तकान्तराल एवोपकार्य्या समासज्याऽवसर प्रतीक्षमाण आसीत् ।

तिधनु परिमितायामिव । कृतमण्डलेषु = विहितपरित स्थितिषु । वर्तुलाकारेणोपविष्टेष्विति यावत् । तुरगनिगालास्फोटनपुरस्सरम्=अश्वगलोद्देशास्फालनपूर्वकम् । जनान्तिकम्—

'त्रिपताककरेणाऽन्यानपवार्यान्तिके जनान् ।
अन्योन्यामन्त्रण यस्माद् जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥' इत्युक्तम् ।

पुरुषमयम् = मानवप्रचुरम् । पारावारप्रवाहमिव = सिन्धुधारामिव । मायाजिह्म = "सुल्तान मुआजिम" इति प्रसिद्ध ।

गव्यूतिसप्तकान्तराले = चतुर्दशक्रोशमध्ये । उपकार्य्या =शिबिराणि । समासज्य = सम्यगायोज्य । प्रतीक्षमाण =प्रतीक्षा कुर्वन् ।

की दूरी पर मण्डल बनाकर धीरे-धीरे घोडे की गर्दन थपथपाते हुए चल देने पर, माल्यश्रीक शिवाजी की बाईं ओर अपना घोडा बढाते हुए धीरे-धीरे कहने लगे—

माल्यश्रीक(जनान्तिक मे)—मैंने आपके चरणो मे कल रात्रि मे निवेदन किया ही था कि मनुष्यो का महासागर सा साथ लेकर दिल्ली-कलङ्क औरङ्गजेब का लडका 'सुल्तान मुआज़म' मराठो से युद्ध करने के लिए आ रहा है ।

शिवाजी—हाँ, उसके बाद कहिए ।

माल्यश्रीक—वह वहाँ से चौदह कोस की दूरी पर ही शिविर लगाकर अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था ।

शिव०—आसीदस्ति वा ?

माल्य०-प्रभो ! आसीदेव, सम्प्रति तु श्रीमच्चरणाना वशवद सञ्जात इति विशकलय्य निवेद्यते ।

शिव०—[सप्रसाद हसन्निवाऽऽकाशे दृष्टि बध्वा] अहह ! अरे रे ! अवरङ्गजीव ! महाराष्ट्रान् वञ्चयितुमिच्छसि ? न वेत्सि अस्मदीया बाला अपि त्वादृशास्तृणाय मन्यन्ते । [माल्यश्रीकाभिमुखम्] अपि सत्य निगृहीत एष ?

माल्य०—महामान्य ! कोऽत्र सशय ? स भवान्, यस्य प्रतापो नृसिहस्य सटाम्, कपर्दिनो जटाम्, फणिराजस्य स्फटा च स्पृशन् जाज्वल्यते ।

हसन्निव = हास कुर्वन्निव । महता हासो नोग्रतामाश्रयतीति ध्वननायेतीवाऽभिधानम् । तृणाय, "मन्यकर्मण्यनादरे" इति चतुर्थी ।

प्रताप = तेज । नृसिहस्य = हिरण्यकशिपुहन्तुरवतारविशेषस्य । सटाम् = केशरम् । कपर्दिन = शिवस्य । "उग्र कपर्दी" इत्यमर । फणिराजस्य = शेपस्य । स्फटाम् = फणाम् । भवान् सुदूरव्यापिप्रताप इति यावत् ।

शिवाजी—था या है ?

माल्यश्रीक—महाराज ! था ही, इस समय तो आपके आधीन है, यही विस्तार पूर्वक निवेदन कर रहा हूँ ।

शिवाजी—[प्रसन्नता से हँसते हुए से आकाश की ओर देखकर] अहा ! अरे ! औरङ्गजेब ! मराठो को धोखा देना चाहते हो ? नही जानते कि हमारे बच्चे भी तुम जैसो को तिनका समझते है । [माल्यश्रीक की ओर देखते हुए] क्या सचमुच उसे कैद कर लिया गया ?

माल्यश्रीक—महामान्य ! इसमे क्या सन्देह है ? आपका प्रताप नृसिह की सटा (केसर), भगवान शङ्कर की जटा तथा शेष नाग की फणा को स्पर्श करता हुआ जल रहा है ।

शिव०—अथ विशकलय्य क्रमत कथ्यताम् ।

माल्य०—आर्य्य ! विनिवेदयामि भूतार्थम् । मायाजिह्म एष लम्पटराजस्य पुत्र , इति कथ नानुहरेत् स्वपितरमिति महाराष्ट्रदेशे आगतमात्र एव "एतद्देशीया कीदृश्यो वारवनिता ? कीदृश आसा वेष ? कीदृश गानम् ? कीदृश च नृत्यम् ?" इति लाम्पट्यगर्भ-मभिलाष प्रकटितवान् ।

शिव०—ततस्तत ?

वृत्तान्तममु पाञ्चसाहस्रिको गौरसिह समाकर्ण्य मायाजिह्मे माया रचितवान् ?

शिव—आचार्य एष मायाकल्पनेषु । ततस्तत ?

विशकलय्य = विविच्य ।

भूतार्थम्—व्यतीत सत्य वस्तु । लम्पटराजस्य = परस्त्रीलोलुपाऽधिनाथस्य । नानुहरेत् = नानुकुर्वीत । वारवनिता = वेश्या । वेष = नेपथ्यम् । लाम्पट्यगर्भम् = परस्त्रीलोलुपतामिश्रम् ।

पाञ्चसाहस्रिक = शरसहस्रसेनापति , पञ्चसहस्रभटाध्यक्ष इति यावत् ।

शिवाजी—तो विस्तार पूर्वक कहिए !

माल्यश्रीक—महाराज ! घटित हुए वृत्तान्त को बता रहा हूँ । यह मुआजिम, लम्पटो के सरदार (औरङ्गजेब) का पुत्र है, अत अपने पिता का अनुकरण क्यो न करे ! इसलिए महाराष्ट्र मे आते ही उसने, यहाँ की वेश्याएँ कैसी है ? उनका वेष कैसा होता है ? उनका सगीत और नृत्य कैसा होता हे ? इस प्रकार की लम्पटता पूर्ण जिज्ञासा व्यक्त की ।

शिवाजी—उसके बाद ?

इस वृत्तान्त को सुनकर पाँच हजार अश्वारोहियो के सेनापति गौरसिंह ने मुआजिम पर माया जाल फैलाया ।

शिवाजी—वह तो कपट रचना मे पण्डित है ही , उसके बाद ?

माल्य०—प्रभो ! गौर प्रकृत्यैवाऽतिसुन्दर , तत्रापि दिवाकीर्तिमाहूय मसृणमुख सवृत्य, अधररागम् अञ्जन–रञ्जन वारवधू–योग्यमाभरण-जात प्रच्छद–पट च धारयित्वा, पटवास–वासित–दिगन्तर , रति–प्रतिकृतिरिव स्मितै कटाक्ष–क्षेपै , मधुर-वचनै , सजघनकम्पपाद–क्षेपै , सकृत्रिम–कुच–वेपन–वलित–वलि–भङ्ग-ललित-कञ्चुकिका–दर्शनै , यूना मनो मन्मथोन्मथित विदधत् , ब्रह्मचारि–कुटीर-

दिवाकीर्त्तिम्=नापितम् । एतद्वाचकशब्दाना रात्रौ नोच्चारण कार्यमन्यथा मरणाशौचापात इति मैथिलेषु प्रसिद्धि । सा चैतदभिधानमूलिका युक्ता चेति वेदितव्यम् । मसृणमुख =चिक्कणानन । सवृत्य=भूत्वा । अधररागम्= ओष्ठलौहित्यकारक रञ्जनद्रव्यम्, अञ्जनरञ्जनम्=कज्जलेन शोभासम्पादनम्, अक्ष्णोरिति शेष । प्रच्छदपटम्=आवरकवस्त्रम् । पटवास-वासित-दिगन्तर = वसनसौगन्ध्यसुरभितहरिदन्तराल । रतिप्रतिकृतिरिव=कामपत्नीप्रतिमूर्तिरिव । स्मितै =ईषद्धास्यै । कटाक्षक्षेपै =भ्रूभङ्गसञ्चालनै । मधुरवचनै =कोमलभाषणै । सजघनकम्पपादक्षेपै =जघनवेपनपुरस्सरमङ्घ्रिन्यासै । कृत्रिमयो = निर्मितयो , कुचयो वेपनेन=कम्पेन, वलितै =उपचितै , वलिभङ्गेन= त्रिवलीभङ्गेन, ललितै =सुन्दरै , कञ्चुकिकादर्शनै =चोलिकाप्रकटनै । मन्मथोन्माथितम्=काममर्दितम् । विदधत्=कुर्वाण , शत्रन्तम् 'नाभ्यस्ता-

माल्यश्रीक–महाराज ! एक तो गौरसिह स्वभावत ही अत्यन्त सुन्दर है, उस पर भी उसने नाई को बुलाकर (दाढी मूंछ बनवाकर) चिकने मुख वाला बनकर, अधरो पर लाली लगाकर, नेत्रो मे काजल डालकर, वेश्या के योग्य सभी आभूषण धारणकर, तथा चादर ओढकर, वस्त्रो की सुगन्धि से दिशाओ को सुरभित करते हुए, मूर्तिमती रति के समान, मुस्कान, कटाक्षविक्षेप, मधुर वाणी द्वारा तथा जघनो को हिलाने के साथ चरणन्यास करते हुये कृत्रिम स्तनो को कँपाने के साथ ही साथ हो गए त्रिवलिभङ्ग से सुन्दर लगने वाली कञ्चुकी को दिखा-दिखाकर युवको के मन को कामोन्मत्त करते

वासि-सन्यासिनामेव परिवर्तितवेषै , कैश्चित् कलितमृदङ्गै , अपरैस्तानपूरिका-ताल-झर्झर-करै , अन्यैर्व्यजन-पतद्ग्रह-ताम्बूलकरङ्क-मञ्जीर-पोटलिकादि-वाहकै , इतरैश्च पञ्चषै कलित-दासीरूपैरनुगम्यमान , सौवर्णप्रच्छदाऽऽच्छन्नामतिरमणीयामेका शिविकामारुह्य, धीरैरेवाऽऽकलित-भारवाह-वेषैरुह्यमान ,तदीय-शिविर-मण्डलमासाद्य "पद्मिनीनाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्र-देशीया वाराङ्गना समागच्छति" इति समसूसुचत् ।

शिव०—तत ?

च्छतु ' इति न नुम् । परिवर्तितवेषै =नवीकृतनेपथ्यै । कलितमृदङ्गै = धारितमृदङ्गै । व्यजनम्=तालवृन्तकम् , पतद्ग्रहः=निष्ठ्यूतग्रह । ताम्बूलकरङ्कम्=ताम्बूलाधारपात्रम्,"पानडब्बा" इति हिन्दी । मञ्जीरपोटलिका= "घुंघुरुओ की पोटली" इति हिन्दी । इत्यादीना वाहकै =प्रापकै, भृत्यै । पञ्चषै =पञ्चभि षड्भिर्वा । कलितदासीरूपै =गृहीतभृत्यानेपथ्यै । सौवर्णेन=हैरण्येन, प्रच्छदेन = आच्छादनपटेन, "आहार"इति हिन्दी। आच्छन्नाम् =परित पिहिताम् , आकलित भारवाह-वेषै =धारितशिबिकोद्वाहकनेपथ्यै । ऊह्यमान =नीयमान । वाराङ्गना=गणिका। समसूसुचत् = समबूबुधत् ।

हुए, मृदङ्ग धारण करने वालो, तानपूरा, करताल, झाँझ, पखा, पिकदान, पानदान, घुँघरू की पोटली आदि ले चलने वालो एव दासियो का वेश धारणकर पीछे-पीछे चल रहे ब्रह्मचारियो की कुटियो मे रहने वाले कुछ सन्यासी वीरो के द्वारा अनुगत, कहारो का वेश धारण किये हुए मराठा सैनिको द्वारा वहन की जा रही, सुनहली चादर से ढकी हुई एक अत्यन्त सुन्दर पालकी मे बैठकर, मुआजिम के शिविर के पास पहुँच कर, उसके पास यह सूचना भेजी कि पद्मिनी नाम की महाराष्ट्र देश की विश्वविख्यात वेश्या आ रही है।

शिवाजी—तब ?

माल्य०—ततो नामश्रवणमात्रेण पुलकित प्रफुल्लित स्विन्न आनन्दितश्च मायाजिह्म रङ्ग-शिबिर प्रवेष्टुमादिदेश ।

शिव०—रङ्ग-शिबिरम् ?

माल्य०—प्रभो ! लम्पटाना शिबिर-सन्निवेशेषु रङ्गशिविर-मपि भवति, यत्र केवल दुरोदर वा वारवधू-विलासो वा नर्मशर्माणि वा पान-परम्परा वा भवति। तत्र न सर्वेऽपि निविशन्ते, किन्तु कैश्चि-देवाऽत्यन्तमन्तरङ्गैर्विषय-भोग-भाजो भवन्ति भट्टारका ।

शिव०—एवम् ! तत किमभूत् ?

माल्य०—आर्य ! तन्निदेशेन रङ्गशाला-द्वारि शिविकामास्थाप्य सह सर्वैरनुचरैरन्त प्रविवेश पद्मिनी। तत्रैकत्राऽऽस्तीर्णा वितस्त्यु-

---

पुलकित =सरोमाञ्च । प्रफुल्लित =विकसित । स्विन्नः=आर्द्र-वपु । आनन्दित =प्रसन्नीकृत । रङ्गशिबिरम् = नृत्योपकार्याम् ।

शिबिरसन्निवेशेषु = सेनानिवेशदेशेषु । दुष्टमुदर दुरोदरम् = द्यूतम् । नर्मशर्माणि = हास्यादिसुखानि । पानपरम्परा = मद्यपानाभ्यास । भट्टा-रका = अधिपतय सेनादीनाम्, लघुराजा वा 'राजा भट्टारको देव' इत्यमर ।

आस्थाप्य = सस्थाप्य । अनुचरै , साकमिति शेष । वितस्त्युच्छ्राया =

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी का नाम सुनकर ही रोमाञ्चित, खिले हुए, पसीने से भीगे हुए तथा प्रसन्न मुआजिम ने रगशाला मे प्रवेश करने का आदेश दिया।

शिवाजी—रङ्गशाला ?

माल्यश्रीक—महाराज ! लम्पटो के सैन्यशिविर मे रङ्गशाला भी होती है, जहाँ केवल जूआ, वेश्या के साथ विलास, हँसी-मजाक या मद्यपान ही होता है। वहाँ सभी नही जा सकते, अपितु कुछ अत्यन्त अन्तरगो के साथ अधिकारी ही विषयोपभोग के सुख का अनुभव करते हैं।

शिवाजी—ऐसा ! फिर क्या हुआ ?

माल्यश्रीक—महाराज ! उसके आदेश से पद्मिनी ने रङ्गशाला के द्वार पर पालकी रखवाकर सभी अनुचरो के साथ भीतर प्रवेश किया। वहाँ एक ओर

वासि-सन्यासिनामेव परिवर्तितवेषै, कैश्चित् कलितमृदङ्गै, अपरै-स्तानपूरिका-ताल-झर्झर-करै, अन्यैर्व्यंजन-पतद्ग्रह-ताम्बूलकरङ्क-मञ्जीर-पोटलिकादि-वाहकै, इतरैश्च पञ्चषै कलित-दासीरूपैरनु-गम्यमान, सौवर्णप्रच्छदाऽऽच्छन्नामतिरमणीयामेका शिबिकामारुह्य, धीरै रेवाऽऽकलित-भारवाह-वेषैरुह्यमान, तदीय-शिबिर-मण्डलमासाद्य "पद्मिनीनाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्र-देशीया वाराङ्गना समा-गच्छति" इति समसूसुचत् ।

शिव०—तत ?

च्छतु' इति न नुम् । परिवर्तितवेषै=नवीकृतनेपथ्यै । कलितमृदङ्गै= धारितमृदङ्गै । व्यजनम्=तालवृन्तकम्, पतद्ग्रहः=निष्ठ्यूतग्रह । ताम्बूल-करङ्कम्=ताम्बूलाधारपात्रम्, "पानडब्बा" इति हिन्दी । मञ्जीरपोटलिका= "घुंघुरुओ की पोटली" इति हिन्दी । इत्यादीना वाहकै=प्रापकै, भृत्यै । पञ्चषै=पञ्चभि षड्भिर्वा । कलितदासीरूपै=गृहीतभृत्यानेपथ्यै । सौवर्णेन=हैरण्येन, प्रच्छदेन=आच्छादनपटेन, "आहार"इति हिन्दी। आच्छ-न्नाम्=परित पिहिताम्, आकलित भारवाह-वेषै=धारितशिबिकोद्वाहक-नेपथ्यै । ऊह्यमान=नीयमान । वाराङ्गना=गणिका । समसूसुचत्= समबूबुधत् ।

हुए, मृदङ्ग धारण करने वालो, तानपूरा, करताल, झाँझ, पखा, पिकदान, पानदान, घुँघरू की पोटली आदि ले चलने वालो एव दासियो का वेश धारण-कर पीछे-पीछे चल रहे ब्रह्मचारियो की कुटियो मे रहने वाले कुछ सन्यासी वीरो के द्वारा अनुगत, कहारो का वेश धारण किये हुए मराठा सैनिको द्वारा वहन की जा रही, सुनहली चादर से ढकी हुई एक अत्यन्त सुन्दर पालकी मे बैठकर, मुआजिम के शिविर के पास पहुँच कर, उसके पास यह सूचना भेजो कि पद्मिनी नाम की महाराष्ट्र देश की विश्वविख्यात वेश्या आ रही है।

शिवाजी—तब ?

माल्य०—ततो नामश्रवणमात्रेण पुलकित प्रफुल्लित स्विन्न आनन्दितश्च मायाजिह्म रङ्ग-शिबिर प्रवेष्टुमादिदेश ।

शिव०—रङ्ग-शिविरम् ?

माल्य०—प्रभो ! लम्पटाना शिबिर-सन्निवेशेषु रङ्गशिविरमपि भवति, यत्र केवल दुरोदर वा वारवधू-विलासो वा नर्मशर्माणि वा पान-परम्परा वा भवति। तत्र न सर्वेऽपि निविशन्ते, किन्तु कैश्चिदेवाऽत्यन्तमन्तरङ्गैर्विषय-भोग-भाजो भवन्ति भट्टारका ।

शिव०—एवम् ! तत किमभूत् ?

माल्य०—आर्य ! तन्निदेशेन रङ्गशाला-द्वारि शिविकामास्थाप्य सह सर्वैरनुचरैरन्त प्रविवेश पद्मिनी। तत्रैकत्राऽऽस्तीर्णा वितस्त्यु-

---

पुलकित =सरोमाञ्च । प्रफुल्लित =विकसित । स्विन्नः=आर्द्रवपु । आनन्दित =प्रसन्नीकृत । रङ्गशिबिरम् =नृत्योपकार्याम् ।

शिबिरसन्निवेशेषु=सेनानिवेशदेशेषु । दुष्टमुदर दुरोदरम् =द्यूतम् । नर्मशर्माणि =हास्यादिसुखानि । पानपरम्परा =मद्यपानाभ्यास । भट्टारका =अधिपतय -सेनादीनाम्, लघुराजा वा 'राजा भट्टारको देव' इत्यमर ।

आस्थाप्य =सस्थाप्य । अनुचरै , साकमिति शेष । वितस्त्युच्छ्राया=

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी का नाम सुनकर ही रोमाञ्चित, खिले हुए, पसीने से भीगे हुए तथा प्रसन्न मुआजिम ने रगशाला मे प्रवेश करने का आदेश दिया।

शिवाजी—रङ्गशाला ?

माल्यश्रीक—महाराज ! लम्पटो के सैन्यशिविर मे रङ्गशाला भी होती है, जहाँ केवल जूआ, वेश्या के साथ विलास, हँसी-मजाक या मद्यपान ही होता है। वहाँ सभी नही जा सकते, अपितु कुछ अत्यन्त अन्तरगो के साथ अधिकारी ही विषयोपभोग के सुख का अनुभव करते हैं।

शिवाजी—ऐसा ! फिर क्या हुआ ?

माल्यश्रीक—महाराज ! उसके आदेश से पद्मिनी ने रङ्गशाला के द्वार पर पालकी रखवाकर सभी अनुचरो के साथ भीतर प्रवेश किया। वहाँ एक ओर

च्छाया कनक-सूत्रमयी तूलिका। तदुपरि स्थापितास्तादृशा एव त्रय उप-बर्हा। सम्मुखत सौवर्णे वर्तुलास्तरणे सुसज्जित प्रलम्बनल कटुमधुरा-ऽऽमोदामोदित-दिगन्तर धूमपानयन्त्रम्। एकतो राजत-पीठिकाया विन्य-स्तानि, अन्त स्थ—रक्त-पीताऽरुण—द्रवाभा-भार—धारा—स्नपिताऽऽस्तर-णानि, मध्यस्थ—दीप—द्योत—द्योतित-दीप्ति-प्रचय—विहित—वहुल-चाक-चक्यानि, अधोमुख—विन्यस्त—विविध-काच—चषक—वृत्तानि माध्वीक—

हस्ताधोच्छ्रिति। वितस्ति ="बित्ता" इति हिन्दी। कनकसूत्रमयी = सुवर्ण-तन्तुशिल्पसमेता। तूलिका="गद्दी" इति हिन्दी। उपबर्हा = उपधानानि। वर्तुलास्तरणे = गोलमञ्चिकाविष्टरे। प्रलम्बनलम् = दीर्घधूमाकर्षकम्। कटुमधुरामोदमोदितदिगन्तरम् = अतिमिष्टसुगन्धिसुरभितहरिदन्तरालम्। राजतपीठिकायाम्=रौप्यपीठे। अन्तस्थानाम् = अन्तर्वर्त्तमानानाम्, रक्त-पीताऽरुणद्रवाणाम्, अर्थात् तद्वर्णाना सुराणाम्। आभाया = भास, भार-धारया=गुरुतरस्रोतसा। स्नपितानि=क्षालितानि, तत्तद्रागरञ्जितानीति यावत्। तद्गुणालङ्कार। आस्तरणानि = वर्तुलाच्छादनवसनानि यैस्तानि। मध्यस्थ-दीपद्योतेन = अन्तरालस्थापितदीपप्रकाशेन, द्योतित = प्रकाशित, यो दीप्ति-प्रचय = स्वस्वच्छविसमूह, तेन विहितम्=सम्पादितम्, वहुलम् चाकचक्यम् =चमत्कृतिर्येषु तानि। अधोमुखानि = निम्नाननानि, विन्यस्तानि=स्थापितानि, विविधानि=अनेकानि, काच-चषक-वृत्तानि = काच-निर्मित-पान-भाजनानि।

एक बालिश्त ऊँची तोशक बिछी थी, जिस पर सोने की जरी का काम था। उसके ऊपर वैसे ही तीन मसनद रखे हुए थे। सामने सोने की वर्तुलाकार मेज पर लम्बी नली वाला कडवी एव मधुर गन्ध से दिशाओ को सुरभित करने वाला हुक्का रखा था। एक ओर चाँदी की चौकी पर शराब की बोतले रखी थी। उन बोतलो के भीतर भरी हुई लाल, पीली और गुलाबी मदिरा से निकल रही कान्ति की (स्थूल) धारा आस्तरण (बिछौने) को स्नान करा रही थी (रगीन कर रही थी)। बोतले बीच मे रखे हुए दीपक की ज्योति से फैल रहे प्रकाशपुञ्ज से अत्यधिक चकाचौध उत्पन्न कर रही थी, और उनके चारो ओर औंधे मुँह करके रखे गए विभिन्न प्रकार के शराब पीने के उपयोग मे

मैरेय-जगल-वारुण-परिपूरितानि, ऊर्ध्वमुखानि काचपात्राणि, परितोऽष्टापद-रचितमष्टापदम्, रत्न-निर्मिता शारिवाटिका, दन्तिदन्त-सार-रचिता पाशका, परितो विलम्बमानेषु नानावर्ण-काच-कुसुम-स्तबकेषु ज्वलन्त शतशो दीपा, कोणेषु तूष्णी स्थिता व्यजन-युजो भरण्यभुजश्चाऽऽसन्।

शिव०—ओम्।

माल्य०—तत्र प्रविश्यैकत स्थित्वा किञ्चित् प्रतीक्षमाणायामेव पद्मिन्याम्, झटिति द्वित्रैवयस्यैर्वृत, ताम्बूल-चर्वण-चञ्चल-रदन-

---

माध्वीकम् = मधूकपुष्पजात मद्यम्, मैरेयम् = "मीरा" नामकोपवनिर्मित आसव, जगल, = मद्यकल्क, "मेदको जगल समौ" इत्यमर, वारुणी = सुरा, एताभि परिपूरितानि = भरितानि। ऊर्ध्वमुखानि = उन्मुखानि, काच-पात्राणि=वर्तुलानि, "बोतल" इति हिन्दी। अष्टापदेन=सुवर्णेन, रचितम् = निर्मितम्। अष्टापदम्=पाशक्रीडार्थ शारिकाधारस्वरूप चतुष्पाटीनामक वसनम्। "चौपड" इति हिन्दी। शारिवाटिका = पाशकप्रक्षेपार्थ निर्मितानि कोष्ठकानि। दन्तिदन्तसाररचिता = करिदशनमध्यनिर्मिता, पाशका = 'पासा' इति हिन्दी। विलम्बमानेषु = अधोमुखेषु स्थितेषु। नानावर्णानाम्, काचानाम्, कुसुमस्तबकेषु = कुसुमचित्रितगुच्छवदवभासमानेषु। व्यजनयुज = ताल-वृन्तकवाहिन। भरण्यम् = वेतनम्, भुञ्जत इति भरण्यभुजो वैतनिककर्मकरा। "भरण्यभुक् कर्मकर" इत्यमर।

वयस्यै = समानावस्थाकैर्मित्रै। ताम्बूलचर्वणे = वीटिकास्वादने,

---

आने वाले] कांच के प्याले रखे हुए थे। उन बोतलो मे माध्वीक, मैरेय, जगल और वारुणी भरी थी, तथा उनका मुंह ऊपर की ओर था। चारो ओर सोने की बनी हुई चौपड और उसके रत्नमय कोष्ठ (खाने) और हाथीदात के बने हुए पासे थे। चारो ओर लटक रहे अनेक रगो के झाड-फानूसो मे सैकडो दीप जल रहे थे, और कोनो मे पखे लिए हुए नौकर चुपचाप खडे थे।

शिवाजी—हां।

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी के अन्दर जाकर एक ओर बैठकर कुछ ही देर तक प्रतीक्षा करने के बाद शीघ्र ही दो तीन साथियो के सहित, ताम्बूल

च्छाया कनक-सूत्रमयी तूलिका। तदुपरि स्थापितास्तादृशा एव त्रय उपबर्हा। सम्मुखत सौवर्णे वर्तुलास्तरणे सुसज्जित प्रलम्बनल कटुमधुराऽऽमोदामोदित-दिगन्तर धूमपानयन्त्रम्। एकतो राजत-पीठिकाया विन्यस्तानि, अन्त स्थ—रक्त-पीताऽरुण—द्रवाभा-भार—धारा—स्नपिताऽऽस्तरणानि, मध्यस्थ—दीप—द्योत—द्योतित-दीप्ति-प्रचय—विहित—बहुल-चाकचक्यानि, अधोमुख—विन्यस्त—विविध-काच—चषक—वृत्तानि माध्वीक-

हस्ताग्रोच्छ्रिति। वितस्ति ="वित्ता" इति हिन्दी। कनकसूत्रमयी = सुवर्णतन्तुशिल्पसमेता। तूलिका="गद्दी" इति हिन्दी। उपबर्हा = उपधानानि। वर्तुलास्तरणे = गोलमञ्चिकाविष्टरे। प्रलम्बनलम् = दीर्घधूमाकर्षकम्। कटुमधुराभोदमोदितदिगन्तरम् = अतिमिष्टसुगन्धिसुरभितहरिदन्तरालम्। राजतपीठिकायाम्=रौप्यपीठे। अन्तस्थानाम् = अन्तवर्त्तमानानाम्, रक्तपीताऽरुणद्रवाणाम्, अर्थात् तद्वर्णाना सुराणाम्। आभाया = भास, भारधारया=गुरुतरस्रोतसा। स्नपितानि=क्षालितानि, तत्तद्रागरञ्जितानीति यावत्। तद्गुणालङ्कार। आस्तरणानि = वर्तुलाच्छादनवसनानि यैस्तानि। मध्यस्थदीपद्योतेन = अन्तरालस्थापितदीपप्रकाशेन, द्योतित = प्रकाशित, यो दीप्तिप्रचय = स्वस्वच्छविसमूह, तेन विहितम्=सम्पादितम्, बहुलम् चाकचक्यम् =चमत्कृतिर्येषु तानि। अधोमुखानि= निम्नाननानि, विन्यस्तानि=स्थापितानि, विविधानि=अनेकानि, काच-चषक-वृत्तानि = काच-निर्मित-पान-भाजनानि।

एक बालिश्त ऊँची तोशक बिछी थी, जिस पर सोने की जरी का काम था। उसके ऊपर वैसे ही तीन मसनद रखे हुए थे। सामने सोने की वर्तुलाकार मेज पर लम्बी नली वाला कडवी एव मधुर गन्ध से दिशाओ को सुरभित करने वाला हुक्का रखा था। एक ओर चाँदी की चौकी पर शराब की बोतले रखी थी। उन बोतलो के भीतर भरी हुई लाल, पीली और गुलाबी मदिरा से निकल रही कान्ति की (स्थूल) धारा आस्तरण (बिछौने) को स्नान करा रही थी (रगीन कर रही थी)। बोतले बीच मे रखे हुए दीपक की ज्योति से फैल रहे प्रकाशपुञ्ज से अत्यधिक चकाचौध उत्पन्न कर रही थी, और उनके चारो ओर औंधे मुँह करके रखे गए विभिन्न प्रकार के शराब पीने के उपयोग मे

मैरेय-जगल-वारुण-परिपूरितानि, ऊर्ध्वमुखानि काचपात्राणि, परितोऽष्टापद-रचितमष्टापदम्, रत्न-निर्मिता शारिवाटिका, दन्तिदन्त-सार-रचिता पाशका, परितो विलम्बमानेषु नानावर्ण-काच-कुसुम-स्तवकेषु ज्वलन्त शतशो दीपा, कोणेषु तूष्णी स्थिता व्यजन-युजो भरण्यभुजश्चाऽऽसन्।

शिव०—ओम्।

माल्य०—तत्र प्रविश्यैकत स्थित्वा किञ्चित् प्रतीक्षमाणायामेव पद्मिन्याम्, झटिति द्वित्रैवयस्यैर्वृत, ताम्बूल-चर्वण-चञ्चल-रदन-

माध्वीकम् = मधूकपुष्पजात मद्यम्, मैरेयम् = "मीरा" नामकौषधनिर्मित आसव, जगल, = मद्यकल्क, "मेदको जगल समौ" इत्यमर, वारुणी = सुरा, एताभि परिपूरितानि = भरितानि। ऊर्ध्वमुखानि = उन्मुखानि, काच-पात्राणि=वर्तुलानि, "वोतल" इति हिन्दी। अष्टापदेन=सुवर्णेन, रचितम् = निर्मितम्। अष्टापदम्=पाशक्रीडार्थं शारिकाधारस्वरूप चतुष्पाटीनामक वसनम्। "चौपड" इति हिन्दी। शारिवाटिका = पाशकप्रक्षेपार्थ निर्मितानि कोष्ठकानि। दन्तिदन्तसाररचिता = करिदशनमध्यनिर्मिता, पाशका = 'पासा' इति हिन्दी। विलम्बमानेषु = अधोमुखेषु स्थितेषु। नानावर्णानाम्, काचानाम्, कुसुमस्तवकेषु = कुसुमविचित्रितगुच्छवदवभासमानेषु। व्यजनयुज = तालवृन्तकवाहिन। भरण्यम् = वेतनम्, भुञ्जत इति भरण्यभुजो वैतनिककर्मकरा। "भरण्यभुक् कर्मकर" इत्यमर।

वयस्यै = समानावस्थाकैर्मित्रै। ताम्बूलचर्वणे = वीटिकास्वादने,

आने वाले) काँच के प्याले रखे हुए थे। उन बोतलो मे माध्वीक, मैरेय, जगल और वारुणी भरी थी, तथा उनका मुँह ऊपर की ओर था। चारो ओर सोने की बनी हुई चौपड और उसके रत्नमय कोष्ठ (खाने) और हाथीदाँत के बने हुए पासे थे। चारो ओर लटक रहे अनेक रगो के झाड-फानूसा मे सैकडो दीप जल रहे थे, और कोनो मे पखे लिए हुए नौकर चुपचाप खडे थे।

शिवाजी—हाँ।

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी के अन्दर जाकर एक ओर बैठकर कुछ ही देर तक प्रतीक्षा करने के बाद शीघ्र ही दो तीन साथियो के सहित, ताम्बूल

वदन , विस्फारिताभ्यामिव नयनाभ्या पिबन्निव, विविध-परिमल-परिमर्द्दिताग्रया घोणया जिघ्रन्निव च मायाजिह्म प्रविश्य पद्मिनी-दत्तदृष्टिरेव तूलिकामलञ्चकार ।

अथ ताम्बूल-परिमलैला-लवङ्ग-पत्रक-पटवास-दानादानैरेव कियन्त समयमतिवाह्य, सहास सस्मित सानुराग सकटाक्ष-विक्षेपण सभ्रूभङ्ग-सकन्धरा-परिवर्त्तन च पद्मिन्या सहाऽऽलप्य, मुहूर्त ससाधुवाद तद्गानानन्द चाऽनुभूय, पारितोषिक निजकण्ठहार समर्प्य, रजन्या प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचक समुरलीरणन भेरीनादमाकर्ण्य, सहचरान् विसृज्य, एकाकी सवृत्य, किञ्चित् समीपमुपसृत्य शनै

चञ्चला =चपला , रदना =दन्ता यस्य तादृश वदन यस्येति बहुव्रीहिगर्भित-बहुव्रीहि । अथवा रदना वदन च यस्येति केवलो बहुव्रीहिर्वा । विविध-परिमल-परिमर्दिताग्रया = नानासौरभपरिमथितप्रान्तया । घोणया = नासिकया । पद्मिनीदत्तदृष्टि = पद्मिनीनिरीक्षणनिरत ।

ससाधुवादम् = 'साधु गीतम्' इत्यादिकथनपुरस्सरम्, पारितोषिकम् =प्रसन्नेन सता दीयमानम् । प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकम् = आदिम-याम-

चवण के कारण चञ्चल दॉतो से युक्त मुख वाले मुआजिम ने पद्मिनी को विस्फारित नेत्रो से पीते हुए से, विभिन्न सुगन्धो (इत्र आदि) से अनुलिप्त अग्रभाग वाली नासिका से सूंघते हुए से, प्रवेश किया और उस पर ऑख गडाए हुए ही, तोशक को अलकृत किया (बैठ गया)।

तदनन्तर मुआजिम ने ताम्बूल, इत्र, इलायची, लवङ्ग, पत्ती सुगन्धित चर्ण इत्यादि के आदान-प्रदान मे ही कुछ समय व्यतीत कर हँसते-मुस्कराते, अनुराग दिखाते, कटाक्ष-पात करने, भौहो को टेढी करते तथा गर्दन घुमाते हुए पद्मिनी के साथ बातचीत कर कुछ देर तक उसके गीतो का आनन्द लेकर, उसके गीत की प्रशसा करते हुए, पुरस्कार मे अपने अपने गले का हार सौंपकर, रात्रि के प्रथम प्रहर के बीतने की सूचना देने वाले मुरली की तान मिश्रित भेरी शब्द को सुनकर साथियो को बिदा कर, अकेला

पद्मिनी पान-गोष्ठी-सहचार-स्वीकार-भिक्षा ययाचे। सा च स्मयमानेव लज्जमानेव सग्रीवा-भङ्गमवनत-मुखी, कपटह्लिया स्वत्र स्वस्मिन्नेव निविशमाना, तूष्णीङ्कारेणैवाऽङ्गीकारमाचक्षाणा चूर्णकुन्तलमूल कण्डूयितुमारेभे।

शिव०—ततः ?

माल्य०—ततो भ्रूभङ्गेन पद्मिनीसहचरानपि पुरुषान् द्वारदेशे प्रतीक्षितुमाख्याय, तेषु गतेषु द्वित्रासु पद्मिन्याश्चेटिकास्वेव वर्त्तमानासु मायाजिह्मो हाटकामत्रादुत्थाप्य पञ्चषा एला पद्मिन्या करे आर्पयत्। साऽपि सखीहस्तादेक रजत-सम्पुटमादाय, ततो वीटिकाद्वय

समाप्ति-बोधकम्। एकाकी = अद्वितीय। सवृत्य = भूत्वा। पानगोष्ठीसहचारस्वीकारभिक्षाम् = मद्यसभासम्मिलनाङ्गीकरणयाञ्चाम्, स्मयमानेव = ईषद्धास्यनिरतेव। अवास्तवत्वादिवोक्ति। कपटह्लिया = कृत्रिमत्रपया। तूष्णीङ्कारेणैव = मौनेनैव, 'मौन स्वीकारलक्षणम्' इति न्यायात्। आचक्षाणा = कथयन्ती। चूर्णकुन्तलमूलम् = कुटिलकेशमूलम्।

चेटिकासु = भृत्यासु। वर्तमानासु = तिष्ठन्तीषु। हाटकामत्रात् = सुवर्णपात्रात्। रजतसम्पुटम् = रौप्यनिर्मित ताम्बूलाधारभाजन लघुभूतम।

होकर, कुछ पास पहुँचकर, धीरे से पद्मिनी से मदिरा पान की गोष्ठी मे सम्मिलित होने की स्वीकृति की भिक्षा माँगी (शराब पीने मे साथ देने का आग्रह किया)। वह भी मुस्कराती सी, लजाती सी, गर्दन टेढी किए हुए, मुख नीचा किए बनावटी लज्जा से स्वय अपने मे ही समाती हुई, मौन से ही स्वीकृति की सूचना देती हुई अलको के मूल भाग को खुजलाने लगी।

शिवाजी—तत्पश्चात् ?

माल्यश्रीक—तदनन्तर भौह के सकेत से ही पद्मिनी के सहायक पुरुषो को भी द्वार पर प्रतीक्षा करने के लिए कहकर, उनके चले जाने पर पद्मिनी की दो तीन दासियो के रह जाने पर मुआज़िम ने स्वर्ण पात्र से पाँच छ इलायचियाँ निकाल कर पद्मिनी के हाथ मे समर्पित की। पद्मिनी ने भी एक

सुवासित पूग-चूर्ण ताम्रक-सार-लेह च तस्मै प्रायच्छत् ।

शिव०—साधित पद्मिन्या । तत ?

माल्य०—भगवन् ! स तु वीटिकामास्वादयन्नेव प्रेम—वार्ता विदधदेव, शनै शनैस्तन्द्रा-परवश इव, विनैव मैरेय-शराव-चुम्बन मदपराधीन इव, उपबर्हं पृष्ठेनाऽऽश्रयीकृत्य, शनै शिरोऽपि तस्मिन् समामज्य निद्रापरवशोऽभूत् ।

पद्मिनी तु मूर्छक–महौषध-मिश्रित किञ्चित् परिमळ नासा-पुटयो सयोज्य तमधिक मूर्छयित्वा, तस्य वस्त्राण्यपहृत्य स्वकीयेनाशुकेन तदङ्गमावृत्य, स्वय च पोटलिकास्थेनाऽपरेण दासीयोग्येन वाससा

ताम्रकसारलेहम् = "किमाम" इति प्रसिद्ध ताम्बूलोपयोगिद्रव्यम् ।

तन्द्रा = निद्रापूर्वरूपम्, आलस्यविशेषात्मकम् । मदपराधीन इव = मद-वशग इव । तस्मिन् = उपबर्हे । समासज्य = सयोज्य ।

मूर्च्छकम् = मूर्छाजनकम्, यत् महौषधम् = श्रेष्ठौषधि, तन्मिश्रितम् = तत्सपृक्तम् । परिमलम् = सुगन्धिद्रव्यम् । अपहृत्य = दूरयित्वा ।

सखी के हाथ से चाँदी की पिटारी लेकर, उसमे से पान के दो बीडे, सुगन्धित सुपारी का चूर्ण तथा किमाम मुआजिम को प्रदान किया।

शिवाजी—पद्मिनी ने काम बना लिया । फिर ?

माल्यश्रीक—महाराज ! वह पान का बीडा खाते-खाते ही, प्रेमालाप करते-करते ही, धीरे-धीरे आलस्य के वशीभूत हुआ सा, मदिरा का प्याल अधरो से लगाए बिना ही मतवाला सा, मसनद का सहारा लेकर, मसनद पर पीठ रखे हुए, कुछ देर बाद सिर को भी धीरे से उसी (मसनद) पर रखकर सो गया ।

पद्मिनी ने इसकी नाक मे मूर्च्छित करने वाली महौपधि से युक्त कोई सुगन्ध लगाकर उसको और अधिक मूर्च्छित कर उसके कपडो को उतार कर, अपने कपडो से उसे ढककर, तथा स्वय पोटली मे रखे हुए दासियो के

दासीभूय, बहुरूपविद्यया क्षणेन स्वाकृतिं तदाकृतिं च परिवर्त्य माया-जिह्मपटैरुपबर्हमेकं सम्भृङ्गार्य शाययित्वा, उत्तरीयेण चैकत आच्छाद्य, चेटीभि सह कलित-पद्मिनी-वेष मायाजिह्ममुत्थाप्य, वहिरानीय, पश्यतामेव भ्रान्तानां द्वारपालानाम्—"अहो ! महानद्य विहित सरक, कादम्बरीयमतितीक्ष्णा, अवदशमप्यास्वादयितु न पारयसि, प्रविश, शेष्व पालङ्क्यामेव"—इति सहचरीरालपन्ती शिबिकायामतिष्ठिपत् ।

एका चेटी द्वारपालमेक शनैरकथयत्—"अत्रभवान् युवराज शेते,

अशुकेन = प्रावरकेण । वाससा । दासीभूय = दासीनेपथ्यभूषिता भूत्वा, वहुरूपविद्यया = अनेकस्वरूपधारणकलया । क्षणेन, एतेन तद्विद्यायामति-पाटव बोधयति । परिवर्त्य = विनिमय कृत्वा । उपबर्हम = उपधानम् । सम्भृङ्गार्य=अलङ्कृत विधाय । शाययित्वा = प्रस्वाप्य । आच्छाद्य = सङ्गोप्य । भ्रान्तानाम् = भ्रमे निपतितानाम् । द्वारपालानामित्यत्र "षष्ठी चानादरे" इति षष्ठी । सरक = सुरापानम् । कादम्वरी = वारुणी । अवदशम् = भक्षणम्, "अवदशस्तु भक्षणम्" इत्यमर । मद्येन सह भक्ष्यमाण व्यञ्जनादि । शेष्व = स्वपिहि । पालङ्क्याम् = शिबिकायाम् । सहचरी = चेटी । आलपन्ती = कथयन्ती । अतिष्ठिपत् = अस्थापयत् । गृहीतदासीनेपथ्या कर्त्री, ग्राहित-पद्मिनीवेषा च कर्मत्वाश्रयीभूतेति वेदितव्यम् ।

योग्य वस्त्रो को धारण कर दासी का वेष बनाकर, वेषपरिवर्तन की विद्या से क्षणभर मे ही उसकी तथा अपनी आकृति को बदल कर, उसके कपडो से एक मसनद को सजाकर, लिटाकर और एक चादर से एक ओर ढककर, दासियो के साथ, पद्मिनी का वेष बनाए मुआ-जिम को उठाकर बाहर लाकर, भ्रम मे पडे हुए द्वारपालो के देखते-देखते ही "अहा ! आज बहुत मद्यपान हुआ, यह शराब बहुत तेज है, अधिक पी जाने के कारण आप भोजन का भी आनन्द नही ले पा रही है, प्रवेश कीजिए, पालकी मे ही सो जाइए" इस प्रकार कहते हुए उस दासी का वेष धारण किए हुए गौरसिंह ने पद्मिनी (के वेष मे मुआजिम) को पालकी मे डाल (बिठा) दिया । एक दासी ने एक द्वारपाल से धीरे से कहा "शाहजादा

तद् निर्मक्षिकमेव विधेय भवद्भि"। स च "अस्माकमन्त प्रवेष्टु नाऽधिकार, वय नग्नचन्द्रहासा अत्रैव पर्य्यटितु नियुक्ता" इत्युदतारीत्।

वाहकाश्च पल्यङ्कीमुत्थाप्य 'चल चले'ति चेलु, अनुचराश्च सहैव 'गच्छत गच्छते'ति जग्मु ।

शिव०—[आकाशे दृष्टि बध्वा] धिक् त्वा रे मायाजिह्म! सम्यग् गृहीतोऽसि!

माल्य०— भगवन्! ततो नल्व-द्वयान्तराले प्रतीक्षमाणानश्वानारुह्य त्यक्त-चेटी-वादकादि-वेषा वीरा सावधानतया मायाजिह्ममु ब्रह्मचारि-कुटीरे समानीतवन्त सन्ति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्।

मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् = जनसञ्चारशून्यम्। अन्त-प्रवेष्टुम् = अन्तराले गन्तुम्। नियुक्ता = अधिकृता। उदतारीत् = उत्तरयाम्बभूव।

नल्वयो = चतुश्शतहस्तमितदेशयो, "नल्व किष्कुचतुश्शतमि"त्यमर, द्वयम्, तदन्तराले।

सो रहे हैं, अत आप लोग वहाँ न जाएँ"। द्वारपाल ने उत्तर देते हुए कहा कि "हमलोगो को भीतर प्रवेश करने का अधिकार नही हे। हमलोग नगी तलवार लेकर यही टलहने के लिए नियुक्त है।"

पालकी ढोने वाले पालकी उठाकर 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिए, और अनुचर भी 'चलो-चलो' कहकर साथ ही चले गए।

शिवाजी—(आकाश की ओर दृष्टि लगाकर) अरे मुआज़िम! तुम्हे धिक्कार हे पूरी तौर से पकड मे आ गए।

माल्यश्रीक—महाराज! वहाँ से दो नल्व (आठ सौ हाथ) की दूरी पर प्रतीक्षा कर रहे अश्वो पर आरूढ होकर, दासी तथा तवलची आदि का वेष छोडकर हमारे वीर सैनिक सावधानी से उसे (मुआजिम को) ब्रह्मचारियो की कुटी मे ले आए है। अब श्रीमान् की जैसी इच्छा हो।

शिव०—अथ काऽवस्था तत्सेनासन्निवेशस्य ?

माल्य०—वीर ! प्रातरेव ते प्रनष्टमायाजिह्ममालोक्य, विवर्णा पृष्ठत एव प्रस्थितवन्त इत्यश्रौषम्।

शिव०—अथासौ माया-भवने स्थापनीयो भोजनासनादिभिश्च सत्कारणीय , अहमेनमवसरे द्रक्ष्यामि ।

अथोमित्युक्त्वा कुटीराभिमुख प्रस्थिते माल्यश्रीके, सिंहदुर्गाभिमुख च पुन प्रचलति महाराष्ट्रभूपरिवृढे, पश्चिमघट्ट-महापर्वत-श्रेणीत समुत्तीर्य, समुद्धूत-ध्वजा सन्देशहरा पञ्च सादिन फेनाविलवल्गै , ह्रेषा-विहित जयध्वनि-प्रातिनिध्यै , सचामरैरिवोत्थितपुच्छै ,

प्रनष्टम् = अदर्शनता गतम् "नशे षान्तस्ये"ति णत्वनिषेध । विवर्णा = म्लाना । दु खिन इति यावत् । मायाभवने = कूटागारे ।

अथ ओम् = तत स्वीकृत्य । "ओमाङोश्च" इति पररूपम् । महाराष्ट्र-भुव परिवृढे = प्रभौ । पश्चिमघट्टे = "घाटी" इति हिन्दी । ये महान्त पर्वता , तेषा श्रेणीत = परम्परात, समुद्धूतध्वजा = समुच्चालितवैजयन्तीका । फेनाविलवल्गै = डिण्डीरसपृक्तकविकाभि । ह्रेषया = हिणत्कारेण, विहित जयध्वनिप्रातिनिध्य यैस्तै । उत्थितपुच्छै , उत्थित पुच्छम् = लाङ्गूल येषा

शिवाजी—और उसके सैन्य शिविर की क्या दशा है ?

माल्यश्रीक—महाराज ! उसके सैनिक प्रात काल उसे (मुआजिम को) मरा हुआ समझकर उदासीन होकर पीछे की ओर ही लौट गए, ऐसा सुना है।

शिवाजी—उसे कूटागार मे रखा जाए, तथा भोजन और आसन आदि से सम्मानित किया जाए । मै अवसर आने पर उससे मिलूंगा ।

तदनन्तर "अच्छा" कहकर माल्यश्रीक के कुटी की ओर प्रस्थान करते ही तथा शिवाजी के पुन सिंहदुर्ग की ओर चलते ही, पश्चिम की घाटी की विशाल पर्वत श्रेणी से उतरकर, पताका फहराते हुए, सन्देश-वाहक पाँच अश्वारोही फेन से भीगी लगाम वाले, हिनहिनाहट से जय-ध्वनि का प्रतिनिधित्व करने वाले, पूंछ उठाए चामरयुक्त से, कानो को उठाए

कलित-कमल-दल-द्वयैरिवोर्ध्वकर्णैः, हर्ष-वर्ष-स्नातैरिव स्विन्नैः, घोटकैर्धावमाना दूरादेव 'जय जये'ति वादिनः पञ्च सादिनः समागताः। कोङ्कणेश्वरश्च तान् समासादित-शुभ-सवादानवगत्य, निजाजानेय-रश्मिमाकृष्य स्वगतिं निरुरोध, भ्रूसञ्ज्ञयैव च किमिति पप्रच्छ। तेषु जयध्वनि-धाराभिर्धराधरं धाराधरं धरां च ध्वनयत्सु, तेषामेकः समुपसृत्य साञ्जलि-बन्धं प्रणम्य प्रावोचत्—

"भगवन्! विजयस्व, विजयस्व, सर्वोऽपि खान-देशः, सकलोऽपि च पोत-परम्परा-प्रधावमान–सायात्रिक-सकौतुक-वीक्षित–पारावार-वीचि-व्रज-मार्जितः कोङ्कणदेशः श्रीचरणानां हस्तगतः सम्पन्नः।

तैः। सचामरैरिवेत्युत्प्रेक्षा। कलितकमलद्वयैरिव=धारितपत्रद्वितयैरिवेत्युत्प्रेक्षा। ऊर्ध्वकर्णैः=उद्गतश्रोत्रैः। हर्षवर्षस्नातैरिव=आनन्दवृष्टिनिर्णिक्तैरिव। पञ्च सादिनः=पञ्च सङ्ख्याका अश्वारोहाः। समासादितशुभसवादान्=समानीतहर्षसंदेशान्। अवगत्य=बुध्द्वा। धराधरम्=पर्वतम्। धाराधरम्=जलधरम्। धराम्=पृथिवीम्। समुपसृत्य=अन्तिकमागत्य।

पोतपरम्पराभिः=नौकाश्रेणीभिः, प्रधावमानैः=शीघ्रगतिभिः, सायात्रिकैः=पोतवणिग्भिः, सकौतुकम्=सकौतूहलम्, वीक्षितः=दृष्टः। पारा-

---

हुए कमल की दो पखुडियाँ धारण किए हुए से आनन्द की वर्षा से स्नान किए हुए के समान पसीने से भीगे घोडो पर बैठे हुए उन्हे दौडाते हुए, दूर से ही जय-जय करते आ गए। कोङ्कणेश्वर (शिवाजी) ने उन्हे शुभ समाचार लाने वाले समझ कर अपने घोडे की लगाम खीचकर अपनी गति को रोक दिया और भोह के सकेत से ही 'क्या है?' यह पूछा। उन्होने जयध्वनि की धारा से पर्वत मेघ और पृथ्वी को गुजा दिया, और उनमे से एक शिवाजी के पास पहुँचकर हाथ जोडकर प्रणामकर बोला—

"महाराज की जय हो, महाराज की जय हो। सम्पूर्ण खान देश आपके अधीन हो गया है। जहाजो पर बैठकर तीव्रगति से (समुद्र मे) गमन करने वाले समुद्री व्यापारियो द्वारा कुतूहल पूर्वक देखी जाने वाली समुद्र की लहरो के समूह से प्रक्षालित कोकण देश भी सारा का सारा आपके अधिकार मे आ

सागर-ससर्पि-प्लव-कूपकाना मस्तकेष्वपि महाराष्ट्रमण्डलाऽऽख-ण्डलस्यैव जय-पताका गगन-तल विलोडयन्ति । विजयता विजयता विजयता महाराज । सेनापतिना पत्रमिदमर्पितम्" इति कक्ष-गुटिकातो निस्सार्य पत्रमकमार्पयत् ।

शिव०—[पत्रावरणमुन्मुञ्चन्] अपि जानास्यवस्था सुरतयुद्धस्य ?

सन्देशहर —विजयता भट्टारक । एकेनैवाह्ना विजिता सर्वेऽपि भारतद्रुह । साम्प्रत सुरत-नगरस्यापि गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे प्राङ्गणे प्राङ्गणे च देवस्यैव विक्रम-कथा जेगीयते ।

वारवीचिव्रजमार्जित =जलधिलहरिव्रातधौत । सागरे ससर्पिणाम् = ससरताम् । प्लवानाम् =पोतानाम् , ये कूपका = "गुणवृक्षका" इत्यमर । "मस्तूल" इति हिन्दी । "जयपताका =विजयवैजयन्त्य । विलोडयन्ति = सङ्घर्षयन्ति । कक्षगुटिकात =बाहुमूलस्यपोटलिकात ।

पत्रावरणम् ="लिफाफा" इति प्रसिद्धम् । सुरते=गुर्जरदेशैकदेशे "सूरत"-इति नाम्नाऽधुना प्रसिद्धे, यद् युद्ध तस्य ।

भट्टारक =स्वामी । अह्ना = दिवसेन । देवस्य = भवत । विक्रमकथा=

गया है । समुद्र मे चलने वाले पोतो के मस्तूलो के ऊपर महाराष्ट्र देश के अधिपति आपकी ही विजयपताकाएँ आकाश तल को विलोडित कर रही हैं। महाराज की जय हो, जय हो, जय हो । सेनापति ने यह पत्र दिया है, "

यह कहते हुए उस अश्वारोही ने अपनी काँख से दबी पोटली से एक पत्र निकाल कर शिवाजी को दिया ।

शिवाजी—[लिफाफा खोलते हुए] सूरत के युद्ध की स्थिति जानते हो ?

सन्देशवाहक—महाराज की जय हो । एक ही दिन मे सभी भारतद्रोही जीत लिए गए। इस समय सूरत नगर के भी घर-घर, चबूतरे-चबूतरे तथा आगन-आँगन मे आपकी ही वीरता की गाथाएँ गाई जा रही हैं ।

शिव०—[पत्र प्रसाय मुद्रा विलोक्य, सहचरांश्चाऽऽनन्ददृशा सम्भाव्य] विलिखत्येतद् धीरेन्द्रसिंहो विजयध्वजापरनामा ।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि शिव-सहचरा सगुल्फाहति सवल्गास्फालन च सप्तीन् समीपमानीय 'किमिति किमिती'ति सोत्कण्ठाः समस्थिषत । ततस्त्वरितया दृशोर्ध्वमधश्चाऽऽलोक्य सहचरस्यैकस्य हस्ते दत्त्वा, समन्दस्मित पठितुमाज्ञप्तवान् । सोऽपि च "महाराष्ट्रराजस्य नास्ति लेखपाठादिषु पाटवम्"-इति स्मरन्, सपदि तद्धस्ताद् गृहीत्वा, वारमेक मनसैव पठित्वा झटिति पठितुमारब्धवान् यद्—

"विजयता पाथोधि-पय पूर-परिवर्ति-परश्शत-पोतस्थ-साया-

पराक्रमवार्ता । जेगीयते=वार वारमुद्घोष्यते । मुद्राम्=राजचिह्नम्, स्वीयाम् । सगुल्फाहति=गुल्फैरश्वताडनपुरस्सरम् । एव कृतेऽश्वा शीघ्रतया चलन्ति । सवल्गास्फालनम्=सकविकाऽऽकषणम् । सप्तीन्=हयान् । "हयसैन्धव-सप्तय" इत्यमर । सोत्कण्ठा =उत्का । समन्दस्मितम्=अत्यल्पमन्दहास-सहितम् । पाटवम्=दाक्ष्यम् ।

पयोधिपय पूरे=वारिधिवारिप्रवाहे, परिवर्त्तिषु=सञ्चलितेषु, पर-

शिवाजी—[पत्र खोलकर, मुहर देखकर और सहचरो को प्रसन्न दृष्टि से सम्मानित कर देखते हुए] धीरेन्द्रसिह, जिसका दूसरा नाम विजयध्वज भी है, उसने लिखा है ।

यह सुनकर शिवाजी के सभी साथी एँड मारकर लगाम खीचते हुए घोडो को पास लाकर, 'क्या है ? क्या हे?' इस प्रकार कहते हुए उत्कण्ठित हो गए । तदनन्तर शिवाजी ने उस पत्र के ऊपर तथा नीचे दृष्टि डालकर, एक साथी के हाथ मे देकर, मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, पढने को कहा । उसने भी 'महाराष्ट्र नरेश लिखने-पढने मे निपुण नही है', यह स्मरण कर तत्काल ही उस पत्र को उनके हाथ से लेकर, एकबार मन ही मन पढकर शीघ्र ही पढना प्रारम्भ कर दिया—

"समुद्र की जलधारा मे चलने वाले शताधिक पोतो पर बैठे हुए यात्रियो

त्रिक-समूह-जेगीयमान-कीर्तिचन्द्रिका-चुलुकन-चकोरीभूत-कोङ्कण-कल्याण-खानदेशाऽऽदि-महामण्डल-प्रजा-गण, सद्यश्छिन्न-प्रत्यर्थि-पृथिवीपति-कन्धरा-विगलत्-कवोष्ण-शोण-शोणित-प्रवाह-परितर्पित-शाकिनी-डाकिनी-भूत-प्रेत-मण्डली-विलोडित-ताम्रश्मश्रु-गण्ड-मुण्ड-माला-मण्डित-चण्डीक, सनातन-धर्म-रक्षण-सक्षण, रिपु-निकर-

---

शतोत्तेषु = शतादधिकेषु, पीतेषु, सायात्रिकाणाम् = पोतवणिजाम्, "सायात्रिक पोतवणिक्" इत्यमर। समूहेन, जेगीयमानाया = वार वारमुद्घोष्यमाणाया, कीर्त्तिचन्द्रिकाया = यश कौमुद्या, चुलुकने = चुलुकीकरणे पाने चकोरीभूत = चकोरपक्षिता गत, कोङ्कण-कल्याण-खानदेशाऽऽदिमहामण्डलप्रजागणो यस्यैवम्भूत। सद्यश्छिन्नाभ्य = तत्कालकृत्ताभ्य, प्रत्यर्थिपृथिवीपतिकन्धराभ्य = विरोधि-भूपाल-ग्रीवाभ्य, विगलता = क्षरता, कवोष्णेन = ईषदुष्णेन, शोणेन = रक्तवर्णेन, शोणितप्रवाहेण = रुधिरधारया, परितर्पितया = सन्तोषितया, तृप्तिमानीतया, डाकिनी-शाकिनीभूत-प्रेत-मण्डल्या, विलोडितानाम् = मथितानाम्, ताम्रश्मश्रुगण्डानाम् = रक्तवर्णकूर्चकपोलानाम्, यवनानाम्, मुण्डमालाभि = छिन्नमस्तकस्रग्भि, मण्डिता = भूषिता, चण्डी = तमोगुणप्रधाना शक्तिरखिलभुवनभक्षणसामर्थ्यशालिनी, येन स। "नद्यृतश्चे" ति कप्। डाकिन्यादयो वायवीय-शरीरोपेता श्रुतौ तदर्थभूतेषु पुराणेषु लोककथासु च चिरप्रसिद्धा। एतदनङ्गीकरणनिपुणास्तु लोकायतमात्रदृष्टय इति पुराणमतदीपिकाया विस्तरेण प्रतिपादितम्।

सनातनधर्मरक्षणे, सक्षण = सोत्सव। रिपुनिकरस्य = शत्रुसमूहस्य,

के समूह द्वारा गाई जा रही जिनकी कीर्ति रूपी चाँदनी के पान के लिए कोङ्कण, कल्याण, खानदेश आदि राज्यो की प्रजा चकोरी बन गई है, और जिन्होने तत्काल काटी गई शत्रु राजाओ की गर्दन से बहने वाले कुछ उष्ण, लाल रक्त के प्रवाह से तृप्त की गई शाकिनी-डाकिनी और भूतप्रेत की मण्डलियो द्वारा लुढकाए गए (मेहदी लगे होने के कारण) ताम्र वर्ण के (बालो से युक्त) दाढी, कपोल और मुण्डो की माला से चण्डी को भूषित (समर्पित) किया है, उन सनातन धर्म की रक्षा का महोत्सव

सम्पत्ति–सीमन्तिनी–धम्मिल्ल–वेल्लित–मल्लिका–मतल्लिका–माल्य–सुवासित–करपल्लव–तल्लज, परस्सहस्र–श्रीसवलित श्रीमहाराष्ट्र-मण्डलाऽऽखण्डल ।

श्रीचरणेषु विविध–प्रणति–तति–पुरस्सर सजयध्वनि सविजय-ध्वजान्दोलन च विनिवेदयत्येष विजयध्वजनामा सेनापति–पद–मनाथित, यद्–"ये हि कलित-मर्क-यात्रि-वेषा वार वार हीन-दीन-प्रजाश्च बाधमाना महाराष्ट्रैर्युयुत्सव आसन्, तेषु शतशो महाराष्ट्र–रिष्टि–धारा–तीर्थे मुक्ति गता, अपरे च पलायिता । अत्रात्पीयसी दिल्ली-

---

सम्पत्तिरेव = श्रीरेव, सीमन्तिनी = वनिता, तस्या धम्मिल्ले = केशबन्धे, वेल्लितस्य = दोलितस्य, मल्लिकामतल्लिकामाल्येन = प्रशस्तमल्लिका-स्रजा, सुवासित = सुरभितामापादित, करपल्लवतल्लज = प्रशस्तहस्त-किसलय यस्य स । परस्सहस्रश्रीसवलित = अत्यधिकशोभाशाली ।

सविजयध्वजान्दोलनम् = विजयवैजयन्तीहिन्लोलनपुरस्सरम् । सेना-पतिपदेन = सेनानीपदव्या, सनाथित = सनाथीकृत । कलित-मर्क–यात्रि-वेषा = धारित-मर्कपान्थनेपथ्या । मर्क "मक्का" इति प्रसिद्धयवनतीर्थम् । पुरा हिन्दूना तीर्थमिदमासीत् । अधुनाऽपि तत्र शिवलिङ्ग दृश्यते, तदेव च पूजयन्ति तत्र गता यवना इति श्रोत्रपरम्परानुस्यूता वार्ता । बाधमाना = पीडयन्त, महाराष्ट्राणा रिष्टिधारातीर्थे = खड्गधारापूतस्थले । मुक्ति गता = मृता । पलायिता =

करने वाले, शत्रु–समूह की सम्पत्ति रूपी स्त्री के केशपाश मे झूलने वाली मल्लिका के उत्तम पुष्पो की माला से सुगन्धित किए गए उत्तम करपल्लव वाले, महाराष्ट्र–मण्डल के इन्द्र (अधिपति), अनन्तश्रीविभूषित शिवाजी की जय हो ।

श्रीचरणो मे अनेक वार प्रणामपूर्वक जय-ध्वनि के साथ, विजय-पताका फहराते हुए आपके द्वारा दिए गए सेनापति द्वारा सनाथ किया गया विजय-ध्वज निवेदन करता है कि—

"जो यवन हाजियो (मक्का की यात्रा करने वालो) के वेष धारण कर दीन-हीन प्रजा को बार-बार पीडित करते हुए मराठो से युद्ध करना चाहते थे, उनमे से सैकडो मराठो की तलवार की धारा के तीर्थपर मुक्त हो गए,

कलङ्केन प्रेषिता, अपरा च सुरताधिष्ठितैर्यवन-त्रणिग्भिर्योजिता चमूरप्यस्माभिर्योध्दु चन्द्रहासात् कोशेभ्य कर्षितवती। तया सह श्रीमच्चरणौ स्मृत्वाऽस्मद्वीरैर्युद्धमारब्धम् मुहूर्त तुमुलमभूज्जन्यम्। परतश्चोद्यतखड्गैरस्मद्भटैर्वेभिद्यमाना केचन पुरन्दर-मन्दिरम्, अपरे च गिरिकन्दर भेजु। साम्प्रतमस्मद्धस्तगता शत पोता, सुरतनगरम्, खानदेश, निखिलश्च कोङ्कणदेशोऽस्ति। तदत्र श्रीचरणा प्रमाणम्"–इति।

तदाकर्ण्याऽतिप्रसन्न क्षणमालप्य, "अथाऽऽगम्यताम्, सिंहदुर्गे

युद्धमपहाय दूर गता। सुरताधिष्ठितै ="सूरत" नगरनिवासिभि। योजिता =सङ्कलिता। चमू =वाहिनी। कोशेभ्य =असिधानीभ्य। कर्षितवती, सङ्ग्रामोद्यताऽभूदिति यावत्। मुहूर्त्तम्=कियत्कालपर्यन्तम्। तुमुलम्=विरलम्, जन्यम् =युद्धम्। उद्यतखड्गै =उच्छ्रितासिभि। वेभिद्यमाना =चेच्छिद्यमाना। पुरन्दरमन्दिरम्=इन्द्रसदनम्, स्वर्गम्, गिरिकन्दरम्=पर्वतदरीम्। पोता =महानौका। जलयानानीति यावत्।

(तलवार के घाट उतर गए) और अन्य भाग गए। यहाँ थोडी सी दिल्ली-कलङ्क द्वारा प्रेषित तथा दूसरी सूरत मे रहने वाले यवन व्यापारियो द्वारा सगठित सेना ने हम लोगो से लडने के लिए म्यान से तलवार खीच ली। उसके साथ, श्रीमान के चरणो का नाम लेकर, हमारे बहादुरो ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ, अन्त मे तलवार उठाए हुए हमारे बहादुरो द्वारा काटे जाते हुए कुछ शत्रु इन्द्रपुरी (स्वर्ग) तथा दूसरे पहाडो की गुफाओ मे भाग गए। इस समय सौ बडी नौकाएँ, सूरत नगर, खानदेश तथा समस्त कोङ्कण प्रदेश हमारे हाथ (अधिकार) मे है। आगे आप की जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय।

यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होकर कुछ देर बात-चीत करके "अच्छा आओ,

लप्स्यत उत्तरपत्रम्" इति कथयित्वा, इङ्गितज्ञैः, समीरं ग्रसद्भिरिव विपदङ्गणरिङ्गणमीहमानैरिव तुरङ्गैः सपदि सिंहदुर्गमायात ।

* * *

सन्यासिकुटीरे तु दिल्लीश्वर-तनयं तथाऽऽनीतमालोक्य, ब्रह्मचारिगुरुणा सह सर्वेऽपि तत्पार्श्वस्था मुमुदिरे। गौरं च पर्य्यायत सर्वेऽपि सानन्दं परिषस्वजिरे। गौरस्तु सुप्तस्यैव तस्य पुरुषरूपं परिवर्तयामास ।

तस्मिन् गततन्द्रे च सर्वेऽपि सादरं "जय जीव" इति कथयन्त, "आज्ञप्यता काऽपि सेवा दिल्ली-वल्लभ-कुमारेण" इति प्रोचु ।

लप्स्यते = प्राप्स्यते। इङ्गितज्ञैः = अभिप्रायवेदिभिः। समीरम् = वायुम्। ग्रसद्भिः = लिहद्भिः। वायुतोऽप्यधिकत्वरितगतिभिरिति यावत्। विपदङ्गणे = विपत्तिचत्वरे, रिङ्गणम् = भ्रमणम्, ईहमानैः = चेष्टमानैः, तुरङ्गैः = घोटकैः।

× × ×

पर्य्यायत = क्रमतः। परिषस्वजिरे = पर्याशिश्लिषुः। पुरुषरूपम् = नरनेपथ्यम्।

गततन्द्रे = विनष्टमोहे, विधूतालस्ये। आज्ञप्यताम् = आदिश्यताम्।

इस पत्र का उत्तर तुम्हे सिंह दुर्ग मे दिया जायेगा", यह कहकर संकेत समझने वाले, (वायु से भी अधिक तेज चलने के कारण) वायु को ग्रसित करते हुए से, आकाश के आँगन मे विचरण करने की इच्छा करते हुए से घोडो पर सवार (साथियो के साथ शिवाजी) शीघ्र ही सिंह दुर्ग पहुँच गए।

* * * *

सन्यासियो की कुटी मे दिल्लीश्वर के पुत्र को उस प्रकार लाया हुआ देखकर ब्रह्मचारियो के गुरु सहित पास मे बैठे सभी लोग प्रसन्न हुए। और सभी ने बारी-बारी से प्रेमपूर्वक गौरसिंह का आलिङ्गन किया। मुआजिम के सोते ही सोते गौरसिंह ने उसकी पद्मिनी की आकृति पुरुष की आकृति मे बदल दी।

उसकी तन्द्रा समाप्त होने पर सभी आदरपूर्वक 'जय जीव' कहते हुए "दिल्लीश्वर के कुमार कोई आज्ञा दे" यह बोले।

स च वार वारमाश्चर्यपुषी तन्द्रा–सम्पर्क–जुषी चक्षुषी चिरा–ऽऽलस्य–मन्थराभ्या हस्ताभ्या सम्मर्द्य, क्षणमात्मानम्, क्षण कुटीरम्, क्षण परित परिसर्पिणो जनान् , क्षण सान्द्र–श्यामता–श्यामीकृत-दिग्वलय वनम् , क्षण च क्वचन कलित–विकोश–खड्गैर्भटै, क्वचन ब्रह्मपाठ-परैर्ब्रह्मचारिभि , क्वचन श्मश्रु-कूर्च-केश-जाल-जटालैर्जटिलै , क्वचन बाहुयुद्धमभ्यस्यद्भि खड्ग-चालन-चातुरीमासादयद्भिर्व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासैर्धूलि-धूसरै पटुभिर्बटुभिर्विहितविविधक्रीड शाद्वलम्, क्वचन सदक्षाऽक्षिकुञ्चन भुशुण्डीमुत्तोलमुत्तोल चिञ्चा-

"मिता ह्रस्व" इति ह्रस्व । आश्चर्यपुषी=विस्मयाकुले । तन्द्रा-सम्पर्क-जुषी= निद्राद्यवस्थाससगसेविके । चिरालस्येन मन्थराभ्याम् = शिथिलप्रायाभ्याम् । सम्मर्द्य = मर्दन विधाय । आत्मानम् = स्वम् । परिसर्पिण = गच्छत । सान्द्रया = घनीभूतया श्यामतया = कार्ष्ण्येन, श्यामीकृतम् = कृष्णता-मापादितम् , दिग्वलयम् = हरित्समूहो यस्मिस्तादृशम् । कलितविकोश-खड्गै = धारितनग्नाऽसिभि । ब्रह्मपाठपरै = वेदाध्ययननिरतै । जटिलै.= जटायुतै साधुभि । बाहुयुद्धम् = नियुद्धम् , "कुस्ती" इति प्रसिद्धम् । आसादयद्भि = प्राप्नुवद्भि । व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासै =शरीरपुष्ट्यर्थक-विधिविशेषवर्धितोच्छ्वासै । सदक्षाक्षिकुञ्चनम् = दक्षिणनयनसङ्कोचनपुर-

मुआजिम भी आश्चर्य चकित और अलसाई आँखो को बहुत देर के आलस्य के कारण शिथिल हाथो से बार-बार मलता हुआ, कभी अपने को, कभी कुटी को, कभी चारो ओर चलते फिरते लोगो को, कभी घनी श्यामलता से दिङ्मण्डल को श्यामल करनेवाले वन को, और कभी कही नगी तलवार लिए वीरो, कही वेदपाठ मे तल्लीन ब्रह्मचारियो, कही दाढी मूंछ और सिर के बालो के जाल वाले जटाधारियो, और कही कुश्ती का अभ्यास कर रहे, तलवार चलाने मे कुशलता प्राप्त कर रहे, व्यायाम करने के कारण लम्बी उच्छ्वास छोड रहे धूलि से धूसर हुए कुशल ब्रह्मचारियो की विविध प्रकार की क्रीडाओ के आश्रय भूत घास के मैदान को, और

किशलयाग्रेषु लक्ष्यमनुसन्दधतो वीरांश्चाऽऽलोकमालोक चकितचकितो भीतभीतो लज्जितलज्जितो वाचयम एवाऽवर्तिष्ट ।

तावदागत्य माल्यश्रीको गौरमालिङ्ग्य मुहुर्तमालप्य युवराजमपि "श्रीमतो निवासाय प्रासाद एकोऽतिरुचिर प्रस्तुतोऽस्तीति शिबिका सज्जीकृत्याऽऽनीतवानस्मि, करुणया सनाथ्यताम्। तत्रैव च यथोचित-सेवाऽऽदेशैरस्मादृशोऽनुगृह्यता च" इति सादरमालपत् ।

स तु हाटक-करहाट-च्छवि-कपोलो लोलतारको मुखमवनमय्य,

स्सरम् । उत्तोलमुत्तोलम् = उत्थाप्योत्थाप्य । चिञ्चाकिसलयाग्रेषु = तिन्तिडीदलाग्रेषु । लक्ष्यम् = शरव्यम् । चिञ्चादलाना तनुत्वात् तान्येव लक्ष्यता नीत्वा प्रावीण्य लब्धुमभिलषन्तीति भाव । अनुसन्दधत = गवेषयमाणान् । वाचयम = मौनी । अवर्तिष्ट = स्थित ।

आलिङ्ग्य = आश्लिष्य । प्रासाद = हर्म्यम् । करुणया = दयया । सव्यङ्ग्य विनयप्रदर्शनम् । यथोचितसेवादेशै = यथायोग्यशुश्रूषणादेश । अनु-गृह्यताम् = अनुग्रहपात्र क्रियताम् ।

हाटक-करहाट-च्छवि-कपोल =सुवर्ण-शिफाकन्दक-कान्तिकगण्डस्थल ।

कही दाहिनी आँख बन्द कर बन्दूक उठा-उठा कर इमली की कोपलो के किनारो पर निशाना साधते हुए वीरो को देख-देख कर अत्यन्त चकित भयभीत ओर लज्जित होकर मौन ही साधे रहा (चुप ही बैठा रहा) ।

तब तक माल्यश्रीक ने आकर गौरसिंह का आलिङ्गन कर कुछ देर बात करके आदर पूर्वक शहजादा मुआजिम से कहा—

"श्रीमान के निवास के लिए एक अत्यन्त सुन्दर प्रासाद प्रस्तुत है । म पाल्की सजाकर ले आया हूँ, कृपा कर उस प्रासाद को अलकृत कीजिए, आर वही पर उपयुक्त सेवा के लिए आदेश देकर हम जैसो पर अनुग्रह कीजिए ।

स्वर्णिम कमलनाल की कान्ति वाले कपोलो वाले चञ्चल पुतलियो वाले

विविधभाव-भावना-भङ्ग-भज्यमान-भावो नोमिति, अथ वा नेति अच-कथत्, तन्निर्दिष्टा शिबिकामेव चाऽऽरोहत् ।

एव त सह नीत्वा याते माल्यश्रीके, शाद्वले कटमास्तीर्योपविष्टेपु सब्रह्मचारिगुरुषु तत्रत्येष्वखिलेषु, प्रजागर-मन्थरोऽपि क्रियासमभि-हारेणाऽऽहूयमानो गौरसिहस्तत्राऽऽगत्य गोष्ठीमध्य भेजे ।

कथमिव किमिव सवृत्त गतयामिन्याम् ? कै कौशलै काभि-र्मायाभि कैरुपायै काभिर्विद्याभि कैर्नियोगै काभि प्रवञ्चनाभि कै प्रकारै काभिश्च घटनाभि आनीतवानसि मायाजिह्ममेतम् ?

"कराहट शिफाकन्द" इत्यमर । पीतगण्डस्थल इति यावत् । विविधभावा-नाम् = अनेकविधविचाराणाम्, भावनानाम् = वासनानाम्, भङ्गेन = तरङ्गेण, भज्यमान = खण्डयमान, भाव = अभिप्रायो यस्य स । नानाप्रकारविचारा-ऽऽविर्भावतिरोभावाभ्या अप्रकटितनिजाभिप्राय इति भाव । तन्निर्दिष्टाम् = तत्प्रदर्शिताम् ।

प्रजागरेण = दीर्घया जागृत्या, मन्थर = अलस । क्रियासमभिहारेण = पौन पुन्येन । आहूयमान = आकार्यमाण । भेजे = सिषेवे ।

कौशलै = चातुर्यै । मायाभि = छलै । नियोगै = अनुष्ठानै । प्रवञ्च-

और अनेक भावनाओ की तरगो से खण्डित विचारो वाले मुआजिम ने भी न तो हाँ कहा, और न नही कहा । केवल मुख नीचे करके माल्यश्रीक द्वारा निर्दिष्ट पालकी पर सवार हो गया ।

इस प्रकार मुआजिम को साथ लेकर माल्यश्रीक के चले जाने पर घास पर चटाई बिछाकर वहाँ रहने वाले सभी ब्रह्मचारियो एव गुरुओ के बैठ जाने पर जागरण से शिथिल होते हुए भी बार-बार बुलाने पर वहाँ पहुँच कर गौरसिह गोष्ठी के बीच मे बैठ गया ।

"विगत रात्रि मे कैसे क्या हुआ ? तुम इस मुआजिम को किस कुशलता से, किन मायाओ से, किन उपायो से, किन विद्याओ से, किन क्रियाओ से, किन प्रवञ्चनाओ से, किन तरीको से और किन घटनाओ से, ले आए हो ?

कथ दीपोद्योत-विद्योत-चतुर्गुणित—चाकचक्य—चञ्चच्चन्द्रहास—भासा भयानकाना प्रहरिणा चक्षु पु रेणुका—राशिमाहितवानसि ?, कथ वा गगनोद्भेदाभ्यासेनेव निशिततरैर्वाताऽऽघात-क्षालितैरिव चमत्कुर्वद्भि परित प्रसर्पिभिर्मयूख-पूरैरिव विहिताऽऽतपत्र-विडम्बनैर्भल्लैर्भयङ्कर-करान् प्रतीहारान् मोहितवानसि ? इति सकुतूहल सोल्लास सादर साश्चर्य च पृष्टवत्सु तेपु, सड्क्षिप्यैव 'एवमेवमि"ति सर्वं यथातथ सूचितवान् । तदाकर्ण्य साधुवादवष कुटीरमापूरयत्स्वखिलेषु, ब्रह्मचारिगुरुराह—"कथ न स्या ? परमवीरवरस्य खड्गसिहस्य

नाभि =प्रतारणाभि । दीपोद्योतस्य=दीपप्रकाशस्य, विद्योतेन=प्रभया, चतुर्गुणितचाकचक्यानाम्=वृद्धिङ्गतचमत्कृतीनाम्, चञ्चताम्, चन्द्र-हासानाम्=खड्गानाम्, भासा=तेजसा, भयानकानाम्=भीतिप्रदानाम्। प्रहरिणाम्=यामिकानाम् । रेणुकाराशिम्=धूलिनिकरम् । आहितवान् =दत्तवान् । "आँख मे धूल झोका" इति हि दी । गगनोद्भेदाभ्यासेनेव= नभोमण्डल विदारणपरि शीलनेनेव । निशिततरै=अतितीक्ष्णै । वाताघात-क्षालितैरिव=वायुताडननिर्णिक्तैरिव। मयूखपूरै=दीधितिव्रजै। विहितातपत्र-विडम्बनै =कृतच्छत्रानुकृतिभि, भल्लै =अस्त्रविशेषै । भयङ्करकरान्= भयानकहस्तान् । सोल्लासम्=सहषम् । सड्क्षिप्य=तनूकृत्य । साधुवाद-

दीप के प्रकाश की प्रभा के कारण चौगुनी चकाचौध उत्पन्न करने वाली चञ्चल तलवारो की चमक से भयानक दिखाई पडने वाले पहरेदारो की आँखो मे तुमने धूल कैसे झोक दी ? और मानो आकाश को चीरने के अभ्यास से तीक्ष्णतर, मानो वायु के आघात से धुले हुए, चमकते हुए, चारो ओर फैल रही किरणो के समूह से छातो का तिरस्कार करने वाले भालो को लिये होने से भयङ्कर पहरेदारो को कैसे मोहित कर लिया ?"

इस प्रकार सभी लोगो के कुतूहलपूर्वक, उल्लासपूर्वक, आदरसहित और आश्चर्य से पूछने पर गौरसिंह ने सक्षेप मे यह "इस प्रकार हुआ" यह बनाते हुए सारा वृत्तान्त ज्यो का त्यो कह सुनाया । उसे सुन कर सब ने कुटी को प्रशसात्मक वाक्यो से गूँजा दिया । ब्रह्मचारिगुरु ने कहा—

पुत्रोऽसि, पिता तव बाल्य एव व्याघ्रमृगया-व्यसनी समभूत्, यौवने च बहुभिश्चतुर्गुणबलैरयुध्यत, वार्द्धके च रणाजिर एव वीरगति गतो मार्तण्ड-मण्डल भित्त्वा नन्दनवनविहारमाससाद ।"

ततस्तु अतिकुतूहल-समाविष्टेन गौरेण सह तस्यैवमभूवन् वाचा प्रचारा —

गौर०—अपि मम तातचरणै सहाऽऽसीदार्याणा परिचय ?

ब्रह्मचारिगुरु —[किञ्चिद् नि श्वस्य] आसीदतितराम् ।

गौर.—[अधिकाधिक-कौतुक-ग्रस्तानामखिलाना मुखमवलोक्य]

आर्य ! क्षम्यता प्रौढिरेतस्य भवदनुकम्पापात्रस्य। एष चिरराय भवन्त ब्रह्मचारिगुरुनामधेय महाराष्ट्रराजस्य शुभोदयोदर्काभिलाषिण

वर्षै =धन्यवादवृष्टिभि । आपूरयत्सु = ध्वनयत्सु । व्याघ्रमृगयाव्यसनी= व्याघ्राखेटनिरत । वार्द्धके = वृद्धावस्थायाम् । रणाजिरे = सङ्ग्रामाङ्गणे । मार्त्तण्डमण्डलम् = भानुबिम्बम् । भित्त्वा = द्विधा कृत्वा । तत एव मार्गादित्यर्थ । नन्दन-वन-विहारम् = इन्द्रकाननक्रीडाम् । आससाद = प्राप ।

अतितराम् = अत्यन्तमधिकम् ।

प्रौढि = धाष्टर्यम् । चिररात्राय = चिरम् । ब्रह्मचारिगुरु इति नामधेय यस्य तम् । न तु नामान्तर किमप्यस्ति विज्ञातमस्मामि । शुभोदयोदर्का-

---

"क्यो न हो, परमवीर खड्गसिंह के पुत्र हो। तुम्हारे पिता बचपन मे ही शेर का शिकार किया करते थे। युवावस्था मे उन्होने अनेक वार चौगुने बलवालो से युद्ध किया था और वृद्धावस्था मे रणभूमि मे ही वीर गति प्राप्त कर सूर्य-मण्डल को भेद कर नन्दन वन की सैर की ।"

तदनन्तर अत्यन्त कुतूहलाक्रान्त गौरसिंह के साथ ब्रह्मचारिगुरु की इस प्रकार बाते हुई —

गौरसिंह—क्या मेरे पिता से आप का परिचय था ?

ब्रह्मचारिगुरु—[नि श्वास पूर्वक] हाँ, बहुत अधिक परिचय था ।

गौरसिंह—[सभी के अत्यधिक उत्सुकता-पूर्ण मुखो की ओर देखकर] आर्य ! अपने इस कृपापात्र की धृष्टता क्षमा कीजिये । मैं बहुत दिनो से आप को ब्रह्मचारिगुरु नामक महाराष्ट्रनरेश के भावी अभ्युदय की कामना वाला

कोङ्कण-पृथिवी-परिवृढस्य परमस्नेहपात्र विक्रम-व्यापार-व्यत्यायित-यौवन सदा सदाचार-प्रचार-पर हविष्यभोजन विविध-देवाऽऽराधना-ऽनुष्ठानैकतान कञ्चन क्षत्रिय-कुल-कलश मन्यते ।

महाराष्ट्रभाषा चैव मधुरतया सुस्पष्टमुच्चार्य्याऽऽलपति भवान्, यन्न भवत्यल्पीयस्यपि मे विचिकित्सा भवतो महाराष्ट्रदेशीयत्वे । महाराष्ट्रदेशीयमहाशयेन च सहोदयपुरनिवासिनो मम तातपादस्य दुर्घट परिचय । तद् यावद् विशकलय्य नोच्यते, तावन्न शाम्यत्युद्वेग शङ्कापङ्कपङ्किलस्य हृदयस्य । तद् यदि नाम न भवेत् किमपि गोप-

भिलाषिणम् = उत्तरकालिकाभ्युदयकामनावन्तम् । "उदक फलमुत्तरम्' इत्यमर । कोङ्कणपृथिवीपरिवृढस्य = कोङ्कणधराधिनाथस्य । विक्रम-व्यापारेषु=पराक्रमकर्त्तव्येषु, व्यत्यायितम् = क्षपितम्, यौवन येन तत् । सदा = सर्वस्मिन् काले । सताम्, आचाराणाम्, प्रचारपरम् = विवर्द्धनरतम् । विविधानाम् = अनेकेषाम्, देवानाम् = हनूमन्महादेवादीनाम्, आराधने = सेवायाम्, अनुष्ठाने = मन्त्रादिजपे, एकतानम् = तत्परम्, "एकतानोऽनन्य-वृत्ति" इत्यमर । विविधपदस्य आराधनानुष्ठानान्यतरविशेषणत्व वा । क्षत्रिय-कुलकलशम् = क्षात्रान्वयावतसम् ।

अल्पीयसी = अतिन्यूना । विचिकित्सा = सशय । दुर्घट = दुखेन भवितु योग्य । विशकलय्य = स्पष्टीकृत्य । उद्वेग = मानसमौत्सुक्य जिज्ञासा-

कोङ्कण देश के नरेश का परम-प्रेम-पात्र, बहादुरी के कामो मे यौवन को व्यतीत करने वाला निरन्तर सदाचार के प्रचार मे तत्पर, हविष्यान्न का भोजन करने वाला तथा अनेक देवताओ की आराधना और अनुष्ठान मे तल्लीन क्षत्रिय कुल का कलश (भूषण) समझता हूँ ।

और आप मराठीभाषा इस प्रकार मधुर एव स्पष्ट उच्चारण करके बोलते है कि आप के महाराष्ट्रीय होने मे मुझे जरा भी सशय नही होता । महाराष्ट्र मे रहने वाले आप के साथ उदयपुर के निवासी मेरे पिता जी का परिचय होना कठिन है । अत जब तक आप स्पष्ट करके विस्तार से सारी बाते नही बतायेगे, तब तक सन्देह के कीचड मे फँसे हुए मेरे हृदय का उद्वेग शान्त नही होगा । तो

नीय नीतिविरुद्ध वा, तन्मादृशानुचरानुरोधान् कृपया निर्वचनीयोऽय वृत्तान्त "इत्यभिधाय मौनमाकलयति गौरे,मकुतूहलमेकाग्रेपु चाखिलेपु, क्षण स्थिरीभूय, उच्छ्वस्य च समारभत व्याहर्तु ब्रह्मचारिगुरु ।

ब्रह्म०—नास्म्यह महाराष्ट्रदेशीय । जनिभूर्मम राजपुत्रदेश । महाराज-श्रीजयसिंह-निर्मिताद् जयपुर-नगराद् आरादेवाऽऽश्वीन एको 'जितवार'-नामा ग्रामोऽस्ति, तदध्यक्ष एवाहमासम् । मथुरायात्रा कुर्वत खड्गसिंहस्य मम च पित्रो स्नेह प्रगाढो जात इति तन्मूलक एवाऽऽवयोरपि परम प्रेमा वभूव । सोऽपि बहुवार मम भवन मनाथितवान् । अहमपि चानेकशस्तत्र गत इति ।

समुत्थम्, गोपनीयम् = रहस्यम्, अवाच्यमिति यावत् । निर्वचनीय = नि सन्दिग्ध वक्तव्य । एकाग्रेषु = सयतमन सु । उच्छ्वस्य = दीर्घश्वस गृहीत्वा । व्याहर्तुम् = वक्तुम् ।

जनिभू = जन्मभूमि । महाराजेन, जयसिंहेन, निर्मितात् = निर्मापितात्, वासितादिति यावत् । आश्वीन = अश्वेनैकेन दिनेन गन्तु योग्य । "त्रिष्वाश्वीन यदश्वेन दिनेनैकेन गम्यते" इत्यमर । "अश्वस्यैकाहगम" इति सत् । "जितवार" नामा = साम्प्रत "जटवारा" इति स्यात, पिता च पिता च = पितरौ, तयो । प्रकृतेऽस्यैवार्थस्य विवक्षितत्वात् "पुमान् स्त्रिया" इतिनैकशेप । प्रगाढ = अत्यधिक, प्रेमा = स्नेह प्रेमा ना प्रियताहार्द प्रेमा" इत्यमर ।

यदि कुछ गोपनीय या नीति विरुद्ध न हो, तो मुझ जैसे अनुचर के अनुरोध से कृपया इस वृत्तान्त को स्पष्ट कीजिये।" इतना कहकर गौर के मौन हो जाने पर और सभी लोगो के कौतूहल पूर्वक एकाग्र हो जाने पर, क्षण भर स्थिर हो उच्छ्वास लेकर ब्रह्मचारिगुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

ब्रह्मचारिगुरु—म महाराष्ट्रीय नही हूँ । मेरी जन्मभूमि राजपूताना है। महाराज जयसिंह द्वारा निर्मित जयपुर के समीप ही एक दिन मे घोडे से पहुँच सकने की दूरी पर एक जितवार (जटवारा) नामक गाँव है। मैं उसी का अध्यक्ष था। मथुरा की यात्रा करने मे खड्गसिंह के पिता तथा मेरे पिता मे परस्पर गहरी मित्रता हो गई। अत वहीं से हम दोनो मे भी अत्यधिक सौहार्द हो गया। वे भी बहुत बार मेरे घर आए, और मैं भी कई बार उनके घर गया।

गौर०—अप्यापृच्छे। अपि कथयिष्यति कथमिहाऽऽयातो भवान् ? कथं वा त्यक्तवान् निजमाधिपत्यम् ?

ब्रह्मचारिगुरु—गौर! वयं महाराज-जयसिंहस्य अधीना बान्धवा सेनानियमेन भूमिभुज। अकस्माज्ज्वरितेषु कतिपयेषु सादिषु बहुभि कर्णेजपैरीर्ष्यापरवशै किमप्युक्तोऽसूचितयात्रो महाराज समायात। सादिसङ्ख्यामूनामवलोक्य विनैव विचारं मम सर्वस्वमाहर्तुं स्वमभाया-मकथयत्। मम पत्नी तु ततोऽपि पूर्वमेव स्मृतिमात्रविषया संवृत्ता। ततोऽहं दशवर्षदेश्यं रामसिंहं तनयं सह नयन् रामेश्वर-दर्शनार्थं प्रचलित।

अपि = पुनरपि। आपृच्छे = पृच्छामि। "आङि नु पृच्छ्योरि"त्यात्मनेपदम्। वर्तमानसामीप्ये लट्। आधिपत्यम् = ग्रामाधीशताम्।

भूमिभुज = "जागीरदार" इति ख्याता। ज्वरितेषु = ज्वरग्रस्तेषु, ज्वलितेषु वा पाठ। कर्णेजपै = पिशुनै, निन्दाकारिभि। ईर्ष्यापरवशै = गुणेषु दोषाविष्करणपरायणै। असूचितयात्र = अबोधितागमन। ऊनाम् = अल्पाम्। सर्वस्वम् = निखिलं वित्तजातम्। स्मृतिमात्रविषया = केवल-स्मरणगोचरा। मृतेति यावत्।

गौरसिंह—मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप बतायेंगे कि आप यहाँ कैसे आए ? और आपने अपना आधिपत्य क्यो छोड दिया ?

गौरो रामेश्वर-यात्रा-समाख्यया तनयस्य नाम रामसिंह इति स्वय च खड्गसिंहस्य गेह बहुवार गत इति च निष्कृष्टार्थं शृण्वन् देवशर्म्मणा कथिता च नूत्नामेव कथा स्मरन्, समाधिस्थ इवैकतान उदन्तमेत शुश्राव।

ब्रह्मचारिगुरु "तत पर यत् सवृत्तम्, तस्य तु कथनेनाऽपि स्मरण-मात्रेणापि च कम्पते मे हृदयम्। तथाऽपि कि कुर्याम्? वज्रेण रचित हृदय मानवानाम्, यस्य स्मरणमात्रेण रोमाण्यञ्चन्ति, वपुर्वेपते, मनो मथ्यते, चित्त चञ्चल्यते, लोचने लोलत, जीवन च जर्जरीभवति, तदेव दु खम्, तदेव व्यसनम्, तामेव च यन्त्रणाम् अनु-

---

रामेश्वरयात्राया समाख्यया = नाम्ना। निष्कृष्टार्थम् = निर्गलिताभिप्रायम्। नूत्नाम् = नव्याम्। समाधिस्थ = चित्तनिरोधार्थकक्रियानिरत। एकतान = अनन्यमनस्क। उदन्तम् = वृत्तान्तम्।

रोमाणि=तनूरुहाणि। अञ्चन्ति=उद्गच्छन्ति। चञ्चल्यते=अतितरा चञ्चल भवति। लोलत = चञ्चले भवत। जर्जरीभवति = शीर्यते। करुण-रसप्रवाहोऽत्र गद्ये, वैदर्भी च रीति स्फुटैव।

दु खव्यसनयोरिह समानार्थत्वेऽपि दु खिनाऽभिहितमिति न पुनरुक्तदोष, प्रत्युत

गौरसिंह ने रामेश्वर यात्रा के सम्बन्ध मे उच्चरित पुत्र का नाम रामसिंह सुनकर, 'स्वय भी खड्गसिंह के घर बहुत बार गया हूँ' यह सब साराश सुनते हुए तथा देवशर्मा द्वारा कथित नवीन कहानी को याद करते हुये समाधिस्थ की भाँति एकाग्र होकर इस वृत्तान्त को सुना।

ब्रह्मचारिगुरु—उसके बाद जो हुआ उसके कहने से भी स्मरण करने से भी मेरा हृदय काँपता है। फिर भी क्या करे, मनुष्यो का हृदय वज्र से बना है। जिसका स्मरण करने से ही रोंगटे खडे हो जाते हैं, शरीर कॉपने लगता है, मन व्याकुल हो जाता है, चित्त चञ्चल हो जाता है, आँखे चपल हो जाती है, तथा जीवन जर्जर हो जाता है (निस्सार जान पडने लगता है), उसी दु ख, उसी

गौर०—अप्यापृच्छे। अपि कथयिष्यति कथमिहाऽऽयातो भवान्? कथ वा त्यक्तवान् निजमाधिपत्यम्?

ब्रह्मचारिगुरु—गौर! वय महाराज-जयसिहस्य अधीना वान्धवा सेनानियमेन भूमिभुज। अकस्माज्ज्वरितेषु कतिपयेषु सादिषु वहुभि कर्णेजपैरीर्ष्यापरवशै किमप्युक्तोऽसूचितयात्रो महाराज समायात। सादिसङ्ख्यामूनामवलोक्य विनैव विचार मम सर्वस्वमाहर्तु स्वमभायामकथयत्। मम पत्नी तु ततोऽपि पूर्वमेव स्मृतिमात्रविषया सवृत्ता। ततोऽह दशवर्षदेश्य रामसिह तनय सह नयन् रामेश्वर-दर्शनार्थ प्रचलित।

अपि = पुनरपि। आपृच्छे = पृच्छामि। "आङि नु पृच्छ्योरि"त्यात्मनेपदम्। वर्तमानसामीप्ये लट्। आधिपत्यम् = ग्रामाधीशताम्।

भूमिभुज = "जागीरदार" इति स्याता। ज्वरितेषु = ज्वरग्रस्तेषु, ज्वलितेषु वा पाठ। कर्णेजपै = पिशुनै, निन्दाकारिभि। ईर्ष्यापरवशै = गुणेषु दोषाविष्करणपरायणै। असूचितयात्र = अवोधितागमन। ऊनाम् = अल्पाम्। सर्वस्वम् = निखिल वित्तजातम्। स्मृतिमात्रविषया = केवलस्मरणगोचरा। मृतेति यावत्।

गौरसिह—मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप वतायेंगे कि आप यहाँ कैसे आए? और आपने अपना आधिपत्य क्यो छोड दिया?

ब्रह्मचारिगुरु—गौरसिह! हम लोग महाराज जयसिह के अधीन वन्धु एव सेना के नियम से जागीरदार थे। कुछ घुडसवारो के एकाएक ज्वरग्रस्त हो जाने पर वहुत ईर्ष्यालु निन्दको के कुछ कहने पर यात्रा की सूचना दिये विना ही महाराज आ पहुँचे, और घुडसवारो की सख्या कम देखकर विना विचार किए ही, उन्होने सभा मे मेरा सव कुछ छीन लेने की आज्ञा दे दी। मेरी पत्नी पहले ही स्मृतिशेष हो चुकी थी (मर चुकी थी)। तदनन्तर मै अपने लगभग दस वर्ष के पुत्र रामसिह को साथ लिये हुये रामेश्वर के दर्शन को चल दिया।

गौरो रामेश्वर-यात्रा-समाख्यया तनयस्य नाम रामसिंह इति स्वय च खड्गसिंहस्य गेह बहुवार गत इति च निष्कृष्टार्थं शृण्वन् देवशर्म्मणा कथिता च नूत्नामेव कथा स्मरन्, समाधिस्थ इवैकतान उदन्तमेत शुश्राव।

ब्रह्मचारिगुरु "तत पर यत् सवृत्तम्, तस्य तु कथनेनाऽपि स्मरण-मात्रेणापि च कम्पते मे हृदयम्। तथाऽपि किं कुर्याम्? वज्रेण रचित हृदय मानवानाम्, यस्य स्मरणमात्रेण रोमाण्यञ्चन्ति, वपुर्वेपते, मनो मथ्यते, चित्त चञ्चलयते, लोचने लोलत, जीवन च जर्जरीभवति, तदेव दु खम्, तदेव व्यसनम्, तामेव च यन्त्रणाम् अनु-

---

रामेश्वरयात्राया **समाख्यया**=नाम्ना। **निष्कृष्टार्थम्**=निर्गलिताभिप्रायम्। **नूत्नाम्**=नव्याम्। **समाधिस्थ**=चित्तनिरोधार्थकक्रियानिरत। **एकतान**=अनन्यमनस्क। **उदन्तम्**=वृत्तान्तम्।

रोमाणि=तनूरुहाणि। **अञ्चन्ति**=उद्गच्छन्ति। **चञ्चलयते**=अतितरा चञ्चल भवति। **लोलत**=चञ्चले भवत। **जर्जरीभवति**=शीर्यते। करुण-रसप्रवाहोऽत्र गद्ये, वैदर्भी च रीति स्फुटैव।

दु खव्यसनयोरिह समानार्थत्वेऽपि दु खिनाऽभिहितमिति न पुनरुक्तदोष, प्रत्युत

गौरसिंह ने रामेश्वर यात्रा के सम्बन्ध मे उच्चरित पुत्र का नाम रामसिंह सुनकर, 'स्वय भी खड्गसिंह के घर बहुत बार गया हूँ' यह सब साराश सुनते हुए तथा देवशर्मा द्वारा कथित नवीन कहानी को याद करते हुये समाधिस्थ की भाँति एकाग्र होकर इस वृत्तान्त को सुना।

ब्रह्मचारिगुरु—उसके बाद जो हुआ उसके कहने से भी स्मरण करने से भी मेरा हृदय काँपता है। फिर भी क्या करे, मनुष्यो का हृदय वज्र से बना है। जिसका स्मरण करने से ही रोगटे खडे हो जाते है, शरीर काँपने लगता है, मन व्याकुल हो जाता है, चित्त चञ्चल हो जाता है, आँखे चपल हो जाती है, तथा जीवन जर्जर हो जाता है (निस्सार जान पडने लगता है), उसी दु ख, उसी

भूयाऽपि जीवामि" इति वदन्नेवोच्छ्वस्य अपाङ्गसङ्गिनो द्वित्रान् वाष्पबिन्दून् पटप्रान्तेन अपाहरत् ।

गौर०––तात ! परिवर्ती समार, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावा, सुखदु खमय एव च ससार, कस्य दु खामम्भिन्न मुखम्? कस्य नि शेषपूर्णा अभिलाषा ? कस्य अपरिचित–पश्चात्ताप–सङ्घर्ष हृदयम् ? तत् पौर्वापर्य्येणाऽऽलोच्य धैर्यमेव धारणीय धर्म–धारि–धौरेयै ।

ब्रह्मचारिगुरु –[वाष्प निरुध्य] अथाऽकस्मादेव सहडहडाशब्द-माकुलयितुमारब्धवती वात्या। पारावारश्च पयस पर्वतानिव तरङ्ग-

---

गुण । यन्त्रणाम् = मानसव्यथाम् । उच्छ्वस्य = दीर्घ निश्वस्य । अपाङ्ग-सङ्गिन = नेत्रप्रान्तलग्नान् । अपाहरत् = अदूरयत् ।

परिवर्त्ती = परिवत्तनशील । अवितर्कणीया = असम्भाव्या । दैवघटना= भाग्यकृति । भावा = भवनीया पदार्था, दु खेन, असम्भिन्नम् = असम्पृक्तम् । नि शेषम्, यथा स्यात् तथा । अभिलाषा = मनोरथा । अपरिचित-पश्चात्ताप-सङ्घर्षम् = अविज्ञातानुतापसङ्घट्टम् । बहुव्रीहि । धर्मधारिधौरेयै = धार्मिकाग्रेसरै ।

आकुलयितुम् = क्षुभित विधातुम् । वात्या = वातसमूह । पारावार =

विपत्ति, तथा उसी यन्त्रणा का अनुभव करके भी मै जीवित हूँ ।

यह कहते हुये ही लम्बी साँस लेकर पलको मे लगे हुये दो तीन अश्रुविन्दुओं को वस्त्र के छोर से पोछ दिया।

गौरसिंह—तात ! ससार परिवर्तनशील है, दैवी घटना अचिन्त्य है । होने वाली वात भी होकर ही रहती है और ससार भी सुखदु खमय है, किसका सुख, दु ख से अछूता है ? किसकी अभिलाषाये पूर्ण हो सकी है ? किसका हृदय पश्चात्ताप के सघर्ष से अपरिचित है ? अत पूर्वापर का विचार कर धर्मशीलो म श्रेष्ठ श्रीमान् को धैर्य ही धारण करना चाहिये ।

ब्रह्मचारिगुरु—[आँसू रोक कर] तदनन्तर अकस्मात् ही हहराता हुआ

भङ्गान् रचयितुमारब्धवान्, पोतेन चाऽस्माकमारब्ध दोलयेव दोलितुम्। तावदुद्विग्नानिव कर्णधारानालोक्य महान्त क्रन्दनकोलाहल कलितवन्त सकला यात्रिनिकरा । ततो भय-भ्रान्त-नयनस्य रामबालस्य कर गृहीत्वा समागत पुरोहितो मा झटित्यवादीत्—

"प्रभो! नाऽयमवसर शुष्क-चिन्तया क्षणमप्यतिवाहयितुम्। अस्मिन्नुडुपे बहव कार्पास-भारा सन्ति, तेषामेक दृढ कराभ्या धृत्वा, भवता प्लव-प्रान्तस्थेन भाव्यम् । भवान् किञ्चित् तुन्दिभ इति न पारयिष्यते बालमेन रक्षितुम्, तदह पृथुकमेनमात्मना सह गोपायिष्यामि" इति व्याहृत्य, स्वपृष्ठदेशे उत्तरीयेणाऽतित्रस्त रामसिंह दृढ बद्ध्वा,

---

अम्भोधि । पयस, पर्वतानिवेत्युत्प्रेक्षा । तरङ्गभङ्गान् = वीचिखण्डान् । रचयितुम् = विन्यस्तुम् । दोलयेव = दोलायन्त्रेणेव । दोलितुम् = हिल्लोलितुम् । उद्विग्नान् = भीतिग्रस्तचेतस । कर्णधारान् = नाविकान् । क्रन्दनकोलाहलम्=रोदनकलकलम् । कलितवन्त =कृतवन्त । भयभ्रान्तनयनस्य= भीतिचञ्चलनेत्रस्य ।

शुष्कया=कर्तव्यशून्यया, वृथाप्रायया । चिन्तया=विचारधारया । अतिवाहयितुम् = क्षपयितुम् । उडुपे=नावि । कार्पासभारा =तूलभारा । प्लवप्रान्तस्थेन=नौकासमीपवर्त्तिना। तुन्दिभ =तुन्दिल । "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी" इत्यमर । रक्षितुम् = गोपायितुम् । पृथुकम् = बालम् । "पृथुकौ चिपिटार्भकावि"त्यमर । व्याहृत्य = कथयित्वा । उत्तरीयेण = प्रावरणेन । अति-

---

तूफान व्याकुल करने लगा, समुद्र पर्वतो के समान लहरे उछालने लगा, और हमारा पोत भी झूले की तरह झूलने लगा । उसी समय नाविको को उद्विग्न सा देखकर सभी यात्री-गण रोने चिल्लाने लगे । तदनन्तर भय से चञ्चल नेत्रो वाले बालक 'राम' का हाथ पकडे हुए पुरोहित ने आकर मुझसे कहा—

"महाराज! कोरी चिन्ता मे एक क्षण भी बिताने का समय नही है। इस नौका पर बहुत से कपास के गट्ठर है, उनमे से एक को हाथो मे दृढता से पकडकर आप नौका के किनार हो जाइये । आप कुछ तोद वाले हैं। अत इस बालक की रक्षा नही कर पायेंगे, इसलिये मैं अपने साथ इस बच्चे की भी रक्षा करूँगा ।" यह कहकर अत्यन्त डरे हुये रामसिंह को अपने उत्तरीय से अपनी पीठ

कार्पास-भारमेकमानाय्य, तद्दत्त–हस्तावलम्बनस्तस्थौ। अहमपि च तथैव विहितवान्। द्वावपि चाऽऽवा परमेश्वर स्मरन्तौ, परितो दोधूयमानस्योदन्वतो दोदुल्यमानैर्लोललोलै कल्लोलैश्चङ्क्रम्यमाणौ, कर्हिचित् लोकालोकमाकृष्य लोकालोकमिवोल्लिलङ्घयिषुमस्ताचल-चूडा-चुम्बिन लोकलोचनमालोकमालोकम्, कदाचिद् बाष्प-बिन्दु-स्नात-श्मश्रु पुरोहितम्, रोरुद्यमानमस्माभि स्वय रोदनोन्मुखैरपि

त्रस्तम् = पर भीतम्। तस्मिन् = कार्पासभारे, दत्तम्, हस्तावलम्बनम् = कराश्रयो येन तथाभूत। दोधूयमानस्य = अतितरा कम्पमानस्य। उदन्वत = वारिनिधे। दोदुल्यमानै = अत्यन्त चलद्भि। लोललोलै = अतिचञ्चलै। प्रथमविशेषण तावदुद्गच्छता कल्लोलाना द्वितीय तूद्गताना तेषामिति न पौन-रुक्त्यम्। कल्लोलै = महालहरिभि। "महत्सूल्लोलकल्लोलौ" इत्यमर। चङ्क्रम्यमाणौ = अतितरामुच्छाल्यमानौ। लोकस्य=ससारस्य, आलोकम्= प्रकाशम्। आकृष्य = अपकृष्य। लोकालोकम् = चरमाचलान्तिकगिरिम्। उल्लिलङ्घयिषुम् = उल्लङ्घयितुमिच्छुम्। अस्ताचलस्य=चरमगिरे, चूडा-चुम्बिनम् = उन्नतभागाश्लेषिणम्। अस्त यान्तमिति यावत्। लोक-लोचनम् = ससारनेत्र सूर्यम्। आलोकमालोकम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा बाष्प-बिन्दुस्नातश्मश्रुम् = अश्रुक्लिन्नमुखकेशम्। पुरोहितम्=सर्वश्रेष्ठहितकारकम्, वैदिककार्यनिर्वाहक ब्राह्मणम्। रोरुद्यमानम्=वार वार रुदन्तम्, बोबुध्य-

पर मजबूती से बाँधकर एक कपास का गठ्ठर मँगाकर उस पर हाथ टेककर खडे हो गये। मैंने भी वैसा ही किया। हम दोनो ने ही परमेश्वर का स्मरण करते हुए चारो ओर से उमडते हुये समुद्र की लहराती हुई अत्यन्त चपल उत्ताल तरङ्गो से उछाले जाते हुए, ससार के प्रकाश को समेटकर लोका-लोक (अस्ताचल) को लाँघने की इच्छा वाले, अस्ताचल की चोटी का स्पर्श कर रहे ससार के नेत्र (सूर्य) को देखते हुए, कभी आँसू की बूँदो से भीगी मूँछो वाले पुरोहित को और कभी स्वय रुआँसे होते हुये भी हमलोगो

कथमपि बोबुध्यमान बालक च दर्श दर्श युगमिव मन्वन्तरमिव कल्पमिव च काश्चित् क्षणानजीगमाव।

अथ बलवत्तैकेन तरङ्गाघातेन क्षण विस्मृतात्मानौ परतश्च चक्षुषी उन्मील्य आवा दृष्टवन्तौ, यत्र स पोत, न तत् स्थानम्, न वा ते तथाभूता सहचरा। विक्षुभितेनापि मया धैर्यमाधायादर्शि यद् धृतकार्पासभारोऽह कदाचित् तरङ्गोत्तमाङ्गे कदाचिच्च तरङ्गतले तरामि, अपरे च तथैव कार्पासभारान्, अभ्री, क्षेपणी, सेचनानि, आनायान्, कुवेणीश्च धृत्वा सचीत्कार तरन्ति। तेषामेव च मध्ये मम पुरोहितोऽपि क्रन्दमान राम पृष्ठे वहन्, वीचिभङ्गैराहन्यते, इति

मानम् = "मा मै, पार प्रापयामस्त्वामद्यैवे"त्यादि शिक्ष्यमाणम्। युगमिव = कलिप्रभृतिमिव। मन्वन्तरमिव = "मन्वन्तरन्तु दिव्याना युगानामेकसप्ततिरि"-त्यमर। कल्पम् = एकसहस्रमहायुगात्मक कालम्। अजीगमाव = अक्षपयाव। परतश्च = अन्यभागे च। तथाभूता = मज्जन्त। आधाय = अवलम्ब्य। अदर्शि = दृष्टम्। तरङ्गोत्तमाङ्गे = लहरिशिरसि। तरामि = प्लवामि। अभ्री = काष्ठकुद्दालान् नौ-मल-क्षालनार्थकान्, "अभ्रि स्त्री काष्ठकुद्दाल" इत्यमर। क्षेपणी = नौदण्डान्। "नौकादण्ड क्षेपणी" इत्यमर। सेचनानि = नौकागतजलदूरीकरणभाण्डानि। आनायान् = जालानि। कुवेणी = मत्स्या-

द्वारा किसी प्रकार समझाये जा रहे और बार-बार रो रहे बालक रामसिंह को देखते हुए युग की भाँति मन्वन्तर की भाँति और कल्प की भाँति कुछ क्षण बिताए।

तदनन्तर एक बलवान् तरङ्ग के आघात से क्षणभर आत्मविस्मृत होकर बाद मे आँखे खोलकर हम दोनो ने देखा कि न तो वह नौका है, न वह स्थान है, और न तो वे साथी ही हैं। मैने घबराये हुए होने पर भी हिम्मत करके देखा, कि कपास का गठ्ठर पकडे मै कभी तरङ्गो के ऊपर और कभी नीचे तैर रहा हूँ, दूसरे भी उसी प्रकार कपास के गट्ठरो, अभ्री (नाव को साफ करने वाली काष्ठमय कुदाल) पतवार, पानी उलीचने के काष्ठमय पात्र, जाल और टोकरी पकडे चिल्लाते हुए तैर रहे हैं। उन्ही मे मेरे पुरोहित

क्षणत एव च तरङ्गभङ्गैराहतो न वेद्मि, के कुत प्रयाता ? पञ्चपा एव च वय तथाभूता अवशिष्टा ।

एवमतिलोल कोलमकूपारस्य तल प्रवेश्य, प्रशान्तो झञ्झावात । उदन्वानपि तरङ्गोच्छालन-वेग कथमपि मन्दमकार्षीत् । तदा मया केवल पुरोहित एव धृत-कार्पास-भार सम्मुखमालोकि । इतरे च, नावेदिषम्, वीचि-पात-घातै कुतो नीता ? इति । इत सूर्य्यस्याऽस्तमनसमय , तत समागच्छन्ती घोरा रजनी, तटस्य कथाऽपि नाऽऽसीत्, उपरि गगनम् , अधश्च सागर, परित प्रसर्पिणो वात-घाता , परिकलितालिपष्ठाकारा अपि भयानकास्तरङ्गभङ्गा ।

धानी । "आनाय पुसि जाल स्यात्", "मत्स्याधानी कुवेणी स्यादि"ति चामर । आहन्यते=ताड्यते । तथाभूता =तरङ्गभङ्गाहता ।

कोलम् =प्लवम् । अकूपारस्य =क्षीरधे । तलम् =अन्तरालम् । झञ्झावात =सवृष्टिको महावायु । तरङ्गोच्छालनवेगम् =लहरिहिल्लोलनजवम् । नावेदिषम् =नाज्ञासिषम् । समागच्छन्ती =आयान्ती । घोरा = भीतिप्रदा । वातघाता =समीरताडनानि । परिकलितालिपष्ठाकारा = धारितलघुतमाकृतय ।

भी रोते हुये राम को पीठ पर लिये, तरङ्गो के प्रवाह से आहत हो रहे हैं, क्षण भर बाद ही लहरो के प्रवाह से आहत होने के कारण मैं न जान सका कि कौन कहाँ चला गया ? हम पाँच-छ लोग उस आघात के बाद बचे रहे ।

इस प्रकार अत्यधिक लडखडाती नौका को समुद्र के तल मे पहुँचा कर तूफान शान्त हो गया । समुद्र ने भी ऊँची लहरो को उछालने के वेग को किसी प्रकार कम किया । उस समय मैंने कपास का गट्ठर पकडे हुये केवल पुरोहित को ही सामने देखा । अन्य यात्री लहरो के थपेडो से न जाने कहाँ पहुँचा दिये गये । इधर सूर्यास्त का समय था, ओर उधर से भयानक रात्रि, तट की तो बात ही नही थी, ऊपर आकाश नीचे समुद्र, चारो ओर फैल रहे वायु के झोके और छोटी आकारवाली होने पर भी भयङ्कर समुद्री लहरे ।

अथ शनै शनै समुद्रेणाऽहमेकतोऽपसारयितुमारब्ध , पुरोहितश्च परत्र । उभयोरनिच्छतोरप्यन्तरालमावयोरवर्धिष्ट । क्षणानन्तरमेव च स मम चक्षुषो पन्थानमतीत । ततोऽहं कदाचिद् राम कर्हिचित् पुरोहित च स्मरन्, कर्हिचित् व्यतीत निजजीवन चिन्तयन्, कदाचित् समाप्तमिद दु खान्तमायुरिति भावयन्, कर्हिचित् सक्रन्द परमात्मान ध्यायन्, प्रतिपद पय पूरेण प्लाव्यमान इव, तिमिङ्गिलैर्गीर्यमाण इव, ग्राहैर्ग्रस्यमान इव, सामुद्रिकसत्त्वैरास्वाद्यमान इव, परीवाहैरुह्यमान इव, यमेन नियम्यमान इव, कालेन काल्यमान इव, मृत्युना च मार्य-

एकत =एकस्या दिशि । अपसारयितुम् =दूरीकर्तुम् । अन्तरालम् = व्यवधानम् । अवर्धिष्ट =ऐधिष्ट । स =पुरोहित सवाल । व्यतीनम् = भूतम् । दु खान्तम् =क्लेशान्तम् । भावयन् =विचारयन् । सक्रन्दम् = सरोदनम् । प्रतिपदम् =पदे पदे । पय पूरेण =वारिप्रवाहेण । प्लाव्य-मान =निमज्ज्यमान । तिमिङ्गिलै =महामत्स्यै । गीर्यमाण इव= उदरे क्रियमाण इव । ग्राहै =नक्रै । ग्रस्यमान इव =कवलीक्रियमाण इव । सामुद्रिकसत्त्वै =यादोभि । जलजन्तुभि । आस्वाद्यमान इव =रस्यमान इव । परीवाहै =आवर्त्तै । ऊह्यमान इव=नीयमान इव । यमेन =वैवस्वतेन । नियम्यमान इव =निबध्यमान इव । कालेन =समयेन । मृत्योरग्रेऽभिधाना-

तदनन्तर धीरे-धीरे समुद्र मुझे एक ओर बहाने लगा, और पुरोहित को दूसरी ओर । न चाहते हुए भी हम दोनो की दूरी बढती गई । कुछ देर बाद ही वह मेरी आँखो से ओझल हो गए । तब मै कभी रामसिह को तथा कभी पुरोहित को स्मरण करता हुआ, कभी अपने बीते हुए जीवन के विषय मे सोचता हुआ, कभी यह दु खान्त आयु समाप्त हो गई यह विचार करता हुआ, कभी रोता हुआ परमात्मा का ध्यान करता हुआ, पद-पद पर जल के प्रवाह से डुबोया जा रहा सा, तिमिङ्गिलो द्वारा निगला जा रहा सा, ग्राहो द्वारा कवलित हो रहा सा, समुद्र के जीवो द्वारा खाया जा रहा सा, आवर्तो द्वारा बहाया जा रहा सा, यमराज द्वारा पकडा जा रहा सा, समय द्वारा प्रेरित किया जा रहा सा, और

माण इव, तारकित गगनम्, तरङ्गित सागरम्, प्रेङ्खित वीचिप्रचयम्, क्षार-क्षोद-क्षीयमाण चाऽऽत्मानमवलोकयन्, न वेद्मि, कैं कैं क्रन्दनैर्धैर्य्य-धारणैर्भगवत्स्मरणैश्च तमीमतिवाहयाम्बभूव ?

अथ शनैः समुद्रफेनेष्विव लीयमानेषु तारकानिकरेषु, उडुपे इव प्रतीच्या निमग्ने उडुपे, सरस्वतस्तरङ्गोच्छालितास्तोयकणान् माणिक्यानिव विदधत् प्राची कुङ्कुम-बलाहक-निकराक्रान्तामिवाकार्षीद् भगवान् भास्वान्। अस्मिन् समये वीचिक्षोभोऽतिमन्द आसीदित्यपारय-

देवमेवाथ । काल्यमान इव = प्रेयमाण इव। मृत्युना = अन्तकेन। मार्यमाण इव = ध्वस्यमान इव। तारकितम्=उडूपेतम्। गगनम्=नभ । तरङ्गितम्= लहरिसमेतम्। प्रेङ्खितम्=उल्लोलितम्। वीचिप्रचयम्=लहरिव्रजम्। क्षार-क्षोदक्षीयमाणम्=समुद्रडिण्डीरापचीयमानम्। तमीम् = रात्रिम्। अतिवाहयाम्बभूव=अतिगमयामास। लिट उत्तमपुरुषस्य रूपम्। न वेद्मीत्यनेन चित्त-विक्षेपाभिधानात् पारोक्ष्यमुपपादनीयम्, "बहु जगदपुरस्तात् तस्य मत्ता किलाहमि"-त्यादाविवेति वेदितव्यम्।

समुद्रफेनेषु = वारिधिडिण्डीरेषु। तारकानिकरेषु = भगणेषु। उडुपे = नावि, इवेनोत्प्रेक्षा। प्रतीच्याम् = पश्चिमायाम्। निमग्ने = ब्रुडिते। उडुपे = ताराधिनाथे चन्द्रे। सरस्वत —अर्णवस्य। "सरस्वान् सागरोऽर्णव" इत्यमर। तरङ्गोच्छालितान् = लहरिसमुत्थापितान्। तोयकणान् = अम्भोबिन्दून्। माणिक्यानिव = मौक्तिकानीव। कुङ्कुम-बलाहकनिकराक्रान्तामिव = केसरमेघव्रातव्याप्तामिव। भास्वान् = दिनेश। वीचिक्षोभ = लहरिसञ्च-

मृत्यु द्वारा मारा जा रहा सा, तारकित आकाश, तरङ्गित सागर, उछलती लहरो और नमकीन फेन से गल रहे अपने आपको देखता हुआ, न जाने किस-किस प्रकार रोककर धैर्य धारण कर भगवान् का स्मरण कर रात बिता पाया।

तदनन्तर तारो के समूह के धीरे-धीरे समुद्र के फेन मे विलीन से हो जाने पर, पश्चिम दिशा मे चन्द्रमा के नौका के समान डूब जाने पर, समुद्र की तरङ्गो से उछाले गये जलकणो को मणियो के समान बनाते हुए, भगवान् सूर्य ने पूर्व-दिशा को केसर के मेघो से व्याप्त कर दिया। इस समय लहरो के उठने का वेग

मह सुदूरमीक्षितुम् । उद्ग्रीवेणाऽपि विस्फारितचक्षुषाऽपि नाऽऽलोकि पुरोहितो वा भूभागो वा ।

समुद्रेण तूर्मिघातै प्रागेव प्रेर्यमाणश्चिरानन्तरमद्राक्ष गुणवृक्षकमिव कस्यापि पोतस्य । क्षणेनैव वायुना समुद्धूयमाना पटा, परतश्च वेगेन मदध्यासितामेव दिश समुपसर्पन् प्लव एको दृष्ट । तन्नियामकाश्च कथमप्युद्धृतकर मामवलोक्यैव वायुविधूतान् पटान् विचाल्य मामेव लक्ष्यीकृत्य समायाता, कथ कथमपि च मामुत्थाप्य स्वपोते समुदस्थापयन् । अह तु तत् स्थान प्राप्यैव निश्वस्य पतितश्चिर मूर्च्छामापम् । ते तु तैलसम्मर्दनादिभिर्मा सुखयन्त सुरत-नगरप्रान्त आगत्य मामुद्बोध्य दुग्धादि पाययित्वा तटे व्यसृजन् ।

लनम् । अपारयम् = शक्तोऽभूवम् । ईक्षितुम् = द्रष्टुम् । उद्ग्रीवेणाऽपि = उत्कन्धरेणाऽपि । भूभाग = महीतलम् ।

ऊर्मिघातै = तरङ्गताडनै । प्रेर्यमाण = प्रोह्यमान । गुणवृक्षकमिव = कूपकमिव । समुद्धूयमाना = हिल्लोल्यमाना । मदध्यासिताम् = मत्सेविताम् । प्लव = जलयानम् । तन्नियामका = तत्सञ्चालका । उद्धृतकरम् = उत्थापितहस्तम् । वायुविधूतान् = वातचालितान् । समुदस्थापयन् = सम्यगूर्ध्वमनयन् । आपम् = प्राप्तवान् । व्यसृजन् = त्यक्तवन्त ।

बहुत कम था, अत मै बहुत दूर तक देख सकता था । किन्तु गर्दन उठाकर और आँखे फैलाकर देखने पर भी मै पुरोहित को या भूमिभाग को नही देख पाया ।

तरङ्गो के आघातो से समुद्र द्वारा पहले से ही बहाये जाते हुये मुझको बहुत देर बाद किसी जहाज का मस्तूल सा दिखाई पडा । कुछ देर बाद ही हवा से उडते हुये पाल दिखाई दिये, और फिर वेगपूर्वक मेरी ही ओर आती हुई एक बडी नौका दिखाई पडी । उसके चलाने वाले, किसी प्रकार हाथ उठाए हुये मुझे देखकर हवा मे उडते हुये पालो की दिशा बदल कर मुझे लक्ष्य कर मेरे पास आ गये, और किसी प्रकार मुझे उठाकर अपनी नाव पर बिठा लिया । मै वहाँ पहुँचते ही दीर्घनिश्वास लेकर मूर्छित हो गया, और बडी देर तक मूर्छा मे ही पडा रहा । उन्होने तेल की मालिश आदि करके मुझे आराम पहुँचा कर, सूरत नगर के किनारे आकर, मुझे जगाकर दूध आदि पिलाकर तट पर छोड दिया ।

अह तु क्षारोद–क्षार–नीलीकृत–वर्ण सुरत–नगरे परिभ्रमन्, रामचन्द्र–मन्दिरमेकमवाप्य तत्रैव विरक्त–भिक्षुकाणा मध्ये निवसन् मन्दिराध्यक्षेण चिकित्सित उल्लाघोऽभूवम्। एकदा विहितनित्य-नियम त स्वपुत्रपुरोहितयो कुशलविषये समपृच्छम्। स च चिर ध्यात्वाऽब्रूत यत्—"मा स्म ग्रसिष्ठा अमङ्गलचिन्तया, क्वाऽपि समुद्रतटे सलग्नौ तव पुत्रपुरोहितौ त्वदपेक्षयाऽधिक तौ कुशलिनौ स्त ।"

अथ "भगवन्! कथ तत्साक्षात्कारो भवेत्?" इति पृष्टश्च मा मन्त्रमेकमुपादिक्षत्, उक्तवाश्च यद्—"आसन्ने तव तनयस्योद्वाहसमये तेन तव सम्मेलन भविष्यति, तावदेन मन्त्रराज जप।"

अह तु तत्र वार वार लुण्ठकोपद्रवमवलोक्य, तुरुष्क-मौद्गल–

क्षारोदस्य = क्षारवारिधे, क्षारेण = लवणाम्भसा, नीलीकृतवर्ण = श्यामीकृत। विरक्तानाम् = विरागिणाम्। भिक्षुकाणाम् = भिक्षारतानाम्, मस्करिणा वा। चिकित्सित = औषधेनोपचरित। उल्लाघ = रोगनिर्मुक्त। "उल्लाघो निर्गतो गदात्" इत्यमर। विहितनित्यनियमम् = कृतनैत्यिककृत्यम्। तम् = मन्दिराध्यक्षम्। मा स्म ग्रसिष्ठा = ग्रस्तो मा भू। अमङ्गल-चिन्तया = मरणादिकल्पनया। कुशलिनौ = सानन्दौ।

उपादिक्षत् = उपदिष्टवान्। आसन्ने = समीपस्थे। तुरुष्का "तुक"

समुद्र के खारे जल के दीघ सम्पर्क के कारण साँवला हो गया मैं सूरत नगर मे घूमता हुआ भगवान रामचन्द्र के एक मन्दिर मे पहुँच कर वही पर विरक्त भिक्षुओ के बीच मे रहता हुआ मन्दिर के अध्यक्ष की चिकित्सा से रोग मुक्त हो गया। एक बार मैंने उनकी नित्यविधि के समाप्त होने पर अपने पुत्र और पुरोहित की कुशल के बारे मे उनसे पूछा। उन्होने बहुत देर तक ध्यान लगाकर मुझसे कहा कि "तुम उनके अमगल की चिन्ता से अपने को दुखी मत करो। तुम्हारे पुत्र और पुरोहित कही समुद्र के किनारे लग गये है और तुम से भी अधिक कुशल से है।"

तदनन्तर मेरे, 'महाराज! उनको कैसे मिल सकूगा?' यह पूछने पर उन्होने मुझे एक मन्त्र का उपदेश दिया और कहा कि "तुम्हारे पुत्र के विवाह के समय के आसन्न होने पर तुम उससे मिलोगे, तब तक इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप करो।" मैं वहाँ पर बार-बार लुटेरो का उपद्रव देखकर तथा तुर्कों मुगलो, गोरो और

गोरण्ड-पाठीनादीनां महासम्मर्दं च सम्भाव्य इतोऽस्मिन् देशे समागतोऽस्मि। न जाने कदा जीवन्तं रामं द्रक्ष्यामि"इति।

गौर०—विचित्रा दैवघटना, विचित्र एव चाऽय भवतो वृत्तान्त। अवश्यमेव कञ्चित् समयमतिवाह्य मन्त्रबलेन द्रक्ष्यत्यार्य स्वपुत्रस्याऽपि मुखम्। अपि पृच्छेय कथमिव महाराष्ट्रराजेन समालापो जात ? इति।

ब्रह्मचारिगुरु—भीमायास्तटे स्नात्वा परावर्तमानस्य ममैकदा द्वाभ्या म्लेच्छलुण्ठकाभ्या सह मेलनमासीत्। तयोरेकेनोक्तम्—"त्यज सर्वं वस्त्रादिकम्, अन्यथा व्यापाद्यसे"—इति। तत्क्षणमेव मयैकया प्रबलचपेटिकया स तथाऽभिहतो यत् पीत रक्त श्याममिव च दिक्चक्रमालोकयन् निरुद्धनिश्वासो भ्रान्त्वा भूमिमालिङ्गितवान्। द्वितीयश्च

इति, मौद्गला "मोगल" इति, गोरण्डा "गोरे" इति, पाठीना "पठान" इति च ख्याता लोके। महासम्मर्दम् = अतिसङ्घर्षम्।

विचित्रा = साश्चर्या। कथमिव = केन प्रकारेण। समालाप = वार्ता।

परावर्त्तमानस्य = निवर्तमानस्य। म्लेच्छलुण्ठकाभ्याम् = यवनचौराभ्याम्। व्यापाद्यसे = हन्यसे। प्रबलया = असहनीयया, चपेटिकया = तलेन। पीत रक्त श्याममिव च दिक्चक्रम् = हरिद्गणम्। आसन्नमरणस्वभाव-

पठानो के भयकर सघर्ष की सम्भावना देखकर इधर इस देश मे आ गया हूँ। न जाने कब जीवित रामसिंह को देखूँगा।

गौरसिंह—भाग्य का विचित्र खेल है, और आपका यह वृत्तान्त भी अद्भुत है। अवश्य ही कुछ समय व्यतीत कर मन्त्र के बल से आर्य अपने पुत्र का मुख देखेंगे। क्या यह पूछ सकता हूँ कि महाराष्ट्र नरेश से कैसे परिचय हुआ ?

ब्रह्मचारिगुरु—एक बार मैं भीमा नदी मे स्नान कर लौट रहा था कि किनारे पर दो यवन लुटेरो से भेंट हो गई। उनमे से एक ने कहा—"सभी वस्त्र आदि उतार दो, नही तो हम तुम्हे मार डालेंगे।" उसी क्षण मैने उसे एक ऐसा जोर का थप्पड मारा कि उसे दिशाये पीली, लाल और हरी सी दिखाई देने लगी, और उसकी साँस रुक गई, तथा वह चक्कर खाकर भूमि पर गिर पडा,

निस्त्रिंश कोषादाकर्षन् मामभिचलित । तस्य हस्ताच्चाऽर्द्धकृष्टमेव कृपाणमहमाच्छिद्य त्सरुणा तथा मस्तके हतवान् यथा सोऽपि मूर्च्छित स्वसहचरस्य चरणयो पतित । तत्खड्ग गृहीत्वा चाऽह कुशलेन न्यवर्तिषि ।

घटनामेता दूरतोऽश्व चालयन् महाराष्ट्रराजोऽपश्यन् । स च मार्ग एव मत्समीपमागत्य, ससाधुवाद मम जातिमभिप्रेत च पृष्ट्वा, पञ्चषान् भृत्यान् मम सेवाया नियोज्य, अस्मिस्तडागतटे पर्णकुटीरे मामस्थापयत् । अह च सर्वथा तस्य जयमीहमानो यथाशक्य यतमानश्चाऽत्र तिष्ठामि, मन्त्र च साधयामि । महाराष्ट्रराजोऽपि मम निखिल वृत्तान्त न वेत्ति ।

वर्णनम् । निरुद्धनिश्वास =स्तब्धप्राणवायु । भ्रान्त्वा=परिक्रम्य, "चक्कर खाकर" इति भाषायाम् । आलिङ्गितवान् =आशिश्लिषे । निस्त्रिशम् = खड्गम् । कोषात्=असिधान्या । अभिचलित =सम्मुखमागत । अर्धकृष्टम्= कोषादर्धनिष्कासितम् । कृपाणम् = असिम् । आच्छिद्य = प्रसह्य आकृष्य । त्सरुणा = खड्गमुष्टिना । न्यवर्त्तिषि = निवृत्तोऽभूवम् ।

जातिम्=ब्राह्मणत्वादिव्यावर्तकधर्मम् । अभिप्रेतम्=इष्टम् । ईहमान = समभिलषन् । यतमान = चेष्टमान ।

दूसरा लुटेरा म्यान से तलवार खीचते हुये मेरी ओर बढा, मैने उसके हाथ से म्यान से आधी खिची हुई तलवार छीनकर उसकी मूँठ से उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह भी मूछित होकर अपने साथी के पैरो पर गिर पडा । उसकी तलवार लेकर मै सकुशल लौट आया ।

इस घटना को दूर से ही घोडा दौडाते हुये महाराष्ट्र नरेश ने देख लिया । उन्होने मेरे मार्ग मे ही मेरे पास आकर मेरी जाति और मेरा उद्देश्य पूछ कर अपने पांच-छ सेवको को मेरी सेवा मे नियुक्त कर मुझे इस तालाब के किनारे पर्णकुटी मे रहने के लिये स्थान दे दिया । मैं भी सर्वथा उनकी विजय कामना करता रहता हूँ, और उनकी विजय के लिये यथाशक्ति प्रयत्न भी करता रहता हूँ, तथा अपना मन्त्र भी सिद्ध करता रहता हूँ । महाराष्ट्र नरेश भी मेरे पूरे वृत्तान्त को नही जानते हैं ।

गौर०—[मनसि बहुशश्चिन्तयन्] आर्य ! क्षम्यता श्रीमतो नाम-मन्त्रश्रवणेन कर्णौ पिपावयिषत्येष जन ।

ब्रह्मचारिगुरु —किमिव नाम्ना ? यदा मम परितो गच्छता गजाना घण्टानादैर्दिगन्तोऽपूर्यत, तदा तु स्वप्नेष्वपि शत्रूणा कर्णकुहर निविशमान ममाऽपरमेव किमपि नामाऽऽसीत् । अधुना तु ब्रह्मचारि-गुरुरित्येव वदन्ति जना ।

गौर०—क्षम्यताम्, परम मम कुतूहल तदेव श्रोतु नाम श्रीमत ।

ब्रह्मचारिगुरु —[चिर तूष्णी स्थित्वा] वत्स ! तदानी मा वीरेन्द्र-सिह इत्यवदन् जना ।

गौर०—[प्रणमन्] आर्य ! तत् कि स्मर्यते यन्मम पित्रा कश्चन सम्बन्धोऽपि प्रतिज्ञात ?—इति ।

नामैव = अभिधानमेव, मन्त्र = देवताप्रतिपादकवर्णानुपूर्वीविशेष । तस्य श्रवणेन = तदाकर्णनेन । पिपावयिषति = पावयितुमिच्छति । भवतो नाम श्रोतुमिच्छामि इति यावत् ।

कर्णकुहरम् = श्रोत्रच्छिद्रम् । कर्णशष्कुलीमिति यावत् ।

गौरसिह—[मन मे अनेक प्रकार से सोचते हुये] पूज्यवर! क्षमा कीजिये, श्रीमान् के नामरूपी मन्त्र को सुनकर मै अपने कानो को पवित्र करना चाहता हूँ।

ब्रह्मचारिगुरु—नाम मे क्या रखा है ? जब मेरे चारो ओर चलने वाले हाथियो के घण्टाध्वनि से दिशाये भर जाती थी, उस समय स्वप्न मे भी शत्रुओ के कर्णकुहर मे प्रवेश करनेवाला मेरा दूसरा ही नाम था। अब तो लोग ब्रह्मचारिगुर ही कहते है।

गौरसिह—क्षमा कीजिये, मुझे आपके उसी नाम को सुनने की उत्सुकता है।

ब्रह्मचारिगुरु—[बहुत देर तक चुप रह कर] पुत्र ! उस समय लोग मुझे वीरेन्द्रसिह कहा करते थे ।

गौरसिह—[प्रणाम करते हुये] पूज्यवर ! तो क्या आपको स्मरण है कि मेरे पिता जी से आपने किसी सम्बन्ध की भी प्रतिज्ञा की थी ?

निस्त्रिंश कोषादाकर्षन् मामभिचलित । तस्य हस्ताच्चाऽर्द्धकृष्टमेव कृपाणमहमाच्छिद्य त्सरुणा तथा मस्तके हतवान्, यथा सोऽपि मूर्छित स्वसहचरस्य चरणयो पतित । तन्खड्ग गृहीत्वा चाऽह कुशलेन न्यवर्तिषि ।

घटनामेता दूरतोऽश्व चालयन् महाराष्ट्रराजोऽपश्यत् । स च मार्ग एव मत्समीपमागत्य, ससाधुवाद मम जातिमभिप्रेत च पृष्ट्वा, पञ्चषान् भृत्यान् मम सेवाया नियोज्य, अस्मिस्तडागतटे पर्णकुटीरे मामस्थापयत् । अह च सर्वथा तस्य जयमीहमानो यथाशक्य यतमानश्चाऽत्र तिष्ठामि, मन्त्र च साधयामि । महाराष्ट्रराजोऽपि मम निखिल वृत्तान्त न वेत्ति ।

वर्णनम् । निरुद्धनिश्वास =स्तब्धप्राणवायु । भ्रान्त्वा=परिक्रम्य, "चक्कर खाकर" इति भाषायाम् । आलिङ्गितवान् =आशिश्लिषे । निस्त्रिशम् = खड्गम् । कोषात्=असिधान्या । अभिचलित =सम्मुखमागत । अर्धकृष्टम्= कोषादर्धनिष्कासितम् । कृपाणम् =असिम् । आच्छिद्य = प्रसह्य आकृष्य । त्सरुणा = खड्गमुष्टिना । न्यवर्त्तिषि = निवृत्तोऽभूवम् ।

जातिम्=ब्राह्मणत्वादिव्यावर्तकधर्मम् । अभिप्रेतम्=इष्टम् । ईहमान = समभिलषन् । यतमान = चेष्टमान ।

दूसरा लुटेरा म्यान से तलवार खीचते हुये मेरी ओर बढा, मैने उसके हाथ से म्यान से आधी खिची हुई तलवार छीनकर उसकी मूँठ से उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह भी मूछित होकर अपने साथी के पैरो पर गिर पडा । उसकी तलवार लेकर मै सकुशल लौट आया ।

इस घटना को दूर से ही घोडा दौडाते हुये महाराष्ट्र नरेश ने देख लिया । उन्होने मेरे मार्ग मे ही मेरे पास आकर मेरी जाति और मेरा उद्देश्य पूछ कर अपने पांच-छ सेवको को मेरी सेवा मे नियुक्त कर मुझे इस तालाब के किनारे पर्णकुटी मे रहने के लिये स्थान दे दिया । मै भी सर्वथा उनकी विजय कामना करता रहता हूँ, और उनकी विजय के लिये यथाशक्ति प्रयत्न भी करता रहता हूँ, तथा अपना मन्त्र भी सिद्ध करता रहता हूँ । महाराष्ट्र नरेश भी मेरे पूरे वृत्तान्त को नही जानते है ।

गौर०—[मनसि बहुशश्चिन्तयन्] आर्य ! क्षम्यता श्रीमतो नाम-मन्त्रश्रवणेन कर्णौ पिपावयिषत्येष जन ।

ब्रह्मचारिगुरु —किमिव नाम्ना ? यदा मम परितो गच्छता गजाना घण्टानादैर्दिगन्तोऽपूर्यत, तदा तु स्वप्नेष्वपि शत्रूणा कर्णकुहर निविशमान ममाऽपरमेव किमपि नामाऽऽसीत् । अधुना तु ब्रह्मचारि-गुरुरित्यैव वदन्ति जना ।

गौर०—क्षम्यताम्, परम मम कुतूहल तदेव श्रोतु नाम श्रीमत ।

ब्रह्मचारिगुरु —[चिर तूष्णी स्थित्वा] वत्स ! तदानी मा वीरेन्द्र-सिह इत्यवदन् जना ।

गौर०—[प्रणमन्] आर्य ! तत् किं स्मर्यते यन्मम पित्रा कश्चन सम्बन्धोऽपि प्रतिज्ञात ?—इति ।

नामैव = अभिधानमेव, मन्त्र = देवताप्रतिपादकवर्णानुपूर्वीविशेष । तस्य श्रवणेन = तदाकर्णनेन । पिपावयिषति = पावयितुमिच्छति । भवतो नाम श्रोतुमिच्छामि इति यावत् ।

कर्णकुहरम् = श्रोत्रच्छिद्रम् । कर्णशष्कुलीमिति यावत् ।

गौरसिंह—[मन मे अनेक प्रकार से सोचते हुये] पूज्यवर! क्षमा कीजिये, श्रीमान् के नामरूपी मन्त्र को सुनकर मैं अपने कानो को पवित्र करना चाहता हूँ।

ब्रह्मचारिगुरु—नाम मे क्या रखा है ? जब मेरे चारो ओर चलने वाले हाथियो के घण्टाध्वनि से दिशायें भर जाती थी, उस समय स्वप्न मे भी शत्रुओ के कर्णकुहर मे प्रवेश करनेवाला मेरा दूसरा ही नाम था। अब तो लोग ब्रह्मचारिगुरु ही कहते हैं।

गौरसिंह–क्षमा कीजिये, मुझे आपके उसी नाम को सुनने की उत्सुकता है।

ब्रह्मचारिगुरु—[बहुत देर तक चुप रह कर] पुत्र ! उस समय लोग मुझे वीरेन्द्रसिंह कहा करते थे ।

गौरसिंह—[प्रणाम करते हुये] पूज्यवर ! तो क्या आपको स्मरण है कि मेरे पिता जी से आपने किसी सम्बन्ध की भी प्रतिज्ञा की थी ?

ब्रह्मचारिगुरु—वत्स ! सर्वं स्मरामि, किन्तु तत्कथोपकथनैर्दुःखमेव वर्द्धतेतमामिति अलमालप्याऽमुष्मिन् विषये।

गौर०—आर्य ! अलं तद्विषये शोकावहनेन। न भवन्ति भवादृशैः सनियममनुष्ठितानि मन्त्र-साधनानि विफलानि। रामसिंहं वयमपि विशिष्य मार्गयिष्यामः।

एवमालपतोरेव तयोरकस्मादुपावर्त्तत हयारूढो रघुवीरसिंहः। झटिति रामसिंहमयी दृष्टिरपतत् तदुपरि सर्वेषाम्। "यदि जीवेद् वयसा रूपेण ईदृश एव सम्वोभूयेत रामसिंहः" इति विचारयति वीरेन्द्रसिंहे, किमिति पृच्छति च गौरे—"महाराजः स्मरत्यत्र भवन्तम्"—इति मन्दं गौरसिंहमभ्यधाद् रघुवीरसिंहः। सोऽपि चोमिति व्याहृत्य वाजिनमारुह्य तेन सह सपदि प्रतस्थे।

तत्कथोपकथनैः = तद्वार्तालापैः। वर्द्धतेतमाम् = अतितरामेधते।

सनियमम् = सविधि। अनुष्ठितानि = साधितानि। मार्गयिष्यामः = अन्वेषयिष्यामः।

उपावर्त्तत = परावृत्तः। रामसिंहमयी = रामसिंहभावनाभरिता। सम्बोभूयेत = सुतरां सम्भवेत्। तेन = रघुवीरसिंहेन। सपदि = तत्क्षणम्।

ब्रह्मचारिगुरु—पुत्र ! सब स्मरण है, परन्तु उसकी चर्चा से केवल दुःख ही बढ़ता है। अतः इस बारे में मत पूछो।

गौरसिंह—आर्य ! उसके विषय में शोक मत कीजिए। आप जैसे लोगों द्वारा नियमानुसार सिद्ध किए गए मन्त्र निष्फल नहीं होते। हम लोग भी विशेष रूप में रामसिंह को खोजेंगे।

दोनों इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि घोड़े पर सवार रघुवीरसिंह आ गया। तत्काल सभी लोगों की रामसिंहमयी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी। वीरेन्द्रसिंह के, "यदि जीवित होगा तो रामसिंह भी ऐसा ही होगा" इस प्रकार सोचने लगने, तथा गौरसिंह के 'क्या है' यह पूछने पर रघुवीरसिंह ने गौरसिंह से धीरे से कहा कि महाराज आपको याद कर रहे हैं। गौरसिंह भी 'अच्छा' कहकर घोड़े पर सवार होकर रघुवीरसिंह के साथ शीघ्र ही चल पड़ा।

रघुवीरस्तु कियन्तमद्ध्वानमतीत्य, विकचसारस सारस–कारण्डवादि–कदम्ब–कूजित सरएकमवलोक्य, "अह चिर–तृष्णा–गलितोत्साह वाह पानीय पाययित्वा, अनुपदमेवाऽऽयामि, तावद् गत्वा विलोकनीय श्रीमता महाराज" इति कथयित्वा गौर प्रस्थाप्य स्वय वाहवल्गा तत एवाऽऽचकर्ष। तत्र च सैन्धवस्य मुखात् फेन–क्षालित–खलीन रश्मिमपसार्य्य तत्पृष्ठमार्द्रयन् जल पाययन् सरस्तट–शाद्वले पर्य्याटयश्च परिश्रममपनेतुमारब्धवान्।

अस्य तु सर्वक्षणे सौवर्णी–मूर्त्यैव चित्रित चित्रफलकमिव चित्त-

---

विकचसारसम् = प्रफुल्लसरोजम्। बहुव्रीहि। सारस = प्रलम्बचञ्चुचरण श्वेतपक्षी, कारण्डव = मद्गुनामा पक्षिविशेष, एवमादीना कदम्बेन = समूहेन, कूजितम् = नादितम्। चिरतृष्णागलितोत्साहम् = दीर्घकालपिपासाविधूतहर्षम्। वाहम् = घोटकम्। अनुपदम् = पद पश्चात्। त्वरितमिति यावत्। प्रस्थाप्य=सम्प्रेष्य। सैन्धवस्य=घोटकस्य। फेनक्षालितखलीनम्=डिण्डीरधौतकविकम्। रश्मिम् = प्रग्रहम्। "किरणप्रग्रहौ रश्मी" इत्यमर। अपसार्य्य = दूरयित्वा। सरस्तटशाद्वले = सरसीतीरस्थघासवत्प्रदेशे। पर्याटयन् = भ्रामयन्। अपनेतुम् = दूरीकर्तुम्।

सौवर्ण्या, मूर्त्या=प्रतिबिम्बेन। चित्रफलकम् = चित्रपट्टम्। चित्तम्=

रघुवीरसिंह ने कुछ मार्ग पारकर, विकसित कमलो वाला, सारस, कारण्डव आदि पक्षियो के समूह से कूजित एक सरोवर देखकर, "मै बहुत देर से प्यासे होने के कारण शिथिल घोडे को पानी पिलाकर अभी आपके पीछे ही आ रहा हूँ, तब तक आप चलकर महाराज का दर्शन करें" यह कहकर गौरसिंह को बिदाकर अपने घोडे की लगाम वही खीच ली। और फिर वह (रघुवीरसिंह) घोडे के मुख से निकल रहे फेन मे लिपटी लगाम वाली रस्सी को उतार कर, उसकी पीठ भिगोता हुआ, उसे जल पिलाता हुआ तथा सरोवर के किनारे की घास पर टहलता हुआ, उसकी थकान दूर करने लगा। रघुवीर का चित्त तो निरन्तर सौवर्णी की मूर्ति से चित्रित चित्र फलक सा है।

मित्यस्मिन्नेकान्ते पुनरुदभूवस्तद्विषयिण एव मानसा कथाप्रसारा – यत् "किमिव करोमि ? अल्प मे महत्त्वम् क्षुद्रोऽधिकार, असि-धारावलेहनमिव कार्यम्, प्रत्यह वर्द्धमान उपद्रवो महाराष्ट्रदेशे, स्वप्रेम्णा क्रीतवती मे हृदय सौवर्णी। सा महता कुलरत्नम्, महा-धिकारस्य श्रीमतो गौरसिहस्य भगिनी, कस्यापि कृतपुण्यस्य जनस्य जनु सफलयितुमवतीर्णा, तथाऽपि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च। न जाने, केनेवान्तरात्मना प्रेरितोऽहमपि तयैव पाणिपीडा प्रतिज्ञातवान्। अहह! कथमेतत् सम्भवेत् ? मनोरथोऽय चिरेणापि साधयितु दु शक, मन्मथस्तु प्रतिक्षणमेव मनो मथ्नाति।

मानसम्। एकान्ते=रहसि। तद्विषयिण =सौवर्णीसम्बन्धिन। कथाप्रसारा = विविधा आलापा।

क्षुद्र =हीन। अधिकार =स्वाम्यम्। स्वप्रेम्णा=निजस्नेहेन। कुले= अन्वये। रत्नम्=श्रेष्ठा। कृतपुण्यस्य=विहितसुकृतस्य। जनु =जन्म। सफलयितुम्=सफलीकर्तुम्। स्त्रियो हि जन्मिना जन्मना साफल्यस्य वैफल्यस्य च कारणता गता। दूयते-खिद्यते-प्रभृतीना प्राय समानार्थकाना खेदाधिक्यप्रदर्शनायाभिधान वक्तुश्च विरहदूयमानमानसत्वादिति पौनरुक्त्यदोपा-ङ्कुशताऽवधेया।

पाणिपीडाम्=विवाहम्। प्रतिज्ञातवान्=प्रतिश्रुतवान्। मन्मथ = काम। मथ्नाति=आलोडयति।

अत उस एकान्त मे उसके मनमे पुन तद्विषयक विचार उठने लगे, कि—

"क्या करूँ ? मेरा महत्त्व थोडा है, अधिकार कम है, और कार्य तलवार की धार को चाटने के समान दुष्कर है, महाराष्ट्र मे प्रतिदिन उपद्रव बढ रहा है, सौवर्णी ने अपने प्रेम से मेरा मन मोल ले लिया है। वह महान लोगो के कुल की रत्न है, महान् अधिकारी श्रीमान् गौरसिह की भगिनी है, और किसी पुण्यवान मनुष्य के जन्म को सफल करने के लिए अवतीर्ण हुई है, फिर भी वह मेरे लिए ही रोती है, कष्ट पाती है, खिन्न होती हे, तथा सन्तप्त होती है। न जाने किस अन्तरात्मा से प्रेरित होकर मैने भी उसी के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर

अहह! तस्यास्तानि तानि भाषितानि, तानि तानीङ्गितानि, तानि तानि भ्रूविभ्रमणानि, तानि तानि प्रेक्षितानि, तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानीव निमग्नानि मम हृदये। स्वप्नेष्वपि तामेव सुदतीं मदर्थं रुदतीमवलोकयामि, "प्रिये! प्रिये! मा स्म मृणाल–कोमलान्यङ्गानि चिन्ता–सन्तान–ज्वाला–जालावली-ढानि कार्षी" इति सक्षोभं विलपंश्च भग्ननिद्रः समुत्थाय परितस्तामेव कटाक्षपातैर्मां निघ्नतीमिवान्वेषयामि।

अहह! कथं तां प्राप्नुयाम्? कथं तां परिणयेयम्? कथं वा तदधर–सीधु–समास्वादेन सुधा–सुखमधरीकुर्याम्? हन्त! कष्ट

इङ्गितानि=चेष्टितानि। भ्रूविभ्रमणानि = भ्रूचालनानि। प्रेक्षितानि= अवलोकनानि। शल्यानीव=कण्टका इव। निमग्नानि=खचितानि। सुदतीम्= शोभनदन्तवतीम्। चिन्तासन्तापज्वालावलीढानि = चिन्तनानुतापकीलाल-समूहालिङ्गितानि। निघ्नतीम् = मारयन्तीम्। अन्वेषयामि = गवेषयामि। परिणयेयम् = विवाहयेयम्। तदधरसीधुसमास्वादनेन = तदोष्ठ-

---

ली है। हा! यह कैसे होगा? इस मनोरथ को चिरकाल में भी सिद्ध करना कठिन है, और कामदेव प्रतिक्षण ही मन को मथ रहा है।

अहा! उसकी वे बातें, वे हाव-भाव, वे भौंहों के विलास, कटाक्ष, वे हास्य और वह रुदन मेरे हृदय में काँटों की तरह गड गए हैं। स्वप्नों में भी उसी सुदती (सुन्दर दाँतों वाली) को अपने लिए रोती देखता हूँ। और क्षुब्ध होकर "प्रिये! प्रिये! कमलनाल के समान सुकुमार अंगों को चिन्ताओं की परम्परा की ज्वाला के समूह में मत जलाओ" इस प्रकार प्रलाप करता हुआ निद्रा टूटने पर उठकर चारों ओर कटाक्षों से अपने को (मुझे) आहत करती भी उसी सौवर्णी को खोजता हूँ।

अहा! उसे कैसे पाऊँ? उससे कैसे विवाह करूँ? और किस प्रकार उसके अधरों की मदिरा के पान से अमृत के भी सुख को तिरस्कृत करूँ? हा! मेरे

जीवन मादृशानाम्, किमिव नाहं युद्धभूमिषु विनाश्ये? हा दैव! किं प्रिया-वियोग-दुःखेनैव हृदयहतकं शोषयितुं जीवयसि?"

एवं चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः सोऽश्वमारुह्य चलितश्चित्त-परवशतया "सिंहदुर्गं यामि" इति मनसि निधाय प्रस्थितोऽपि तोरण-दुर्गं प्राप्तः। तत्र च चकितः काम-परवशतया धैर्य-विरहं च निन्दन्, मारुति-मन्दिर-पूर्व-वाटिकां प्रविष्टः, एकस्मिन् कुञ्जे उपविश्य, निःशब्दं रुदतीं च तामेव प्राणप्रियां ददर्श। सा तु दृष्ट्वैव एनमुत्थाय "कितव! सुसमये समायातोऽसि, तिष्ठ, यावदहं त्वां पश्यन्त्येव शाखि-शाखयाऽऽत्मानमुद्बध्य प्राणांस्त्यजामि" इति रोषारुणाभ्यां नयनाभ्यामनिमिषमीक्षमाणा व्याहृतवती। रघुस्तु-"प्रिये! कथय,

---

मधुरस-ग्रहणेन। सुधासुखम्=पीयूषपानानन्दम्। अधरीकुर्याम्=अवरं विदध्याम्। विनाश्ये=मारितो भवामि।

चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः=विचार-समूह-विवर्धन-रतः। काम-परवशताम्=कामाधीनताम्। धैर्यविरहम्=धीरताराहित्यम्। कुञ्जे=लतादिपिहितोदरे स्थाने। निःशब्दम्=ध्वनिशून्यम्, अस्फुटशब्दमिति यावत्। कितव!=धूर्त! शाखिशाखायाम्=वृक्षविटपे। व्याहृतवती=जगाद।

समान लोगों का जीवित रहना ही कष्टपूर्ण है, मैं रणक्षेत्रों में ही क्यों नहीं मार डाला जाता हूँ? हा! भगवन्! क्या प्रिया के विरह के दुःख से ही इस अधम हृदय को सुखाने के लिए मुझे जीवित रख रहे हो?"

इस प्रकार चिन्ता की परम्पराओं के जाल में फँसा हुआ, वह घोड़े पर सवार होकर चला और चित्त की परवशता के कारण मनमें "सिंहदुर्ग जाऊँगा" यह सोचकर चला हुआ भी तोरणदुर्ग पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर वह आश्चर्य में पड़ गया और काम की पराधीनता तथा धैर्य के अभाव की निन्दा करता हुआ हनुमान मन्दिर के पूर्व की वाटिका में चला गया और वहाँ जाने पर उसके एक कुञ्ज में बैठकर मूक रुदन करती हुई उसी प्राणप्रिया को देखा। सौवर्णी उसे देखते ही उठकर "धूर्त! अच्छे समय पर आ गए हो, ठहरो मैं तुम्हें देखती हुई ही वृक्ष की डाल में अपने को बाँधकर प्राणों का परित्याग कर दूँ" इस प्रकार क्रोध से लाल, नेत्रों से निर्निमेष देखती हुई बोली। रघुवीरसिंह ने निवेदन किया "प्रिये!

किमिव सवृत्तम ? केनाऽवहेलिताऽसि ? केन क्ष्वेलिताऽसि ? तोरण–दुर्गं–नेदीयस्यस्मिन् महाराष्ट्र-राज-भट-सङ्घट्ट-रक्षिते उद्याने कस्य वा शक्तिस्त्वा धर्षयितुम् ?" इति न्यवीविदत् ।

सा तु पुनराह–"वीर ! रक्षक एवाऽत्र भक्षक । योऽय क्रूरसिंहाऽभिधोऽश्वारोहाणा पञ्चशत्या अध्यक्षोऽत्र तोरणदुर्गं-प्रान्त-रक्षकत्वे नियुक्त , स स्वयमेव केनाऽपि व्याजेनाऽऽगत्य मामवलोक्य हसति, भ्रुवौ नर्त्तयति, करकम्पनैराह्वयति, मन्द मन्द किमप्यभिदधाति च । अद्य तु उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वती मामकस्मादुपगत्य चिर "प्रिये प्राणेश्वरि ! अनुगृहाण, पाणि मे गृहाण" इति अवादीत् । मया बहुशो धिक्कृतश्च "जाने, त्व रघुवीरेऽनुरक्ताऽसि, तत् मपदि त मदसि–विलीढमालोक्य मा वरिष्यसि" इत्युक्त्वा श्च्योतद्रक्ताभ्यामिव नेत्राभ्या विदारयन् मम हृदय, निरगात् ।

अवहेलिता = तिरस्कृता । क्ष्वेलिता = हास्यविषयीकृता । तोरणदुर्गस्य नेदीयसि = अन्तिकस्थे । महाराष्ट्रराजस्य, भटानाम् = वीराणाम्, सङ्घट्टेन = सम्मर्दैन, रक्षिते = पालिते । धर्षयितुम् = दूषयितुम् ।

तोरणदुर्गप्रान्तरक्षकत्वे = तोरणदुर्गयुतदेशखण्डशासकत्वे । व्याजेन = छद्मना । करकम्पनै = हस्ताह्वानै । किमपि = अश्रोतव्यमश्रुत च । अवचिन्वतीम् = सङ्कलयन्तीम् । उपगत्य = समीपमागत्य । अनुगृहाण = कृपा कुरु । धिक्कृत = भर्त्सित इति यावत् । मदसिना विलीढम् = विद्धम् । आलोक्य =

कहो, क्या हो गया ? किसने तुम्हारा अपमान किया ? किसने तुम्हारा उपहास किया ? तोरणदुर्ग के समीप ही स्थित महाराष्ट्र नरेश के सैनिको के समूह से रक्षित इस वाटिका मे तुम्हे दूषित करने की किसकी सामर्थ्य है ?"

उसने फिर कहा—"वीर ! यहाँ तो रक्षक ही भक्षक है । यह जो क्रूरसिंह नामक पाँच सौ घुडसवारो का नायक यहाँ तोरणदुर्ग के प्रदेश के रक्षक पद पर नियुक्त है, वह स्वय ही किसी बहाने आकर मुझे देखकर हँसता है, भौहे नचाता है, हाथ हिलाकर बुलाता है, और धीरे-धीरे कुछ कहता भी है । आज तो जब मैं वाटिका मे फूल तोड रही थी, तो अकस्मात् आकर देरतक "प्रिये ! प्राणेश्वरी ! दया कर, मेरा हाथ पकड लो" यह कहता रहा । मेरे बहुत धिक्कारने पर "जानता हूँ, तुम रघुवीर से प्रेम करती हो, तो शीघ्र ही उसे मेरी तलवार से चाटा गया

नदाकर्ण्य दु खितो रघुवीरश्चिर ता सान्त्वयित्वा, क्रूरे कुपित सिहदुर्ग प्रास्थित । अकस्माच्च तस्मिन्नेव दिने पुण्यनगरात् पूर्वस्या सेनास्थाने स्व-सादि-समूहेन सह स्थातु क्रूरसिहेन महाराजस्याऽऽदेश प्राप्त , इति स तथाऽकरोत्। अत्र चाऽन्य ससादिगणो रक्षक आगत , इति किञ्चिच्छान्त सौवर्ण्या आधि ।

एव विलक्षणा सवृत्ता दैवघटना, यदेकत पुत्र-वियोग-दु खित पुनस्तत्प्राप्तये साधन-विशेषमनुतिष्ठन् वीरेन्द्रोऽवसीदति। अन्यत सौवर्णी-विवाह-चिन्ता-ग्रस्तौ रामसिहालुलोकयिषा-लोलुप-लोल-लोचनौ गौरश्यामौ विषीदत, परतो रघुवीराय लज्जया विरहय्य

वीक्ष्य । वरिष्यसि = स्वीकरिष्यसि । च्योतद्रक्ताभ्यामिव = प्रवहल्लोहिताभ्यामिव । निरगात् = निष्क्रान्त ।

सान्त्वयित्वा=प्रशाम्य। स्वसादिसमूहेन=निजाश्वारोहिव्रातेन। आधि = मानसिकी व्यथा । "पु स्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमर ।

साधनविशेषम् = मन्त्रानुष्ठानम् । अवसीदति=क्लिश्नाति । रामसिहस्य, आलुलोकयिषया = द्रष्टुमिच्छया, लोलुपे = अभिलाषुके, लोले = चपले, च लोचने = नयने, ययोस्तौ । विषीदत = विषाद कुरुत । लज्जया=त्रपया।

(कटा हुआ) देखकर मुझे वरण करोगी" यह कहकर रक्त टपकाती हुई सी आँखो से मेरा हृदय चीरता हुआ चला गया ।"

यह सुनकर दु खी रघुवीर ने उसे देर तक सान्त्वना देकर क्रूर पर क्रुद्ध हो सिंहदुग को प्रस्थान किया । एकाएक उसी दिन क्रूरसिह को पूनानगर से पूर्व, सेना के पडाव पर अपने घुडसवारो सहित रहने के लिये महाराज शिवाजी का आदेश मिला, उसने वैसा ही किया, और यहाँ (तोरणदुर्ग मे) अश्वारोहियो सहित दूसरा रक्षक आ गया। अत सौवर्णी की चिन्ता कुछ शान्त(कम) हो गई ।

ऐसी विचित्र दैवी घटना हुई कि एक ओर पुत्र के वियोग मे दु खी वीरेन्द्र-सिंह उसकी पुन प्राप्ति के लिये विशिष्ट उपाय करते हुये क्लेश झेल रहे है, और दूसरी ओर सौवर्णी के विवाह की चिन्ता से ग्रस्त रामसिंह को देखने की इच्छा से लोलुप चञ्चल नेत्रो वाले गौर और श्याम खिन्न हो रहे है । उधर हृदय से

वितीर्णेव, उत्कण्ठया समाकृष्य समर्पितेव, इन्द्रिय-गणेन कुसुमेषु-घातैर्वशवदा विधाय विनिवेदितेव, मदनेन किङ्करीकृत्योपहृतेव, कामेन दुर्मद-मदन-मदैर्मामद्यमानाऽप्यधिक सम्मदय्य प्रदत्तेव, अनुरागेण सकल-गुण-गुणान् विगणय्य विक्रीतेव, हृदयेन रघुवीर चिन्तयन्ती कोशला दिवसान् गणयति। ततो रसनारी च महाराष्ट्रराजस्य मधुरालापैरिव क्रीता, मन्मथोन्मथितेन मनसेव विक्रीता—

"कथमेतेन परिणीता भवेयम् ? कथमेनेन सह विहरेयम्? कथमेतस्य चिर-विहार-विसृमरान् स्वेद-कणानात्मन शाटीप्रान्तेन परिहरेयम् ? कथमेतस्य "प्रिये ! पूर्णदृशाऽवलोक्याऽनुगृह्णीष्व माम्" इति

विरहय्य = वियोज्य। वितीर्णा = दत्ता। उत्कण्ठया = आध्यानेन। कुसुमेषुघातै = पुष्पेषुताडनै। वशवदाम् = अधीनाम्। विनिवेदिता = नम्रतया प्रदत्ता। दुर्मदस्य = दुर्दमनीयस्य, मदनस्य मदै। मामद्यमाना = अतितरा माद्यन्ती। सम्मदय्य = मत्ता विधाय। मन्मथोन्मथितेन = कामोत्पीडितेन।

परिणीता = विवाहिता। विहरेयम् = विहार कुर्याम्। चिरविहार-विसृमरान् = दीर्घकालक्रीडाप्रसृतान्। स्वेदकणान् = श्रमबिन्दून्, शाटीप्रान्तेन =

रघुवीर का चिन्तन करती हुई कोशला दिन गिन रही है। मानो लज्जा ने उसका परित्याग कर उसे रघुवीर को दे डाला हो, मानो उत्कण्ठा ने उसको आकृष्ट कर रघुवीर को समर्पित कर दिया हो, मानो इन्द्रियो ने पुष्पबाणो के प्रहार से अपने आधीन कर उसे रघुवीर को निवेदित कर दिया हो, मानो कामदेव ने उसे अपनी दासी बनाकर रघुवीर को उपहार मे दे दिया हो, मानो कामना ने असह्य कामोन्माद से उन्मत्त उसे और भी अधिक मतवाली बनाकर रघुवीर को प्रदान कर दिया हो, मानो अनुराग ने उसके सारे गुणो की अवहेलना कर उसे रघुवीर के हाथ बेच दिया हो।

वहाँ रोशन आरा महाराष्ट्र नरेश के मधुर सभाषण से खरीद ली गई सी, काम पीडित मन द्वारा बेच दी गई सी—

"इनके साथ मेरा विवाह कैसे हो ? कैसे इनके साथ विहार करूँ ? किस प्रकार चिरकाल तक विहार करने से उत्पन्न इनके (शरीर के) पसीने की बूँदो को अपनी साडी के आँचल से पोछूँ ? कैसे इनकी "प्रिये ! आँख भर देखकर

चाटु-वचन-रचनानि समाकर्णयेयम् ? कथमिव चाऽस्मै स्वमनोरथ सूचयेयम् ? एष वैदिक-धर्मानुष्ठानायैव दत्त-हस्तावलम्बन, तत् कथमेष म्लेच्छराज-तनया मामर्द्धाङ्गिनी विधित्सिष्यति ? अहह ! हताऽहम्, किमिति म्लेच्छ-गर्भात् सम्भूताऽस्मि ? चक्रवर्तिनन्दिनीति व्यर्थो मेऽभिमान । वर राजपत्नी, न तु राजकन्या । न जाने, कस्मै दित्सते मा तात ? अवश्यमनुचरायैवाऽनुगतायैव च कस्मैचन दास्यति, न तु स्वतन्त्रो महाराष्ट्रराज-सदृशो महाराज कश्चन तस्य प्रेमपात्रम् । तत् किं लज्जया विरज्य, धैर्यमवधीर्य, गुणान् विगणय्य, वाचालतामूरीकृत्य, धृष्टता शिरसि सस्थाप्य, अभिमानमवमान्य, चापल चाऽवलम्ब्य, स्वयमेव किमप्यमुष्मिन् विषये प्रकटयामि ? पर

धौताञ्चलेन । परिहरेयम्=दूरयेयम् । चाटुवचनाना रचनानि । समाकर्णयेयम्=शृणुयाम् । सूचयेयम्=बोधयेयम् । दत्तहस्तावलम्बन = कृतकराश्रय । अर्द्धाङ्गिनीम्=अर्धशरीररूपिणीम् । भार्यामिति यावत् । विधित्सिष्यति=कर्तुमेष्यति । सन्नन्ताद् लृट् । म्लेच्छगर्भात्=यवनान्युदरात् । जातिविवक्षया पुस्त्वम् । "कुक्कुटयादीनामण्डादिष्वि"ति वार्तिकप्रत्याख्याने भाष्ये समाश्रितमिदमिति सन्तोष्टव्यम्, म्लेच्छ इत्यत्रैकशेषो वा । चक्रवर्त्तिन =सम्राज, नन्दिनी=तनया । दित्सते=दातुमिच्छति । अनुगताय=वच पालकाय । विरज्य=विराग कृत्वा । अवधीर्य=तिरस्कृत्य । अवमान्य=अपमानित

मुझे अनुगृहीत करो" ये चाटुकारितापूर्ण बाते सुनूं ? और कैसे इन्हे अपनी अभिलाषाओ को बताऊँ ? यह वैदिक धर्म की साधना मे सहायता करने वाला है फिर कैसे मुझ यवनराज की कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहेगा ? मै अभागिन हूँ, मैं म्लेच्छ के गर्भ से क्यो उत्पन्न हुई ? मेरा चक्रवर्ती की कन्या होने का गर्व व्यर्थ है । राजकन्या होने से राजपत्नी होना अच्छा है । न जाने पिता जी मुझे किसे देना चाहते हैं ? अवश्य ही किसी अनुचर या अनुगामी को देगे । महाराष्ट्र नरेश के समान कोई स्वतन्त्र राजा उनका स्नेह-भाजन नही है । तो क्या लज्जा छोडकर, धैर्य की अवहेलना कर, गुणो का तिरस्कार कर, वाचाल बनकर, धृष्टता को अपना कर, अभिमान को अपमानित कर, चपलता का सहारा लेकर

न वेद्मि प्रकारमपीदृशे प्रेमाचारे स्वाभिलाष–प्रकाशनस्य। एतद्विषये एतस्य सत्कारोऽपि तिरस्कार, आदरोऽपि न्यक्कार, स्तवोऽपि परिभव, आलापोऽपि विलाप, सेवनमपि परिदेवनम्, भाषणमपि च भषणम्, हा हताऽस्मि दुराचारेण मारेण।"

इति जल्पन्ती केनचन धवलिम्नेवाऽऽलिङ्ग्यमाना, पाण्डुरतयेव स्नप्यमाना, रोमपञ्जरेणेव निगृह्यमाणा, स्वेदबिन्दुसन्दोहैरिवाऽभिषिच्यमाना, प्रेम-निगड-बद्धा, अनुराग-कारागार-सयन्त्रिता, कदाचिदुच्छ्वसन्ती, कदाचिदश्रूणि मुञ्चन्ती, कदाचिच्छून्यं जगदाकलयन्ती, कदाचित् तदभिनिविष्टचेतना सम्मुख–स्थितमिव च महाराष्ट्रराजं

कृत्वा। चापलम् = चाञ्चल्यम्। अवलम्ब्य = आश्रित्य। प्रेमाचारे = स्नेहव्यवहारे। स्वाभिलाषप्रकाशनस्य = स्वमनीषितप्रकटीकरणस्य। परिभव = अनादर, "परिभव परीभावस्तिरस्क्रिया" इत्यमर। विलाप = रोदनम्। परिदेवनम् = कृतस्य कर्मणोऽनुचितत्वबुद्ध्याऽनुताप। "विलाप परिदेवनम्" इत्यमर। भषणम् = कुक्कुररव। दुराचारेण = कुव्यवहारेण। मारेण = मन्मथेन।

धवलिम्ना = श्वैत्येन। आलिङ्ग्यमाना = आश्लिष्यमाणा। पाण्डुरतया = ईषत्पीतवर्णतया। रोमाण्येव पञ्जरम् = शुकादिबन्धनस्थानम्, तेन। निगृह्यमाणा = बध्यमाना। अभिषिच्यमाना = स्नप्यमाना। प्रेमैव निगडम् = लोहदाम, तेन बद्धा। अनुराग एव कारागारम् = चारकम्, तस्मिन् सयन्त्रिता = नियमिता। आकलयन्ती = अवधारयन्ती। तदभिनिविष्टचेतना = शिवमयी-

---

स्वय ही कुछ इस विषय मे प्रकट करूँ? परन्तु मैं तो इस प्रकार के प्रेम के व्यवहार मे अपनी इच्छाओ को व्यक्त करने का ढग भी नही जानती। इस विषय मे इनका सत्कार भी तिरस्कार है, आदर भी अपमान है, स्तुति भी निन्दा है, कहना भी दीनता प्रकट करना है, सेवा भी दैन्य है, बोलना भी भूँकना है। हाय! दुष्ट कामदेव द्वारा मारी गई।"

इस प्रकार प्रलाप करती हुई, किसी धवलिमा से आलिङ्गित की गयी सी, पीलेपन से नहलाई गई सी, रोमपञ्जर से जकडी-सी, पसीने के बिन्दुसमूह से अभिषिक्त-सी, प्रेम के पाश मे बँधी, अनुराग के कारागार मे कैद की गई, कभी दीर्घ नि श्वास लेती, कभी आँसू बहाती, कभी ससार को सूना समझती, कभी

पश्यन्ती खिद्यते । इत क्रूरतया रघौ क्रूर कर्म चिकीर्षु कोशला-कामनया क्लिश्यति । ततो रघुवीरोऽपि क्रूर–क्रूरतामाकलय्य ग्लायति, इति वहूना हृदये चिन्तासन्तान–विताना ज्वालामुखपर्वता इव जाज्वल्यन्ते ।

× × ×

इतश्च माया–भवने सादर सस्थापितोऽपि मायाजिह्मो नतरा केनाऽपि सह सम्भाषते, नतमा वा कमपि पूर्णदृशाऽवलोकयति । एव चिर-चिन्ता-पूर-पूरित "अद्य हन्ये, श्वो विनाश्ये' इति स्वस्मिन् नृशम कर्माऽऽशङ्कमान एवैकदा कैश्चित् सहचरै सह समायान्त महाराष्ट्रराज-मद्राक्षीत् । यावदेष तत्प्रभाधर्षित उत्थाय किमपि विमृशति स्म, तावत् स स्वयमेव सादरमुवाच यद् "भद्र भवतु राजकुमारस्य । न

भूतचैतन्या । क्रूर =तन्नामा । रघौ=रघुवीरे । क्रूरम् = अमानुषम् । क्रूरतया = कठोरतया । ज्वालामुखपर्वता इव = वह्न्युद्गिरका गिरय इव । जाज्वल्यन्ते = अतितरा ज्वलन्ति ।

× × ×

नतराम् = सर्वथा नैव । सम्भाषते = वक्ति । पूर्णदृशा = समस्तचक्षुषा, द्रष्टव्यरूपेणेति यावत् । चिर-चिन्तापूर-पूरित = दीर्घानुचिन्तनप्रवाहपूर्ण । हन्ये, विनाश्ये, अहमिति शेष , कर्म । नृशसम् = क्रूरम् । अद्राक्षीत् = अवालोकयत् । तस्य प्रभया = कान्त्या, धर्षित । विमृशति स्म = व्यचारयत् ।

शिवाजी का ध्यान करती हुई उन्हे सामने खडा सा देखती हुई व्यथित हो रही है। इधर क्रूरता से रघुवीर के प्रति निर्दय काम करने की इच्छा से क्रूरसिह कोशला की चाह मे क्लेश पा रहा है। उधर रघुवीर भी क्रूर के प्रति क्रोध धारण कर दु खी है। इस प्रकार वहुतो के हृदय मे चिन्ता की लहरो के विस्तार ज्वाला-मुखी पर्वतो की भाँति अत्यधिक जल रहे है ।

इधर मायामहल मे सम्मान पूर्वक ठहराया गया भी मुआजम न तो किसी के साथ अधिक बोलता ही था ओर न तो किसी को पूरी दृष्टि से देखता ही था। इस प्रकार चिरकाल तक चिन्ता मग्न होकर "आज मारा जाऊँगा, कल मारा जाऊँगा" इस प्रकार अपने विषय मे नृशस कार्य की आशका करते हुए ही उसने एक वार अपने कुछ सहयोगियो के साथ महाराष्ट्र राज शिवाजी को आते देखा। उनके तेज से दवा हुआ सा वह उठकर अभी कुछ सोच ही रहा था कि उन्होने

मा पूर्वमपश्यद् भवान्, इति सूचयामि, मा जना 'शिवराज' इति कथयन्ति। कुमारस्याऽपि पित्रा सह मम बहूनि युद्धानि जातानि, भवन्ति च। श्रूयते, श्रीमानपि मया योद्धमेव प्रेषित इति, पर स्वच्छतया वा, साधुतया वा, मुग्धतया वा अल्पवयस्कतया वा, सङ्ग्राममननुष्ठायैव मम गृहमायात, इति स्वागतम्। कच्चिद् यथासमय यथोचिताचारैरुपतिष्ठन्ते दासेरा ? कच्चित् प्रसीदति वा भवान् ? उपविश्यतामुपविश्यताम्' इत्युक्त्वा, तमुपवेश्य स्वयमप्युपविष्ट। एव साम्रेडमापृच्छयमान कुमारोऽपि ह्रीपरवश कथमपि सम्मुख मुख विधायोक्तवान्—"राजन्! अह शत्रुपुत्रोऽस्मि, योद्धु चाऽऽयातोऽस्मि इति निगृहीतश्चेद्धन्तव्य,

---

भद्रम् = कल्याणम्। स्वच्छतया = निर्मलतया। साधुतया = परोपकृतिपटुतया। मुग्धतया = सरलतया। अल्पवयस्कतया = न्यूनावस्थाकतया। अननुष्ठाय = अविधाय। स्वागतम् = शुभागमनम्। दासेरा = भृत्या। उपतिष्ठन्ते = सेवा कुर्वन्ति, "उपाद् देवपूजासङ्गतिकरणे' त्यादिनाऽऽत्मनेपदम्। प्रसीदति = तुष्यति। साम्रेडम् = अनेकवारम्। ह्रीपरवश = त्रपाधीन।

स्वय ही आदर पूवक कहा "राजकुमार का कल्याण हो आपने मुझे पहले नही देखा है। अत मैं अपना परिचय दे रहा हूँ, मुझे लोग शिवाजी कहते ह। आप के पिता जी के साथ मेरे वहुत से युद्ध हुए हैं और अव भी हो रहे हे। सुना जाता है कि आप भी मझसे लडने के लिए ही भेजे गये थे, परन्तु निर्मलता या सज्जनता या सरलता, या अवस्था कम होने से विना युद्ध किये ही मेरे घर आगए। अत आप का स्वागत है। समयानुसार यथोचित आचार से नौकर आप की सेवा तो करते हे न ? आप प्रसन्न तो है ? वैठिये, वैठिये" यह कह कर उसको वैठाकर शिवाजी स्वय भी वैठ गए। इस प्रकार वार-वार पूछने पर कुमार ने भी लज्जित होते हुए किसी प्रकार मुख सामने करके कहा—"राजन्! मैं शत्रु का लडका हूँ,

दण्डयितव्यश्च, न तु सत्कारैस्तिरस्करणीय , स्वागत-वाणी-बाणैश्च मर्मसु वेधनीय ।

ततस्तावेवमालापिष्टाम्—

शिव०—कुमार ! केय कथा ? राज्ञा पारस्परिका सन्धिविरोध-रूपा भवन्त्येव सम्बन्धा इति दैवान्मे विरोधस्तव पित्रा। त्व तु यथा दिल्लीनायकस्य लालनीयस्तथा ममापि, इति दर्शं दर्श तव यौवनोद्भेद-सुभगान्यङ्गानि प्रीतिरेव मे वर्द्धतेतराम्।

कुमा०—एव चेत् कथ निगृहीतोऽस्मि ? स्वतन्त्र कथ न क्रिये ?

शिव०—कोऽत्र निग्रह ? केवल मम साक्षात्कारायाऽत्र वासितो

सम्मुखम् =पुर । निगृहीत =चारके कृत । दण्डयितव्य =दण्डविषयी-कर्त्तव्य। सत्कारै =आदरै। स्वागतवाण्य एव बाणा =इषव, तै । मर्मसु= कोमलेषु रक्षणीयेषु स्थानेषु च । वेधनीय =प्रहरणीय ।

आलापिष्टाम् =वार्तामकुरुताम् । लुङ-प्रथम-पुरुष-द्विवचनम् ।

पारस्परिका =आन्योन्या । दैवात् =अदृष्टात् । लालनीय =सुखेन पालनीय । यौवनोद्भेदसुभगानि =तारुण्योद्गमसुन्दराणि ।

और युद्ध करने के लिये आया हूँ । अत यदि पकड लिया गया हूँ, तो आप मुझे मार डाले और दण्ड दे, न कि सत्कारो से तिरस्कृत करे, और न स्वागत की वाणी के बाणो से मर्माहत करे ।"

तदनन्तर उन दोनो ने इस प्रकार वार्तालाप किया—

शिवाजी—कुमार ! यह क्या बात है ? राजाओ के परस्पर सन्धि और विग्रह के सम्बन्ध तो होते ही हैं, और सयोग से हमारा आपके पिता से विरोध है। आप तो जैसे दिल्ली के बादशाह के लिए स्नेहपात्र है वैसे ही मेरे भी, इसलिए यौवन के स्फुटित होने से सुन्दर लगने वाले आपके अगो को देख-देख कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है ।

कुमार—यदि ऐसा ही है तो मै कैद क्यो किया गया हूँ ? स्वतन्त्र क्यो नही कर दिया जाता हूँ ?

शिवाजी—यहाँ बन्धन क्या है ? केवल मुझसे भेट करने के लिये आप

भवान्। अधुना तु यथा रोचेत, तथा विधातु शक्यते। अस्मिन् देशे न कदाऽप्यायातो भवान्, इति कुतुहल चेदवलोक्यन्ता विविधानि दुर्गाणा पर्वताना वनाना च रामणीयकानि। निविर्वत्तिषते चेत्, सुखेन गम्यता स्वदेशे, निर्विघ्नमास्माकीना सादिन प्रतियापयिष्यन्ति आयुष्मन्तम्।

कुमा०— [तदौदार्येण चकित इव] महाराष्ट्रराज ! किमिव व्यामोहयसि ? न भवति मे निश्चयो यन्महत्या वाहिन्या सह भवतो राज्यमात्मसात्कर्तुमायाते मादृशे श्रीमानेव दयिष्यते इति।

शिव०—आ ! कोऽत्र सशय ? नैतद् भवतस्तातचरणाना राज्यम्, यत्र विश्वासघातो विध्वसो लुण्ठन दाहश्च वशवदानामपि क्रियते।

निग्रह =बन्धनम्। साक्षात्काराय=अवलोकनाय। अवलोक्यन्ताम्=दृश्यन्ताम्। रामणीयकानि=सौन्दर्याणि। निविर्वत्तिषते=निर्वतितुमिच्छति। प्रतियापयिष्यन्ति=तत्र प्रापयिष्यन्ति। आयुष्मन्तम्=चिरायुषम्।

व्यामोहयसि=बुद्धिभेद जनयसि। वाहिन्या=सेनया। आत्मसात्कर्तुम्=स्ववशीकर्तुम्। दयिष्यते=दया करिष्यते।

यहाँ ठहराये गये है। अब आप जो चाहे कर सकते है। इस प्रदेश मे आप कभी नही आये हैं। अत यदि उत्सुकता हो तो विविध दुर्गो, पर्वतो और वनो की शोभा देखिये। यदि लौटने की इच्छा हो, तो सुख पूर्वक अपने देश चले जाइये। हमारे घुडसवार आपको निर्विघ्न पहुँचा देंगे।

कुमार—[उनकी उदारता से आश्चर्य मे पडा हुआ सा] महाराष्ट्र नरेश ! भ्रम मे क्यो डाल रहे है ? मुझे विश्वास नही हो रहा है, कि बहुत बडी सेना के साथ आपके राज्य पर अधिकार करने के लिये आये हुये मुझ जैसे व्यक्ति पर आप इस प्रकार दया करेंगे।

शिवाजी—आ ! इसमे क्या सन्देह है ? यह आपके पिताजी का राज्य नही है, जहाँ आधीन लोगो के साथ भी विश्वासघात, विध्वस, लूटपाट और

राज्यमिद महाराष्ट्राणाम्। नाऽत्र दारापहरणम्, नाऽत्र 'रक्ष रक्षेति' व्याहरमाणाना वध, न चाऽत्र वशमागतै सह विश्वासघात-व्यापार। सुखेन स्वगृहे इव यथेच्छ विहरतु भवान्।

तदखिलमिद सदाचार-सौष्ठवाधिक-मधुर वचनामृत कर्ण-पुटाभ्या पीत्वा स्वपितुर्दौरात्म्ये घृणामावहन्, महाराष्ट्रराजस्य निगृहीतेष्वपि सदाचार बहु मानयन् चिरमालपत् शिवराजेन मायाजिह्म।

तत "अद्य सपदि समायास्यति कश्चिन्मया प्रेषितोऽधिकृत, भवन्त च पुण्यनगर कानिचिच्च दुर्गादीनि दर्शयिष्यति" इत्यभिधाय प्रस्थिते महाराष्ट्र-राष्ट्र-त्रिविष्टपनाथे, कैश्चिन्नर्तितकाम्बोजै-

---

वशवदानाम् = अधीनानाम्। व्याहरमाणानाम् = कथयताम्। यथेच्छम् = यथाभिलषितम्। विहरतु=क्रीडतु, 'शेषे प्रथम' इति प्रथमपुरुषत्वम्।

सदाचारसौष्ठवेन, अधिकम्, मधुर यद् वचनामृतम् = उक्तिपीयूषम्। दौरात्म्ये = दुष्टतायाम्। आवहन् = धारयन्। मानयन् = मानित कुर्वन्।

अधिकृत = नियुक्त। महाराष्ट्राणा राष्ट्रम् = राज्यम्, तदेव त्रिविष्टपम् = सुरलोक, तन्नाथे = तदधीशे। नर्तिता = सुगत्या चालिता,

---

आग लगा देने आदि के दुष्कर्म किये जाते है। यह मराठो का राज्य है। यहाँ स्त्रियो का अपहरण नही होता, यहाँ 'रक्षा करो, रक्षा करो' कहकर शरण मे आए लोगो का वध और अपने वश मे कर लिये गये लोगो के साथ विश्वासघात का काम नही होता है। आप यहाँ अपने घर की भाँति सुखपूर्वक विहार करिए।"

तब सदाचार के सौष्ठव से अत्यधिक मधुर शिवाजी के वचनामृत को कर्ण-पुटो से पीकर अपने पिता की दुष्टता पर घृणा करता हुआ, शिवाजी के कैदियो किये गये अच्छे व्यवहार की मन ही मन प्रशसा करता हुआ मुआजिम शिवाजी से देरतक वार्तालाप करता रहा।

तदनन्तर, "आज अभी मेरा भेजा हुआ कोई अधिकारी आयेगा, और वह आपको पूना नगर तथा कुछ दुर्गो को दिखाएगा" यह कहकर महाराष्ट्र देश-

रश्वारोहैरनुसृत , श्यामेनैकेन सुवर्ण–वल्गेन राजत–खलीनेन मौक्तिक–स्तवक–राजि–राजित–निगालेन रत्न–निचय–रुचिर–रोचि प्रचय–च्छुरित—वालधिना सुवर्ण–सूत्र—ग्रथित—प्रान्त-पीत-कौशेयो-पवेशनिकाऽऽच्छन्न–मध्येन कशाङ्कितकक्षेण धृतरश्मिनैकेन नियन्त्रा मन्द मन्दमानीयमानेन वनायुजेन सहित श्यामसिंह समुपतस्थे ।

मायाजिह्मश्च तेनाऽऽलप्य हयमेनमारुह्य श्यामेन सह प्रथम पुण्यनगर प्राविक्षत् । तत्र च गृहे गृहे गीतानि द्वारि द्वारि रम्भा–

काम्बोजा = कम्बोजदशोद्भवा अश्वा यैस्तै अनुसृत = अनुगत । सुवर्ण-वल्गेन = हिरण्यरश्मिना । राजतखलीनेन = रौप्य-कविकेन । मौक्तिकस्तवकानाम् = मणिगुच्छानाम्, राज्या = श्रेण्या, राजित = शोभित , निगाल = गलोद्देशो यस्य तेन । रत्ननिचयस्य = हीरकादिसमूहस्य, रुचिरेण = मनोहारिणा, रोचि प्रचयेन = तेजोव्रातेन, छुरित = रुचित , वालधि = पुच्छ यस्य तेन । सुवर्णसूत्रग्रथिता = हिरण्यतन्तुस्यूता । प्रान्ते=चरमेऽशे, पीता = पीतवर्णा , 'गुणे शुक्लादय पुसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति" इत्यभिधानात् शुक्लादीना गुणगुण्युभयवाचकत्व घटते । या कौशेयस्य = पट्टवस्त्रस्य, उपवेशनिका=आसनिका, "चारजामा" इति हिन्दी । तया, आच्छन्न मध्य यस्य तेन । कशया = अश्वताडन्या, "कोडा चाबुक" इति हिन्दी । अङ्कित = चिह्नित , कक्ष = बाहुमूल यस्य तेन । धृतरश्मिना = गृहीतप्रग्रहेण, नियन्त्रा = सारथिना, "नियन्ता प्राजिता यन्ता सूत क्षत्ता च सारथि" इत्यमर । आनीयमानेन = प्राप्यमाणेन, वनायुजेन = वनायुदेशे जातेन सदश्वेन । "अरबी घोडा" इति हिन्दी ।

रूपी स्वर्ग के अधीश के चले जाने पर कम्बोजदेश के घोडो को नचा रहे कुछ घुडसवारो से अनुगत, सुवर्णसूत्र निर्मित रास वाले, चाँदी की लगाम (खलीन) वाले, मोती के गुच्छो की माला से सुशोभित गले वाले, रत्नो के समूह की मनोहर कान्ति के पुञ्ज से अङ्कित पुच्छ वाले, सोने के तारो से कढे हुए किनारे वाले पीले रेशमी चारजामा (गद्दी) से आच्छादित मध्यभाग वाले, काले रग के एक अरबी घोडे को, जिसे अपनी काख मे चाबुक दबाये हुये एक साईस रास पकडे हुये धीरे धीरे ला रहा था साथ लेकर श्यामसिंह उपस्थित हुआ ।

मुआज्जिम ने श्यामसिंह से बात करके उसके द्वारा लाये गये घोडे पर सवार होकर उसके साथ पहले पूना नगर मे प्रवेश किया । वहाँ पर घर-घर मे गीतो

स्तम्भान् कुट्टिमे कुट्टिमेऽवलम्बित-माणिक्य-दीपिकानुल्लोचान् वीक्षमाण, ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् सिन्धुरान्, उच्चैःश्रवस इव वान्धवान् सैन्धवान्, धारिताभिनववस्त्रान् पौरान्, समुद्धूत-विजयध्वजाञ्चाऽखिलान् गेहान् उपलभमान, भेरी पटह-झर्झरादि-नादाश्चाऽऽकर्णयन्, "अप्यस्ति कोऽप्यद्य उत्सवविशेष ?" इति श्याममपृच्छत्। स च "अद्य एकपदमेव महाराजो दिल्लीश्वर सौरतान् विद्रोहिण पोतयोधिन सामुद्राश्च पराजितवान् इति महोत्सवोऽस्मिन् राज्ये" इति समुदतारीत्, मायाजिह्मश्च सलज्जमश्रौषीत्।

अथ ततो निवृत्त सिंहदुर्गमायातस्तत्रत्यान् विजयध्वजानालोक्य

एनम् = पूर्वोक्तगुणगणयुतम्। प्राविक्षत् = प्रविवेश। कुट्टिमे कुट्टिमे = प्रतिनिबद्धभूमि। अवलम्बितमाणिक्यदीपिकान् = धारितमणिप्रदीपान्। उल्लोचान् = मण्डपानि। ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् = ग्रीवाभूषणभूपितग्रीवान्। सिन्धु = मदजलम्, अस्ति येषा तान् सिन्धुरान् = करिण। उच्चैःश्रवस = इन्द्रघोटकस्य। बान्धवानिव = भ्रातृनिवेत्युपमा। सैन्धवान् = हयान्। धारिताऽभिनववस्त्रान् = परिहितनूतनवसनान्। पौरान् = नागरिकान्। समुद्धूत-विजयध्वजान् = समुच्छलितजय-वैजयन्तीकान्। उपलभमान =समवलोकयन्। आकर्णयन् = शृण्वन्। उत्सवविशेष = महोद्धव। एकपदमेव = एकदैव। सौरतान् = सूरतदेशीयान्। पोतयोधिन =नौसङ्ग्रामकारिण। सामुद्रान् = उदधिसम्बन्धिन। पराजितवान् = परास्तवान्।

की ध्वनि सुनकर, द्वारो पर केले के खम्भो और फर्शों पर जिनमे मणिमय दीप लटक रहे थे ऐसे तम्बुओ, गले के आभूषण से अलकृत गर्दन वाले हाथियो, उच्चैःश्रवा के वन्धु-बान्धवो के समान अश्वो, नूतन वस्त्र धारण किये पुरवासियो और फहराती हुई विजय-पताकाओ से सुशोभित घरो को देखकर, भेरी, नगाडे, झाँझ आदि के शब्दो को, सुनकर श्यामसिह से पूछा, 'आज कोई विशेष उत्सव है क्या ?' उसने उत्तर दिया "आज एक साथ ही महाराज ने दिल्लीश्वर को, सूरत के विद्रोहियो को, और समुद्री लुटेरो (नौका से सग्राम करने वाले समुद्रियो) को पराजित किया है, इसलिये इस राज्य मे महोत्सव है।" मुआजिम ने लज्जापूर्वक यह उत्तर सुना। तदनन्तर मुआजिम वहाँ से सिंह दुर्ग लौट आया। वहाँ की (सिंह दुर्ग

किञ्चिदन्तर्गत्वा च शास्तिखान-शिरोभूषणादीनि बहूनि विजित्या-ऽऽच्छिद्याऽऽनीतानि वस्तूनि दृष्ट्वा ह्रीण इव हतोत्साह इव चकित इव च ततोऽपि निवृत्त, पथि महदेक महाप्रघण-शारद-घन-घनाघन-विडम्बन भवनमद्राक्षीत् तत्र प्रविश्य च रजतेन कनकेन च निर्मीयमाणा शिवराजनामाङ्किता मुद्रा निष्काणि च दृष्ट्वा तत प्रचलितो राजदुर्गमाससाद। दूरादेव दुर्गस्य समीपवर्त्तिनि प्रशस्ते शाद्वले च परस्सहस्रानश्वारोहान् उन्मुखयन्त भ्रामयन्त च महान्त कर्कमारूढ युवानमेक समलूलोकत्। कोऽसाविति पृष्टश्च श्यामसिंह "कुमार! एष मे ज्येष्ठो भ्राता, महाराष्ट्र-राजस्याऽन्यतम सेनापतिरस्ति इति व्याहार्षीत्।

विजयध्वजान् = विजयवैजयन्ती। ह्रीण इव = सलज्ज इव। महाप्रघण = गृहद्बहिर्द्वारप्रकोष्ठकम्, यस्मिस्तादृशम्, "प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके" इत्यमर। शारदस्य=शरदि भवस्य,घनस्य=सान्द्रस्य, घनाघनस्य=वर्षुकमेघस्य, "वर्षुकाब्दो घनाघन" इत्यमर। विडम्बना = अनुकृतिर्यस्य तत्, अभूतोपमालङ्कार। निर्मीयमाणा =विरच्यमाना। निष्काणि=सुवर्णमुद्रा। उन्मुखयन्तम् = अभिमुखयन्तम्, भ्रामयन्तम् = चालयन्तम्। "कवायद करानेवाले" इति हिन्दी। यूनो विशेषणम्। कर्कम् = श्वेतमश्वम्। "शुक्लोऽश्व कर्क उच्यते" इत्यभिधानम्।

की) विजय-पताकाओ को देखकर और कुछ अन्दर जाकर शाइस्ता खाँ के मुकुट आदि बहुत सी जीतकर छीनकर लाई गई वस्तुओ को देखकर वह लज्जित सा, हतोत्साह सा, और चकित सा वहाँ से भी लौट पडा और रास्ते मे उसने शरत्काल के घनी वर्षा करने वाले मेघ की विडम्बना करने वाले एक विशाल भवन को देखा, जिसके बरामदे बहुत बडे थे। उस भवन मे जाकर चाँदी और सोने से बनाई जा रही शिवाजी के नाम से अङ्कित मुहरो और सिक्को को देखकर, वहाँ से चलकर राजदुर्ग पहुँचा। दूर से ही दुर्ग के पास वाले साफ सुथरे घास के मैदान (नीव) मे सहस्राधिक (हजारो) अश्वारोहियो को कवायद कराते हुए एक विशालकाय श्वेत अश्व पर आरूढ एक युवक को देखा। 'यह कौन है' यह पूछने पर श्यामसिंह ने कहा—"कुमार! ये मेरे बडे भाई है, जो महाराष्ट्र नरेश के सेनापतियो मे से एक हैं'।"

तावदेकतो धौरितकेनाऽश्वारोह–शतकेनाऽनुगम्यमान , स्वयमपि पारसीकमेकमारूढ तथैव धावमानोऽनिल-लोल-कुन्तलो नवीनैररुणै-र्वासोभिरपरिचीयमानो रघुवीरसिंह समागत । समादर–मुद्रया कुमार सम्भाव्य, श्यामेन भ्रूसञ्ज्ञयैव पृष्टो 'मान्य ! शास्तिखान-युद्धे मयि प्रसन्नेन प्रभुणा शतमश्वारोहान् ममाधिकारे निरूप्य, तदध्यक्षताया नियोजितोऽस्मि" इति समस्तक-नमनमभ्यधात् । तेन "भद्रम् , दिष्टया दिष्टया" इति सप्रसादमुक्तश्च पुरत प्रचलित ।

अथ मायाजिह्मो राजदुर्ग परित परिक्राम्यन् , कुतश्चित् सेना-निवेशान् , कुतश्चित् पदाति–निकर–विरचिता व्यूह–रचना , कुत-

धौरितकेन = हयगतिविशेषेण । अश्वारोहाणाम्=सादिनाम् , शतकेन । पारसीकम् = पारस्यदेशोद्भवम्, अनिलेन लोला = चञ्चला, कुन्तला = चिकुरा , यस्य स , अनिलवत् लोला इति वा, चिकुर कुन्तलो वाल " इत्यमर । अरुणै = ईषद्रक्तै । अपरिचीयमान = अनवबुध्यमान । मया प्राप्तस्वाधि-कारानुरूपार्वाचीनवेषधारित्वादिति भाव । समादरमुद्रया=गौरवप्रदर्शनभङ्ग्या । कुमारम् = मायाजिह्मम् । समस्तकनमनम = सशिरानति । दिष्टया = भागधेयेन ।

सेनानिवेशान्=शिबिराणि । पदातिनिकरेण=पदगसमूहेन, विरचिता =

उसी समय एक ओर से दुल्की चाल से आ रहे सौ घुडसवारो से अनुगत, स्वय भी एक पारसी घोडे पर सवार हो उसी प्रकार घोडे को दौडाता हुआ, हवा से हिल रहे बालो वाला, नवीन हल्के लाल वस्त्रो के कारण पहचान मे न आनेवाला रघुवीरसिह आ गया । उसने आदर सूचक मुद्रा से कुमार को सम्मा-नित किया । श्याम ने भौह के ईशारे से ही कुछ पूछा, उत्तर मे उसने सिर झुका कर कहा—मान्य ! शाइस्ता खॉ के साथ युद्ध मे मुझ पर प्रसन्न होकर महाराज ने सौ घुडसवारो को मेरे अधिकार मे देकर मुझे उसका नायक नियुक्त किया । श्यामसिंह ने हर्ष पूर्वक कहा "बहुत अच्छा, सौभाग्य है सौभाग्य ।" रघुवीर सामने की ओर ही चला गया ।

तदनन्तर राजदुग के चारो ओर घूमता हुआ, कही शिविरो को, कही पैदल

श्चित् धडद्धडद्ध्वनिपुरसर विहायसि प्रयुज्यमाना भुशुण्डिका, कुतश्चित् ह्लादिनी-निर्ह्लाद ह्लेपयती शतघ्नी, कुतश्चिन्मिथ्यायुद्ध-रचनया चन्द्रहास-चालन-चातुरी प्रासासन-साहस पट्टिश-प्रयोग-पाटव इपु-वर्षण-कौशल च दर्शयतोऽनेकान् वीरान् कुतश्चिच्च ध्वजमुत्थाप्य भारतस्य सनातनधर्मस्य महाराष्ट्रराजस्य च जयमुद्घोषयत प्रमोद-पूरप्रफुल्लान् पौरान् पश्यन्, विविध-विभावना-भङ्ग-भज्यमान-हृदय पुनर्माया-प्रासाद निववृते ।

श्यामसिहस्तु त तत्र प्रवेश्य, स्वयमपि महाराष्ट्रराजस्य विजयो-

---

मङ्घटिता । विहायसि=नभसि । ह्लादिनीनिर्ह्लादम्=वज्रगर्जनम् । "ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यादि"त्यमर । ह्लेपयती =लज्जयती । शतघ्नी = तोभान् । प्रासासनसाहसम्=कुन्तक्षेपणवलकर्म । पट्टिशस्य प्रयोगे=चालने, पाटवम्=कौशलम् । प्रमोदपूरप्रफुल्लान्=प्रसन्नताप्रवाहविकसितान् । विविधविभावनाभङ्गेन=अनेकविधविचारतरङ्गेण, "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा" इत्यमर । भज्यमानम्=त्रुटचमानम्, हृदय यस्य स । मायाप्रसादम्=माया दुर्गम् । मायाजिह्वावासार्थ निर्दिष्ट भवनम् ।

सैनिको द्वारा वनाई गई व्यूह रचनाओ को कही घड-धड शब्द के साथ आकाश मे छोडी जा रही वन्दूको को, कही वज्रपात की ध्वनि या विजली के गर्जन को लजाने वाली तोपो को, कही कृत्रिम युद्ध की रचना करके तलवार चलाने की निपुणता, भाला फेकने का पराक्रम, पट्टिश के प्रयोग की पटुता और वाणो की वर्षा करने की कुशलता दिखा रहे अनेक वीरो को, कही झण्डा उठा-कर भारत की, सनातन धर्म की, महाराष्ट्र नरेश की जय का उद्घोष कर रहे हर्ष प्रवाह से खिले हुए नगरवासियो को देखता विभिन्न विचारो की तरङ्गो से टूटते हुये हृदय वाला मुआजिम पुन माया-महल मे लौट आया ।

श्यामसिंह उसे वहाँ पहुँचा कर स्वय भी महाराष्ट्र नरेश के विजयो-

त्सवे राजदुर्गे समागताना सम्भावित-मण्डलाना साकारे प्रतापइव महति स्वर्ण-सिंहासने समारूढ मूर्तिमता यशसेव च्छत्रमण्डलेन सुशोभित प्रजाभिराद्रियमाण महाराष्ट्रराज द्रष्टु राजदुर्गं प्रचलित ।

इत्यष्टमो निश्वास

द्वितीयो विराम च समाप्त

सम्भावितमण्डलानाम् = पूजितमित्रवर्गाणाम् । साकारे=शरीरधारिणि । प्रताप इवेत्युत्प्रेक्षा । मूर्तिमता = आकृतिमता । यशसेव = कीर्त्येवेत्युत्प्रेक्षा । आद्रियमाणम् = सत्क्रियमाणम् । जयजय-ध्वनि-गोचरीक्रियमाणमिति यावत् ।

अशेष-भूमीतल-विद्यमान-शब्दज्ञ - लोकार्चित - पादयुग्म ।
नारायण श्रीहरशब्दपूर्वस्त्रिपाठिवर्यो गुरुरस्ति यस्य ।। १ ।।
अध्यापिपच्छीशिवदत्तमिश्रस्तर्काश्च य तार्किकमण्डलीश ।
सिपाह्वासी भगवत्युदीतोवेदान्तविद् भागवतोद्भवो य ।। २ ।।
श्यामा-पद-द्वन्द्व-मरन्द-लुब्ध स रामजीशर्म पद-प्रसिद्ध ।
प्रादर्शयद् वीर-जये द्वितीये विरामके नूतनवैजयन्तीम् ।। ३ ।।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्याम् अष्टमनिश्वासविवरण द्वैतीयीकविरामविवरण च समाप्तम् ।

त्सव के अवसर पर राजदुर्ग मे आये हुये सम्मानित वीरो के मूर्तिमान प्रताप के समान स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुये शरीरधारी यश के से छत्रमण्डल से सुशोभित, प्रजा द्वारा समादृत हो रहे महाराष्ट्र राज के दर्शन के लिये राजदुर्ग को चल पडा।

शिवराजविजय के आठवाँ निश्वास और द्वितीय विराम का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।
